मसीही कलीसियाओं का ऐतिहासिक विश्वास

(Ecumenical and Reformed Creeds and Confessions)

Hindi Version translated by
Mr. & Mrs. Rajkumar
&
Mr. & Mrs. Anup Arun Hiwale

दो शब्द

हम, Mid-America Reformed Seminary के छात्र उत्साहित और आनन्दित है, कि हम संशोधित सिद्धांतों और अंगीकार के हिन्दी संस्करण के गवाह हैं, यह हमारा असीम आनन्द है, कि हम इस बड़े काम में सहभागी हुए हैं। ये सिद्धांत और अंगीकार जो अब हिन्दी भाषा में उपलब्ध है, पिछली कई पीढ़ियों से सच्चे मसीहियों के पथ प्रदर्शक रहे हैं, ये सिद्धांत पूर्णता परमेश्वर के वचन पर आधारित और वचन का सार हैं और परमेश्वर के वचन की सच्चाई को सुरक्षित रखने के लिए कलीसियाओं द्वारा मान्यता प्राप्त है, और पवित्र शास्त्र की शिक्षाओं का आईना है, कि हम सिर्फ मसीह द्वारा, सिर्फ अनुग्रह से, सिर्फ विश्वास द्वारा और सिर्फ परमेश्वर की महिमा के लिए बचाए गए हैं। यह हमारी प्रार्थना है कि इस हिन्दी संस्करण के द्वारा कलीसियाओं को दृढ़ता, पवित्र लोगों को उन्नति और परमेश्वर को महिमा मिलेगी।

Mid-America Reformed Seminary Student
Body Association
Dyer, Indiana, U.S.A.
Winter 2005

आभार

हम उन सभी लोगों का हृदय से आभार प्रकट करते हैं, जिन्होंने इन सिद्धांतों और अंगीकार को हिंदी में अनुवाद करने के लिए कड़ा परिश्रम किया है, जो राजकुमार, उनकी पत्नी ललिता राज व अनूप अरूण हिवाले, उनकी पत्नी प्रोमिला हिवाले है और उन सभी का जिन्होंने इस कार्य को निरंतर अपनी प्रार्थनाओं से सफलता तक पहुँचाया और उनका जिन्होंने इसके हिन्दी संस्करण के प्रकाशन में अपना आर्थिक सहयोग दिया।

परमेश्वर सभी को आशीषित करे।

हम आशा और प्रार्थना करते हैं, कि यह हिंदी संस्करण परमेश्वर की महिमा के लिए, उसकी कलीसिया और लोगों में अति लाभकारी होगा।

Published by : Hanokh Publication India
Website : www.mpmindia.org

Printed by : Saraswati Press, 6 Faltu Line, Dehradun
Ph. 2654194

All rights reserved. It can be only in the churches with prier written permission.
No individual reduction of this material should be done.

Hindi Holy Bible has been used for the scripture references.

विषय सूची

सिद्धांत/मत (Ecumenical Creeds)

प्रेरितों का विश्वास (Apostles' Creed) 1

नाएसिन सिद्धांत (Nicene Creed) 2

एथानसिएन सिद्धांत (Athanasian Creed) 3

आवेदन पत्र 5

एकता के तीन प्रारूप (Three Forms of Unity)

अंगीकार (Belgic Confession) 6

प्रश्नावली (Heidelberg Catechism) 31

नियम (Canons of Dort) 67

मानक (The Westminster Standards)

विश्वास का अंगीकार (The Confession of Faith) 109

विस्तृत प्रश्नावली (The Larger Catechism) 142

संक्षिप्त प्रश्नावली (The Shorter Catechism) 187

Ecumenical सिद्धान्त (Creeds)

हमारे विश्वास के अंगीकार के अनुच्छेद 9 में मसीह कलीसिया की पहली शताब्दी से तीन लेख (धर्ममत) जिन्हें हम स्वीकार करते हैं वे, Apostles' Creed (प्रेरितों का विश्वास), Nicene Creed और Althanasian Creed है। इन Creeds को Ecumenical Creeds कहा जाता है क्योंकि सामान्यत: इन्हें सभी चर्चों में स्वीकार कर मान्यता दी जाती है।

Apostles' Creed (प्रेरितों का विश्वास)

इस मत को प्रेरितों का विश्वास कहा जाता है। इसलिए नहीं कि इसे प्रेरितों ने रचा (निर्मित) किया, परन्तु इसलिये कि इसमें उनकी शिक्षा का सारांश निहित है।

I. मैं विश्वास रखता हूँ सर्वसामर्थी पिता परमेश्वर पर, जिसने आकाश व पृथ्वी की रचना की।

II. और उसके इकलौते पुत्र हमारे प्रभु यीशु मसीह पर,

III. कि वह पवित्र आत्मा की सामर्थ से देहधारी होकर कुंवारी मरियम से उत्पन्न हुआ,

IV. पेन्तुस पिलातुस के राज्य में दु:ख उठाया, क्रूस पर चढ़ाया गया, मारा गया, गाढ़ा गया, अधोलोक में गया,

V. तीसरे दिन मृतकों में से जी उठा,

VI. आकाश पर चढ़ गया और सर्वसामर्थी पिता परमेश्वर के दाहिने हाथ बैठा है।

VII. जहाँ से वह जीवितों व मृतकों का न्याय करने के लिए आएगा,

VIII. मैं विश्वास रखता हूँ पवित्र आत्मा पर,

IX. विश्वासियों की मण्डली पर, संतों की संगति पर,

X. पापों की क्षमा,

XI. देह के जी उठने

XII. और अनंत जीवन पर - आमीन।

●

नाएसिन सिद्धान्त (NiceneCreed)

Nicene Creeed जिसे Nicaeno Conslanlinopolitan Creed भी कहा जाता है। यह गलत शिक्षाओं के विरोध में, विशेषकर Arianism के विरुद्ध, शुरूआती मसीह कलीसियाओं के कट्टर विश्वास का अंगीकार है।

मैं विश्वास करता हूँ एकमात्र, सर्वसामर्थी पिता परमेश्वर पर, जिसने आकाश, पृथ्वी और सब कुछ जो उसमें सदृश्य और अदृश्य है, की सृष्टि की।

और एकमात्र प्रभु यीशु मसीह पर, परमेश्वर का प्रिय पुत्र, जो सृष्टि से पहले परमेश्वर का प्रिय (इकलौता) है। परमेश्वर का परमेश्वर, प्रकाश का प्रकाश, जो रचा नहीं गया, परमेश्वर के साथ पूर्णता एक समान, जिससे सभी चीजों की रचना हुई।

जो हम मनुष्यों और हमारे उद्धार के लिये, स्वर्ग से उतर कर पवित्र आत्मा से गर्भ धारण कर कुआंरी मरियम से उत्पन्न हुआ और मनुष्य बन गया, और पेन्तुस पिलातुस के राज्य में क्रूस पर चढ़ाया गया, उसने दु:ख उठाया और दफनाया गया और पवित्र शास्त्र के अनुसार तीसरे दिन जी उठा और स्वर्ग पर चढ़ गया और परमेश्वर के दाहिने बैठा है, वह जीवितों और मृतकों का न्याय करने दोबारा महिमा के साथ आएगा जिसके राज्य का अन्त न होगा।

और मैं विश्वास रखता हूँ पवित्र आत्मा पर, जो जीवन का स्वामी और जीवने देने वाला है। जो पिता और पुत्र से अग्रसर होती है। जिसकी पिता और पुत्र के साथ आराधना और महिमा होती है, जिसने भविष्यवक्ताओं के द्वारा बातें की।

और मैं विश्वास करता हूँ, कि एक पवित्र विश्वव्यापक कलीसिया पर, मैं पापों के छुटकारे के लिए एक बपतिस्मे को स्वीकार करता हूँ और मृतकों के पुनरुत्थान और आने वाले युग के जीवन पर आशा रखता हूँ। आमीन।

●

एथानसिएन सिद्धान्त (Athanasian Creed)

इस मत का नाम Athanasian (293-373 AD) के नाम पर पड़ा, जिसने त्रिएक परमेश्वर के सिद्धान्त के विरुद्ध Arian की गलत शिक्षाओं का प्रतिरोध किया, यद्यपि Athanasian ने इसे नहीं लिखा, इसका नाम Athanasian Creed इसलिए पड़ा क्योंकि 17वीं शताब्दी तक ऐसा समझा गया।

---

1. जो भी बचाया जायेगा उसके लिए सबसे पहले जरूरी है, कि वह विश्वव्यापक विश्वास में दृढ़ता से बना रहे, 2. जो हर एक को पूर्ण और निर्दोष रखता है, जिसके बिना वह अनन्तकाल के लिए नाश होगा। 3. विश्वव्यापक विश्वास यह है कि हम एक परमेश्वर की त्रिएकता, में और त्रिएकता की एकता में आराधना करते हैं, 4. न तो व्यक्तित्व में गड़बड़, न गुणों में बंटवारा करते हैं। 5. त्रिएक में एक परमेश्वर-पिता, दूसरा पुत्र और तीसरा पवित्र आत्मा है। 6. परंतु पिता, पुत्र और पवित्र आत्मा का परमेश्वरत्व एक ही है। समान महिमा और गौरव सभी का, अनन्त है। 7. जैसा पिता, वैसा ही पुत्र और वैसी ही पवित्र आत्मा है। 8. पिता अरचित, पुत्र अरचित और पवित्र आत्मा अरचित है। 9. पिता, पुत्र और पवित्र आत्मा तीनों ही मनुष्य की समझ से परे हैं। 10. पिता अनन्त कालीन, पुत्र अनन्तकालीन और पवित्र आत्मा अनन्तकालीन है। 11. फिर भी तीन अनन्तकालीन नहीं हैं वरन् एक अन्तकालीन है। 12. उसी प्रकार तीन अरचित और समझ से परे नहीं है, वरन् एक अरचित और एक समझ से परे है। 13. उसी प्रकार, पिता सर्वसामर्थी है, पुत्र सर्वसामर्थी है और पवित्र आत्मा सर्वसामर्थी है। 14. फिर भी सर्वसामर्थी तीन नहीं परंतु एक प्रभु है। 15. वैसे ही पिता परमेश्वर है, पुत्र परमेश्वर है और पवित्र आत्मा परमेश्वर है। 16. फिर भी तीन परमेश्वर नहीं है वरन परमेश्वर एक है। 17. वैसे ही पिता प्रभु है, पुत्र प्रभु है, और पवित्र आत्मा प्रभु है। 18. फिर भी तीन प्रभु नहीं है। वरन् प्रभु एक ही है। 19. इस प्रकार मसीहत की सत्यता से हम इस बात को स्वीकार करने के लिए बाध्य/प्रेरित होते हैं कि परमेश्वरत्व में हर एक व्यक्ति अपने आप में परमेश्वर और प्रभु है। 20. उसी प्रकार विश्वव्यापक धर्म से इस बात को नहीं मानते कि तीन परमेश्वर और तीन प्रभु है। 21. पिता किसी से बना नहीं, न ही उसकी सृष्टि हुई, न ही वह प्रिय (Begotten) किसी से निकलता है। 22. पुत्र सिर्फ पिता का है न ही वह बनाया गया न ही उसकी सृष्टि हुई। वरन वह इकलौता प्रिय है। 23. पवित्र आत्मा पिता और पुत्र की है। वह बनायी अथवा उसकी सृष्टि नहीं हुई न ही वह begotten है। वरन अग्रसर है। 24. इस प्रकार, एक ही पिता है तीन पिता नहीं, एक पुत्र है तीन पुत्र नहीं, एक ही पवित्र आत्मा है तीन नहीं। 25. यही त्रिएकता है। कोई भी एक

से पहले अथवा बाद में नहीं है, न ही कोई किसी से बड़ा अथवा महिमा में कम है। 26. वरन् तीनों एक साथ एक जैसे अनन्तकालीन और एक समान है। 27. इसलिए हर बात में जैसा पहले भी कहा गया है, कि एकता में त्रिएकता और त्रिएकता में एकता की आराधना होनी चाहिए। 28. इसलिए वह जो बचाया जाएगा उसे त्रिएकता के बारे में जानना आवश्यक है। 29. अनन्तकालीन उद्धार के लिए यह भी आवश्यक है कि वह हमारे प्रभु यीशु मसीह के अवतार (Incarnation) पर सही विश्वास करें। 30. सही विश्वास के लिए हमें विश्वास और अंगीकार करना है, कि हमारा प्रभु यीशु मसीह परमेश्वर का पुत्र, परमेश्वर और मनुष्य है। 31. तत्व (गुणों) में पिता के समान परमेश्वर, संसार से पहले Begotten (प्रिय, इकलौता) और तत्व (गुण) में अपनी माता के समान, संसार में जन्म लिया। 32. तार्किक आत्मा और मानव शरीर में पूर्ण परमेश्वर और पूर्ण मनुष्य। 33. पिता के समान उसके परमेश्वर तत्व में और पिता से छोटा अपने मनुष्यत्व में। 34. यद्यपि वह परमेश्वर और मनुष्य है, फिर भी वह दो नहीं वरन मसीह एक है। 35. परमेश्वत्व को शरीर में बदलने से एक नही वरन मनुष्यत्व को परमेश्वर में ले जाने से। 36. गुणों को मिलाने से एक नहीं वरन् व्यक्तित्व की एकता से एक। 37. जैसे तार्किक आत्मा और शरीर एक मनुष्य है वैसे ही परमेश्वर और मनुष्य एक मसीह है। 38. जिसने हमारे उद्धार के लिए दु:ख उठाया, नरक में भेजा गया, मृतकों में से तीसरे दिन जी उठा। 39. वह स्वर्ग पर चढ़ाया गया वह सर्वसामर्थी परमेश्वर पिता के दाहिने बैठा है। 40. वहाँ से वह जीवित और मृतकों के न्याय के लिये आएगा। 41. जिसके आने पर सभी मनुष्य, उनके शरीरों के साथ फिर से जी उठेंगे। 42. और अपने कामों का हिसाब देंगे 43. और जिन्होंने अच्छा किया है अनन्त जीवन में प्रवेश करेंगे और जिन्होंने बुरा किया है अनन्त आग (नरक) में प्रवेश करेंगे। 44. यह व्यापक विश्वास है जिसमें यदि कोई विश्वास योग्यता के साथ विश्वास नहीं करता तो उसका उद्धार नहीं है।

●

आवेदन पत्र

हम अधोहस्ताक्षरी, क्रिश्चिन रिफार्मड चर्च के शिक्षक, सुसमाचार के सेवक, जागृत मसीह सभा के प्राचीन और धर्म सेवक.....
..... of the classis of .....
..... यह पर सच्चाई और विवेक से प्रभु के सामने अपनी सहमति से यह घोषणा करते हैं, कि हम हृदय से विश्वास करते और सहमत हैं कि Reformed कलीसिया के अंगीकार और विश्वास के सिद्धांतों के सभी लेख पूर्णता परमेश्वर के वचन से सहमत और अनुसार है।

हम इसलिए वादा करते हैं, परिश्रम से इसे सिखाएंगे और इन सिद्धांतों की रक्षा करेंगे और अपनी सामूहिक प्रचार और लेखों में इसका विरोध नहीं करेंगे।

हम यह भी घोषणा करते हैं, कि हम सिर्फ उन गलत शिक्षाओं को अस्वीकार ही नहीं करते जो इन सिद्धांतों के विरुद्ध है। वरन् उन गलत शिक्षाओं से अपनी कलीसिया को सुरक्षित रखेंगे और यदि इनको लेकर हमारे मनों में कुछ सन्देह उत्पन्न होता है तो हम उसे सामूहिक नहीं करेंगे वरन् उसे synod के सामने रखेंगे और उनकी आधीनता में अपने आपको सौंपेंगे कि उसे परमेश्वर के वचन से परखा जाए।

●

बेल्जिक अंगीकार (Belgic Confession)

विश्वास का अंगीकार

संशोधित मसीही कलीसियों के सिद्धांतों का पहला मानक विश्वास का अंगीकार है। इसे सामान्यत: Belgic Confession कहा जाता है, क्योंकि इसका मूल दक्षिणी नीदरलैण्ड में हुआ जिसे अब बेल्डियम के नाम से जाना जाता है। इसका मुख्य लेखक Guido de Bres है जो नीदरलैंड में संशोधित (सुधरी) कलीसिया में प्रचारक था, जो 1567 में विश्वास के लिए शहीद हो गया। सोलहवीं शताब्दी में इस देश में कलीसियाओं को रोमन कलीसियाओं के शासन द्वारा बहुत यातना सताव सहनी पड़ी। deBress ने 1561 इस विश्वास के अंगीकार को तैयार किया, यह बताने के लिए की संशोधित विश्वास कोई विद्रोह नहीं है, और 1562 में इसकी एक प्रतिलिपि राजा फिलिप द्वितीय को भेजी। यद्यपि इसके द्वारा सताव से छुटकारा तत्काल प्राप्त नहीं हुआ और deBres और कई हजारों को अपने विश्वास के लिए अपने जीवनों को बलिदान करना पड़ा, परंतु debBre's ने जो शुरूआत की वह बनी रही, इसे नीदरलैण्ड में मान्यता मिली, जिसमें कुछ बदलाव के साथ, 1618-19, में Synod of Dort ने इसे स्वीकार कर लिया, जिसे कलीसियाओं के सभी सेवकों को मानना निर्धारित किया गया।

लेख -1

केवल एक ही परमेश्वर है

हम हृदय से विश्वास और मुंह से अंगीकार करते हैं, कि केवल (एकमात्र) एक ही साधारण और आत्मिक अस्तित्व है, जिसको हम परमेश्वर कहते हैं और वह अनन्त, अपरम्पार (समझ से परे) अदृश्य, अपरिवर्तनीय, असीमित, सर्वसामर्थी, पूर्ण बुद्धिमान, न्यायी, अच्छा और अच्छाइयों का बहता हुआ झरना है।

लेख -2

किस प्रकार (माध्यम) से हम परमेश्वर को जानते हैं

हम उसे दो माध्यमों से जानते हैं - पहला-संसार की रचना, सुरक्षा और इस पर प्रभुता, जो हमारे सामने खुली किताब के समान है, जिसमें सभी प्राणी, बड़े और छोटे अपने बहुत गुणों से हमें परमेश्वर की अदृश्य बातों, उसकी अनन्त सामर्थ और प्रभुता के ज्ञान को हम पर प्रगट करते हैं। जैसा प्रेरित पौलुस रोमियो 1:20 में कहते हैं। यह सभी बातें मनुष्य को परमेश्वर का पर्याप्त ज्ञान देती है, कि उनके पास कोई बहाना नहीं रह जाता दूसरा - वह अपने आपको पूर्णता-जितना आवश्यक है, कि हम इस जीवन में उसकी महिमा और अपने उद्धार के लिए उसे जाने, उसने अपने पवित्र वचन के द्वारा हम पर प्रगट किया है।

लेख -3

परमेश्वर का लिखित वचन

हम अंगीकार करते हैं, कि परमेश्वर का यह वचन मनुष्य की इच्छा द्वारा नहीं भेजा गया, न ही उन्होंने कहा परंतु (वरन्) मनुष्य ने पवित्र आत्मा से प्रेरित होकर, परमेश्वर के वचन को कहा, और बाद में परमेश्वर की विशेष सुरक्षा जो हमारे और हमारे उद्धार के लिए है। उसने अपने सेवकों-भविष्यद्वक्ताओं और प्रेरितों को आज्ञा दी, कि वे उसके प्रगट वचन को लिखित करे और उसने अपने आप अपनी उंगलियों से व्यवस्था की दो तख्तियां लिखी। इसलिए हम इन लेखों को पवित्र और सामर्थी वचन कहते हैं।

लेख -4

पवित्र वचन की प्रमाणित पुस्तकें

हम विश्वास करते हैं कि पवित्र वचन, दो पुस्तकों में निहित हैं जिन्हें पुराना नियम

और नया नियम कहा जाता है। जो प्रमाणित है जिसके विरुद्ध कुछ भी नहीं कहा जा सकता। परमेश्वर की कलीसिया इन्हें पूर्ण मान्यता दी जाती है।

पुराने नियम की पुस्तकें इस प्रकार हैं :

उत्पत्ति,	2 इतिहास,	दानिय्येल,
निर्गमन,	एज्रा,	होशे
लैव्यवस्था,	नहेम्याह	योएल,
गिनती,	एस्तेर,	आमोस,
व्यवस्थाविवरण	अय्यूब,	ओबद्याह,
यहोशू,	भजन संहिता,	योना,
न्यायिओ,	नीति वचन,	मीका,
रुत,	सभोपदेशक	नहूम,
1 शमूएल,	श्रेष्ठ गीत,	हबक्कूक,
2 शमूएल,	यशायाह,	सपन्याह,
1 राजा,	यिर्मयाह,	हाग्गै,
2 राजा,	विलापगीत	जकर्याह
1 इतिहास,	यहेजकेल	मलाकी

नये नियम की पुस्तकें

मत्ती,	इफिसियो,	इब्रानियो
मरकुस,	फिलिप्पियो,	याकूब,
लूका,	कुलुस्सियो,	1 पतरस,
यूहन्ना	1 थिस्सलुनिकियो,	2 पतरस,
प्रेरितों के काम,	2 थिस्सलुनिकियो,	1 यहून्ना
रोमियो,	1 तिमुथियुस,	2 यहून्ना,
1 कुरिन्थियो,	2 तिमुथियुस,	3 यहून्ना,
2 कुरिन्थियो,	तीतुस,	यहूदा
गलातियो,	फिलेमोन,	प्रकाशित वाक्य,

लेख -5

पवित्र शास्त्र कहाँ से अपनी महिमा और अधिकार प्राप्त करता है

हम इन पुस्तकों, सिर्फ इन्हें ही, अपने विश्वास का आधार, निश्चयता और कार्यों के लिए पवित्र और प्रमाणित मानते हैं और सभी बातें जो उनमें निहित है, उसमें बिना

सन्देह विश्वास करते हैं, इसलिए नहीं कि कलीसिया उन्हें स्वीकार करती और मान्यता देती है। वरन् इसलिए कि पवित्र आत्मा हमारे हृदय में गवाही देती है, कि ये परमेश्वर से है और इसलिए भी कि वे अपने आप में प्रमाण है और एक अन्धा (अज्ञानी) भी इस बात का देख (समझ) सकता है कि जो उनमें कहा गया है वह पूरा हुआ है।

लेख -6

धर्म की प्रमाणित पुस्तकें (Canonical) और Apocryphal पुस्तकों में अंतर

हम पवित्र पुस्तकों को apocryphal पुस्तकों से अलग करते हैं, अर्थात Esdras की तीसरी और चौथी किताबें, Tobit Judith, Wisdom, Jeses Siruch, Buruch की किताबें, ऐस्तर की पुस्तक में जोड़ा गया भाग, Furnance में तीन बच्चों के गीत, Susannah का इतिहास, Bell और Dragan मनेश्शे की प्रार्थना और Maccabecs की दो पुस्तकें - पवित्र पुस्तकों से अलग है, जिन बातों में ये पुस्तकें पवित्र पुस्तकों से सहमत होती है। कलीसिया में इन्हें पढ़ा और इनसे शिक्षा ली जा सकती है। परंतु इनमें ऐसी सामर्थ और प्रभाव नहीं है कि हम उनकी गवाही से उन्हें विश्वास और मसीही धर्म में स्थान दे, उन्हें दूसरी पुस्तकों से जो पवित्र पुस्तक है से कम सम्मान देते हुए ही इस्तेमाल करें।

लेख -7

पवित्र शास्त्र की पर्याप्तता (पूर्णता) ही विश्वास का एकमात्र नियम है

हम विश्वास करते हैं, कि पवित्र शास्त्र में परमेश्वर की इच्छा पूर्णता निहित है और उद्धार के लिए मनुष्य को जो भी विश्वास करना चाहिए पूर्णता इसमें सिखाया गया है। परमेश्वर की आराधना के लिए जो भी आवश्यक है, इनमें अधिकाई से लिखा गया है। इसलिए पवित्र वचन के अतिरिक्त अन्य शिक्षा देना अनुचित है। चाहे वह एक प्रेरित के द्वारा हो, अथवा चाहे वह स्वर्ग से कोई स्वर्गदूत हो, जैसा पौलुस ने कहा। जबकि परमेश्वर के वचन में कुछ जोड़ना और घटाना मना है। इससे यह बात प्रमाणित होती है कि इसके सिद्धान्त हर प्रकार से परिपूर्ण और सिद्ध है।

लेख -8

परमेश्वर गुणों में एक है, फिर भी तीन व्यक्तित्व में भिन्न है

इस सच्चाई और परमेश्वर के वचन के अनुसार, हम सिर्फ एक परमेश्वर में

विश्वास करते हैं, जो एक ही है, जिसमें सच्चाई, सत्य और अपने अवर्णनीय गुणों की अनन्तकालीन विविधता में तीन व्यक्ति हैं, जो पिता और पुत्र और पवित्र आत्मा है। पिता सभी सदृश्य और अदृश्य चीजों की वजह, शुरुआत और उत्पत्ति है। पुत्र वचन, ज्ञान, और पिता की छवि है। पवित्र आत्मा सामर्थ और शक्ति है, जो पिता और पुत्र से अग्रसर होती है, तो भी परमेश्वर इस विविधता से तीन में विभाजित नहीं है। क्योंकि वचन सिखाता है, पिता, पुत्र और पवित्र आत्मा सभी में परमेश्वरत्व है, उनके गुणों में विविधता है जो ऐसी है कि ये तीन व्यक्ति एकमात्र एक परमेश्वर है।

इस प्रकार यह प्रगट है कि पिता पुत्र नहीं न ही पुत्र पिता है। उसी प्रकार पवित्र आत्मा न पिता है और न ही पुत्र। तो भी यह तीनों अलग-अलग नहीं, न ही विभाजित अथवा मिश्रित है। पिता ने शरीर धारण नहीं किया, न ही पवित्र आत्मा ने वरन सिर्फ बेटे ने शरीर धारण किया। पिता कभी बिना पुत्र अथवा बिना पवित्र आत्मा के नहीं है। तीनों एक साथ अनन्तकाली और महत्वपूर्ण है। न कोई पहला है न कोई अन्तिम, तीनों सच्चाई, सामर्थ, भलाई और करुणा में एक ही है।

लेख -9

एक परमेश्वर के व्यक्तित्व की त्रिएकता के बारे में प्रमाण

बाइबिल (पवित्र वचन) की गवाही और उसके कार्यों से हम ये सब जानते हैं, और वह जो हम स्वयं में महसूस करते हैं। पवित्र वचन की गवाही हमें सिखाती है, कि हम पवित्र त्रिएकता में विश्वास करें, जो पुराने नियम में कई स्थानों पर लिखी गई है, जिनकी सूची बनाना आवश्यक नहीं, कि उन्हें समझने और न्यायोचित ठहराने के लिए अलग किया जाए।

उत्पत्ति : 1:26:27 में परमेश्वर कहता है, ''हम मनुष्य को अपने स्वरूप और समानता में बनाए, और परमेश्वर ने उन्हें अपनी समानता में रचा, नर नारी करके उसने मनुष्य की सृष्टि की'', उत्पत्ति 3:22 ''मनुष्य हम में से एक के समान हो गया है।''

आओ हम मनुष्य को अपनी (हमारी) समानता में बनाए, इस बात से ऐसा प्रतीत होता है, परमेश्वर में एक से ज्यादा व्यक्ति है। वह कहता है परमेश्वर ने रचा, जिससे वह इसकी एकता प्रगट करता है। यह सत्य है कि वह यह नहीं कहता, कि परमेश्वरत्व में कितने व्यक्तित्व है परंतु जो पुराने नियम में धूंधला सा है, नये नियम में बहुत साफ बताया गया है। जब यरदन नदी में हमारे प्रभु का बपतिस्मा हुआ, पिता की आवाज को यह कहते सुना गया, ''कि यह मेरा प्रिय पुत्र है।'' पुत्र को पानी में देखा गया और पवित्र आत्मा कबूतर के रूप में नजर आया, यही प्रारुप मसीह द्वारा बपतिस्मे में भी नियुक्त

किया गया, उसने कहा, ''सभी राज्यों के लोगों को चेला बनाओ और उन्हें पिता, पुत्र और पवित्र आत्मा के नाम से बपतिस्मा दो।''

लूका रचित सुसमाचार में जिब्राइल स्वर्ग दूत हमारे प्रभु की माता मरियम से कहता है ''पवित्र आत्मा तुझ पर उतरेगा, और परमप्रधान की सामर्थ तुझे छाया करेगी इसलिए वह पवित्र जो उत्पन्न होने वाला है परमेश्वर का पुत्र कहलाएगा।'' इसी प्रकार लिखा है- प्रभु यीशु का अनुग्रह और परमेश्वर पिता का प्रेम और पवित्र आत्मा की संगति हमेशा तुम सबके साथ हो और स्वर्ग में तीन का वर्णन है। पिता, वचन और पवित्र आत्मा, और ये तीनों एक हैं।

इन सभी स्थानों पर हम ये बात सीखते हैं, कि एक में तीन, एक ही ईश्वरीय गुणों में है। यद्यपि यह शिक्षा (सिद्धान्त) सभी मनुष्य की समझ से परे है, तब भी हम परमेश्वर के वचन के माध्यम से इस पर विश्वास करते हैं। परंतु इसके पूर्ण ज्ञान और उसके लाभ को यहाँ के पश्चात् स्वर्ग में प्राप्त करेंगे।

इसके अतिरिक्त हमें इन तीन व्यक्तियों के हमारे प्रति कार्य और पद को भी समझना है। पिता अपनी सामर्थ से सृष्टिकर्ता कहलाते हैं। पुत्र अपने लहू से उद्धारकर्ता और छुड़ाने वाला, पवित्र आत्मा हमारे हृदय में वास करने से हमारा शुद्ध करने वाला है।

पवित्र त्रिएकता की शिक्षा हमेशा प्रेरितों के समय से आज तक सच्ची कलीसियों द्वारा गलत शिक्षाओं, यहूदी, इस्लामी, और गलत मसीह शिक्षा इत्यादि के विरुद्ध पूर्ण निश्चयता के साथ मानी और लागू की गई है। कट्टर सिद्धांत पंथियों ने, हमेशा इस शिक्षा को माना और गलत शिक्षा को गलत ठहराया है। इसलिए इस समय हम स्वेच्छा से तीन मत मानते हैं जो हैं प्रेरित का विश्वास, Nicea और Athanasius की सिद्धान्तिक मत, उसी प्रकार जैसे प्राचीन पिताओं द्वारा स्वीकृत है।

लेख -10

यीशु मसीह सच्चा और अनन्तकालीन परमेश्वर है

हम विश्वास करते हैं, कि अपने ईश्वरीय स्वभाव के अनुसार यीशु मसीह परमेश्वर का अनन्तकाल से इकलौता और प्रिय पुत्र है। जो बनाया अथवा रचा नहीं गया, वरन् पिता के साथ महत्वपूर्ण और अनन्तकालीन, उसके तत्व की छवि (समानता) और उसकी महिमा का तेज, सभी बातों में पिता के समान है। वह परमेश्वर का पुत्र उस समय से नहीं है, जब उसने हमारा स्वभाव धारण किया, वरन् अनन्तकाल से जिस प्रकार यह गवाहियां सिखाती हैं, जब उनकी तुलना होती है। मूसा कहता है-परमेश्वर ने जगत की सृष्टि की और यहून्ना कहते हैं कि सभी चीजें वचन के द्वारा बनायी गयी, जिसे वह परमेश्वर कहता है। प्रेरित कहता परमेश्वर ने जगत को अपने पुत्र द्वारा रचा, उसी प्रकार

कि परमेश्वर ने सभी चीजों की सृष्टि यीशु मसीह द्वारा की। इसलिए यह समझना आवश्यक है, कि जिसे परमेश्वर कहा गया, वचन, पुत्र और यीशु मसीह अस्तित्व में थे, जब उसके द्वारा जगत की सृष्टि हुई। इसलिए भविष्यद्वक्ता भी कहते हैं, उसका आगे जाना आदि से अनन्त काल का है, और प्रेरित कहते हैं उसकी न तो शुरूआत है और न ही अन्त, वह इसलिए सच्चा, अनन्तकालीन और सर्वसामर्थी परमेश्वर है। जिसकी हम आराधना और सेवा करते हैं।

लेख -11

पवित्र आत्मा सच्चा और अनन्तकालीन परमेश्वर है

हम विश्वास और अंगीकार करते हैं, कि पवित्र आत्मा अनन्तकाल से पिता और पुत्र से अग्रसर होती है और इसलिए न बनाई गई, न रचित हुई, न ही इकलौती है, वरन् दोनों से अग्रसर (आगे बढ़ती) होती है, जो पवित्र त्रिएक में तीसरा व्यक्ति है। पिता और पुत्र के साथ महिमा, गुणों, गौरव और महानता में एक समान है, इसलिए जैसा वचन सिखाता है, सच्चा और अनन्तकालीन परमेश्वर है।

लेख -12

सभी चीजों की सृष्टि, विशेषकर स्वर्ग दूतों की

हम विश्वास करते हैं, कि पिता ने वचन से जो कि उसका पुत्र है, से जब उसे उचित लगा, आकाश, पृथ्वी और सभी प्राणियों की सृष्टि की, हर एक प्राणी को अस्तित्व, आकार, रूप और कई पद दिए, कि वे अपने सृष्टिकर्ता की सेवा करे, वह अपनी अनन्त सामर्थ और देखरेख से मानव के सेवा कार्य के लिए, उन्हें स्थिरता और शासन देता है कि मनुष्य अपने परमेश्वर की सेवा करे।

उसने भले स्वर्गदूतों की सृष्टि की, कि वे उसके संदेश वाहक हो और उसके चुनो हुओ की सेवा करे, जिनमें से कुछ उस श्रेष्ठता, जिसमें उनकी सृष्टि हुई थी, से गिर कर अनन्त काल की नरकीय यातना में चले गये, और अन्य जिनमें परमेश्वर का अनुग्रह बना रहा, वे निरन्तर पहली स्थिति में स्थिर रहे। शैतान और बुरी आत्माएं इतनी गिर गई कि वे परमेश्वर और हर एक भली चीज की दुश्मन है और खूनी के समान अपनी पूर्ण सामर्थ से इस ताक में रहते हैं, कि कलीसिया और इसके सदस्यों का नाश कर दे, और अपने बुराई, छल, धोखे से सभी को नाश कर दे, और इस प्रकार अपनी अधार्मिकता और बुराई से अनन्त यातना के हवाले किए गये हैं। जहाँ उनके लिए प्रतिदिन असहनीय यातना है।

इसलिए हम सदूकियों की घृणित गलत शिक्षा को अस्वीकार करते है, जो आत्माओं और दूतों के अस्तित्व का इंकार करते हैं और Maniches का भी जो, मानते हैं कि शैतान अपने आप उत्पन्न हुए और वे अपने स्वभाव से ही, बिना भ्रष्ट हुए बुरे और अधर्मी हैं।

लेख -13

परमेश्वर की बुद्धिमता (कृपा दृष्टि) और उसका सभी चीजों पर शासन

हम विश्वास करते हैं, कि उसी भले परमेश्वर ने सब कुछ की सृष्टि करने के बाद उसे भाग्य अथवा हालात के सहारे नहीं छोड़ दिया, परंतु वह अपनी पवित्र इच्छा के अनुसार सब पर शासन और प्रभुता करता है, और इस संसार में बिना उसकी इच्छा के कुछ नहीं होता, तब भी परमेश्वर जो पाप होते हैं, उनका कर्ता नहीं है। न ही इसके लिए उस पर दोष लगाया जा सकता है। उसकी सामर्थ और अच्छाई इतनी महान और समझ से परे है, कि वह अपने कार्यों को अति उत्तमता और सही प्रकार से व्यवस्थित करते हैं। तब भी जबकि शैतान और बुरे लोग अनुचित कार्य करते हैं। और वह जो कुछ करता है वह मनुष्य की समझ से बाहर है। हम लोग अपनी योग्यता से बढ़कर उसके विषय में जान और स्वीकार नहीं कर सकते। परंतु बिना इस सीमा को पार किये हम बड़ी दीनता, आदर से परमेश्वर के धर्मी न्याय, जो हमसे छिपा है, प्रशंसा करते हैं और हम इस बात से संतुष्ट होते हैं कि हम मसीह के शिष्य हैं और वही चीजे (बातें) सीखते हैं जो उसने अपने वचन में प्रगट की है। यह सिद्धान्त हमें असीम तसल्ली प्रदान करते हैं, क्योंकि हम जानते हैं कि हमारे जीवन में कुछ भी अचानक नहीं होता परंतु हर बात हमारे अति अनुग्रहकारी स्वर्गीय पिता द्वारा निर्देशित होती है। जो हमारे ऊपर पिता के समान दृष्टि रखता है और सभी प्राणियों को अपनी सामर्थ के आधीन रखता है। कि हमारे सर का एक बाल (वे सभी गिने गये हैं) न ही एक छोटी चिड़िया भूमि पर, हमारे पिता के इच्छा के विरुद्ध गिरते हैं। जिसमें हम पूर्ण भरोसा करते हैं, हम इस बात को समझते हैं कि वह शैतान और हमारे दुश्मनों को अपने नियंत्रण में रखता है, कि बिना उसकी अनुमति के वे हमारा नुकसान नहीं कर सकते।

और इसलिए हम Epicureans (गलत शिक्षकों) की घृणित गलती को अस्वीकार करते हैं, जो सिखाते हैं, कि परमेश्वर का कुछ लेना देना नहीं उसने सब कुछ हालात (किस्मत) के सहारे छोड़ दिया है।

लेख -14

मनुष्य की सृष्टि और पतन, और जो वास्तव में अच्छा है करने में उसकी असमर्थता

हम विश्वास करते हैं, कि परमेश्वर ने मनुष्य को पृथ्वी की मिट्टी से रचा और उसे अपनी समानता, भलाई, धार्मिकता और पवित्रता की एकरूपता में बनाया और यह योग्यता दी, कि सभी बातों में वह परमेश्वर की इच्छा में सहमत हो। परंतु उसने अपने

समान न ही अपनी श्रेष्ठता को जाना, वरन् अपनी इच्छा से शैतान की बात मानकर अपने आपको पाप, और परिणामस्वरूप मृत्यु और श्राप के आधीन किया। जीवन के लिये जो आज्ञा उसे मिली, उसने उसे तोड़ा और पाप करके अपने आपको परमेश्वर, जो उसका वास्तव का जीवन था से अलग कर लिया, अपने पूर्ण स्वभाव को भ्रष्ट करके वह अपने ऊपर शारीरिक और आत्मिक मृत्यु ले आया और दुष्ट होकर अपने सभी मार्गों में दूषित/भ्रष्ट हो गया, उसने अपने सारे उत्तम दानों को खो दिया, जो उसने परमेश्वर से पाये थे, सिर्फ एक छोटा हिस्सा उसके पास बचा रहा जो उसे कोई बहाना न देने के लिए पर्याप्त था, जो भी प्रकाश हम में है, वह अन्धकार में बदल गया, जैसा वचन सिखाता है प्रकाश तो अन्धकार में चमकता है और अन्धकार ने उसे न पहचाना। यहाँ संत यूहन्ना मनुष्य को अन्धकार कहता है।

इसलिए वह सब कुछ, जो मनुष्य की स्वतंत्र इच्छा के विरोध में सिखाया जाता है, उसे हम अस्वीकार करते हैं। जबकि मनुष्य पाप का दास है और जो उसे स्वर्ग से दिया जाता है के अतिरिक्त कुछ नहीं पा सकता, कौन इस बात पर घमण्ड कर सकता है कि वह स्वयं कुछ अच्छा कर सकता है। मसीह कहता है कोई मनुष्य मेरे पास नहीं आता जब तक पिता जिसने मुझे भेजा है नजदीक न लाए। कौन अपनी इच्छा में महिमा पाएगा, कौन समझ सकता कि शारीरिक मन, (बुद्धि) परमेश्वर के विरुद्ध दुश्मनी रखती है। कौन अपने ज्ञान की बातें कर सकता है, जबकि स्वाभाविक मनुष्य परमेश्वर की आत्मा की बातों को स्वीकार नहीं करता? संक्षिप्त में कौन सुझाव देने का साहस कर सकता है। जबकि हम जानते हैं कि हम अपने आप में पूर्ण नहीं हैं। वरन् हमारी परिपूर्णता परमेश्वर की है? और इसलिए जो प्रेरित कहते हैं, उसे दृढ़ता, निश्चियता से मानना चाहिए कि ''परमेश्वर हममें इच्छा और कार्य दोनों अपनी भली इच्छा के लिए करता है। कोई भी ऐसी इच्छा और समझ नहीं जो ईश्वरीय समझ और इच्छा के अनुकूल है, सिवाए उसके जो मसीह ने मनुष्य में निर्मित (पैदा) की है, जिसे वह हमें सिखाता है जब वह कहता, ''मुझसे अलग होकर तुम कुछ नहीं कर सकते।''

लेख -15

मौलिक पाप

हम विश्वास करते हैं, कि आदम की अनाज्ञाकारिता से मौलिक पाप सभी मनुष्यों में फैल गया, जो सम्पूर्ण स्वभाव का दूषित, भ्रष्ट होना है और आनुवंशिक रोग है, जिससे माँ के गर्भ में शिशु भी प्रभावित होते हैं। जो मनुष्य में सब प्रकार के पाप को जन्म देता है। इसलिए यह परमेश्वर की दृष्टि में घृणित और बुरा है, और काफी है कि परमेश्वर

पूरी मानव जाति को दोषी ठहरा दे। यह (पाप) बपतिस्मे के द्वारा पूर्णता समाप्त अथवा अलग नहीं हो जाता क्योंकि पाप हमेशा घृणित स्रोत से बढ़ता रहता है, जैसे पानी झरने से, परमेश्वर की संतान इससे प्रभावित होते हैं कि वे दोषी ठहरे पर परमेश्वर की करुणा और अनुग्रह से उन्हें क्षमा प्राप्त होती है। इसलिए नहीं कि वे पाप में पड़े रहें वरन् इसलिए कि विश्वासी भ्रष्टता से अलग हो और मृत्यु के शरीर से छुटकारे की कामना करे, इसलिए हम Pelagians की गलत शिक्षा को अस्वीकार करते हैं जो कहते हैं कि पाप सिर्फ अनुकरण करने से होता है।

लेख -16

अनन्तकालीन चुनाव

हम विश्वास करते हैं, आदम के सभी वंशज, हमारे पहले माता पिता के पाप से नारकीय यातना और विनाश में गिर चुके हैं, तब परमेश्वर अपने आपको जैसा वह है प्रगट किया है। **दयालु** और **न्यायी, दयालु**-क्योंकि वह अपने अनन्त और अपरिवर्तनीय इच्छा से, अपनी भलाई में बिना उनके किसी कार्य को ध्यान में रखकर, मसीह यीशु में चुन लिया है, उन्हें इस नारकीय यातना से छुड़ाता और बचाकर रखता है, **न्यायी** - दूसरों को पतन और यातना स्थिति में छोड़कर जहाँ वे स्वयं गये हैं।

लेख -17

पतित मनुष्य को फिर से संभालना (उठाना)

हम विश्वास करते हैं, हमारे अनुग्रहकारी परमेश्वर ने अपनी प्रशंसनीय बुद्धि और भलाई में, इस बात को देखते हुए, कि मनुष्य ने अपने आपको शारीरिक और आत्मिक मृत्यु के आधीन किया है और अपने आपको पूर्णता दुःख में पहुँचाया है। वह (परमेश्वर) उसे ढूंढने और तसल्ली देने में खुश हुआ और जब मनुष्य डरते हुए उसकी उपस्थिति से भागा, उससे वायदा किया कि वह अपने पुत्र को (जो एक स्त्री से जन्म लेगा) सर्प का सिर कुचलने और मनुष्य को आशीष देने के लिए देगा।

लेख -18

यीशु मसीह का अवतार

हम अंगीकार करते हैं, कि परमेश्वर ने पवित्र भविष्यद्वक्ताओं के मुख से जो वायदा हमारे पूर्वजों के साथ किया था, उसे पूरा किया, जब उसने नियुक्त (निर्धारित) समय अपने इकलौते, अनन्तकालीन पुत्र को संसार में भेजा, जिसने सेवक स्वरूप धारण किया और मनुष्य की समानता में हो गया, पाप के अतिरिक्त, सच्चे मनुष्य स्वभाव की

सभी कमजोरियों को ग्रहण किया, बिना पुरुष के पवित्र आत्मा की सामर्थ से कुंवारी मरियम में गर्भधारण किया, और शरीर के रूप में सिर्फ मनुष्य का स्वभाव ही नहीं, वरन् मनुष्य आत्मा को भी धारण किया, ताकि वह सच्चा मनुष्य हो। इसलिए जबकि शरीर और आत्मा दोनों का विनाश हुआ था, यह जरूरी था कि वह दोनों को धारण करे कि दोनों को बचा सके (का उद्धार कर सके)।

इसलिए हम यह अंगीकार करते हैं, (Anabaptist की गलत शिक्षा के विरुद्ध जो मसीह के मनुष्य शरीर की प्राप्ति उसकी माता से हुई का इन्कार करती है) कि मसीह बच्चों के खून और माँस में शामिल हुआ, कि वह दाऊद के शेर के शरीर का फल है, जो दाऊद के वंश में शरीर के अनुसार पैदा हुआ, जो मरियम के गर्भ का फल है, दाऊद की एक शाखा, यिशे की जड़ की डाली है, यहूदा के गोत्र से निकला है, शरीर के अनुसार यहूदियों का वंशज, अब्राहम के नस्ल का है, जबकि उसने अब्राहम के बीज को अपनाया और सभी बातों में, पाप को छोड़कर अपने भाइयों के समान बना, तो वह सत्यता में हमारा इम्मानुएल है अर्थात परमेश्वर हमारे साथ है।

लेख -19

मसीह के व्यक्तित्व में दो स्वभावों की एकता और भिन्नता

इस धारणा से हम विश्वास करते हैं, कि पुत्र का व्यक्तित्व अविभाजिए रीति से मनुष्य स्वभाव के साथ संगठित और जुड़ा है। इसलिए परमेश्वर के दो बेटे, नहीं, न ही दो पात्र (व्यक्ति) है, वरन दो स्वभाव एक व्यक्ति में संगठित है। फिर भी हर स्वभाव की अपनी अलग विशेषता है। जिस प्रकार दैवीय स्वभाव हमेशा बिना सृष्टि किये है, और अनन्तकालीन है और स्वर्ग और पृथ्वी पर उसकी छाया बनी रहती है। उसी प्रकार मनुष्य के स्वभाव ने अपनी विशेषता को बनाए रखा, और एक सृष्टि (प्राणी) ही रहा, जिसकी उत्पत्ति हुई, जिसका स्वभाव, गुण, सीमित है और शरीर के सभी गुण उसमें है और यद्यपि अपने पुनरुत्थान से अपने शरीर को अविनाशी कर दिया, तो भी उसने अपने मनुष्य के स्वभाव की सच्चाई को नहीं बदला और हमारा उद्धार और पुनरुत्थान उसके शरीर की सच्चाई पर भी निर्भर होता है।

परंतु ये दोनों स्वभाव इस प्रकार से एक व्यक्ति में एक हो गये हैं, कि वे उसकी मृत्यु से भी विभाजित नहीं हुए। इसलिए मरते समय जब उसने पिता के हाथ में जो आत्मा सौंपी वह सच्ची थी, जो उसके शरीर से अलग हुई, परंतु ईश्वरीय स्वभाव हमेशा मनुष्य स्वभाव के साथ एक बना रहा, तब भी जब उसका शरीर कब्र में पड़ा रहा, उसका ईश्वरीय स्वभाव समाप्त नहीं हुआ, वैसे ही जैसे शैशवकाल में थोड़े समय के लिए साफ

रीति से प्रगट नहीं हुआ था, इसलिए हम ये अंगीकार करते हैं, कि वह पूर्ण परमेश्वर और पूर्ण मनुष्य है। अपनी मृत्यु को नाश करने वाली सामर्थ से परमेश्वर, और अपने शरीर की कमजोरी के अनुसार हमारे लिए मरने से पूर्ण मनुष्य है।

लेख -20

परमेश्वर ने अपनी करुणा और न्याय मसीह में प्रगट किया है

हम विश्वास करते हैं, कि पूर्ण करुणामयी और न्यायी परमेश्वर ने अपने पुत्र को संसार में भेजाा, कि वह उस स्वभाव में हो जिसमें आज्ञा तोड़ी गयी थी, कि उसी स्वभाव में वह अपने दु:खों और मृत्यु के द्वारा, पाप के दण्ड को अपने ऊपर ले ले और परमेश्वर के न्याय को संतुष्ट करे।

इसलिए परमेश्वर ने हमारे पापों को उस पर डाल दिया और अपने न्याय को अपने पुत्र के विरुद्ध प्रगट किया और अपने परिपूर्ण प्रेम में, हम जो अपराधी और घृणित थे, अपनी करुणा और भलाई हमें प्रदान की, हमारे लिए उसने अपने पुत्र को मृत्यु के आधीन किया और हमारी धार्मिकता के लिए उसे मृतकों में से जिंदा किया, कि उसके द्वारा हम अविनाशी हो और अनन्त जीवन प्राप्त कर सके।

लेख -21

हमारे एकमात्र महायाजक यीशु मसीह का हमारे लिए संतुष्टिकरण

हम विश्वास करते हैं, कि मलिकिसिदक के स्वरूप में यीशु मसीह शपथ के साथ अनन्तकाल के लिए महायाजक नियुक्त हुआ है और उसने हमारे बदले अपने आपको पिता के सामने प्रस्तुत किया, कि उसके क्रोध को संतुष्ट करते हुए उसे प्रसन्न करें, अपने आपको क्रूस पर चढ़ाने और अपने पवित्र लहू को हमारे पापों के लिए बहाने से, जैसाकि भविष्यद्वक्ताओं ने पहले कहा था। पवित्र शास्त्र में ऐसा लिखा है, ''वह हमारे पापों के लिए घायल किया गया, हमारे पापों के लिए कुचला गया, हमारी शांति के लिए उसने दण्ड सहा, उसके कोड़े खाने से हम चंगे हुए, उसे मेम्ने के समान बलि के लिए ले जाया गया, उसकी गिनती अपराधियों के साथ हुई'' और पिलातुस द्वारा अपराधी ठहराया गया। यद्यपि पहले उसने उसे निर्दोष घोषित किया था। इसलिए उसने वह सब ठीक किया, जो उसने नहीं बिगाड़ा था और अधर्मी के लिये धर्मी ने दु:ख सहा। उसने अपने शरीर और आत्मा में हमारे पापों के भयायक दण्ड को अनुभव किया कि उसका पसीना खून के समान जमीन पर गिरने लगा, उसने पुकार कर कहा, ''मेरे परमेश्वर, हे मेरे परमेश्वर तूने मुझे क्यों छोड़ दिया'' और यह सब कुछ उसने हमारे पापों के प्रायश्चित (छुटकारे) के लिए सहा।

इसलिए हम पौलुस प्रेरित के साथ कहते हैं, कि हम कुछ नहीं जानते, ''यीशु मसीह जो क्रूस पर मारा गया, हम हर चीज को हानि समझते हैं और हमारे प्रभु यीशु मसीह के उत्तम ज्ञान के सामने अस्वीकार करते हैं।'' जो हमारे दु:ख में हर प्रकार से तसल्ली देता है। इसलिए यह कतई आवश्यक नहीं, कि हम कुछ नया माध्यम परमेश्वर से मेल मिलाप के लिए तलाश करें अथवा बनाएं, इसके अतिरिक्त उसने उस बलिदान से जिसे एक बार दिया, सभी को जो पवित्र किये गये हैं, हमेशा के लिए सिद्ध किया है। यह भी कारण है, कि परमेश्वर के स्वर्गदूत द्वारा उसे यीशु कहा गया, जिसका मतलब उद्धारकर्ता है, क्योंकि वह अपने लोगों को उनके पापों से छुड़ाएगा।

लेख -22

यीशु मसीह पर विश्वास से हमें धर्मी ठहराया जाना

हम विश्वास करते हैं, कि इस बड़े भेद (रहस्य) के सही ज्ञान को समझने के लिए, पवित्र आत्मा हमारे हृदय में सही विश्वास जागृत करती है। जिससे हम यीशु मसीह को उसके गुणों, सच्चाई के साथ अपनाते हैं और उसके अतिरिक्त कुछ नहीं चाहते। जरूरी बात जिस पर ध्यान देना है, या तो वे सभी बातें उद्धार के लिए आवश्यक है, वे यीशु में नहीं है, और यदि सभी उसमें है तब वे जो यीशु मसीह को विश्वास में अपनाते हैं, उन्हें उसमें पूर्ण उद्धार प्राप्त है। इसलिए यदि कोई इस बात को कहता है, कि मसीह पर्याप्त नहीं है और उसके अलावा भी कुछ और जरूरी है। यह अति भद्दा और निन्दनीय है। इसका मतलब है कि मसीह अधूरा उद्धार करता है।

इसलिए पौलुस के साथ हम उचित रीति से कहते हैं कि ''हम विश्वास से धर्मी ठहराये गये हैं। विश्वास से कार्यों से नहीं, तथापि इसे और साफ बताने के लिए, हमारा तात्पर्य ये नहीं है कि विश्वास अपने आप में हम धर्मी बनाता है। यह तो सिर्फ एक माध्यम है, जिससे हम मसीह, हमारी धार्मिकता को अपनाते हैं। यीशु मसीह हमें अपने सभी गुण और पवित्र कार्य जो उसने हमारे बदले में किये हैं, हमें प्रदान करता है, जो हमारी धार्मिकता है। और विश्वास एक माध्यम है, जो हमें उसके और उसके सभी फायदे जो हमारे हो जाते हैं के साथ संगति रखता है, जो हमें हमारे पापों से निर्दोष ठहराने के लिए जरूरत से भी अधिक होते हैं।

लेख -23

परमेश्वर के सामने हमारा धर्मीकरण किस बात में निहित होता है

हम विश्वास करते हैं, कि हमारा उद्धार यीशु मसीह के कारण हमारे पापों की क्षमा

(पश्चाताप) में निहित होता है, और उसमें ही हमारी धार्मिकता परमेश्वर के सामने होती है। जैसा दाऊद और पौलुस सिखाते हैं- यह मनुष्य के लिए आशीषित है, कि परमेश्वर अपनी धार्मिकता हमें कार्यों के बिना प्रदान करता है और पौलुस कहता है, कि हम उसके अनुग्रह से धर्मी ठहराये गये हैं। उस छुटकारे के द्वारा जो मसीह यीशु में है।

इसलिए हम हमेशा इस बात को दृढ़ता से मानते हुए परमेश्वर को सारी महिमा देते हैं। अपने आपको उसके सामने नम्र करते, और अपने में किसी बात पर, न ही अपने किसी गुण पर भरोसा करते हुए अपनी वास्तविकता को स्वीकार करते हैं। सिर्फ यीशु मसीह जो क्रूस पर चढ़ाया गया की आज्ञाकारिता जो विश्वास से हमें प्रदान होती है, पर भरोसा और विश्वास करते हैं। यह हमारे अपराधों को ढकने और परमेश्वर तक पहुँचने में हमें दृढ़ता देने के लिए पर्याप्त है, जो हमें विवेक के डर व भयानकता से आजाद करती है, बिना हमारे पहले पिता आदम के उदाहरण का अनुकरण किए हुए जिसने भय से अपने आपको अंजीर के पत्तों में छिपाने की कोशिश की। और सत्यता में, यदि हम अपनी और अन्य किसी प्राणी की योग्यता से परमेश्वर के सामने थोड़े समय के लिए भी उपस्थित होने का प्रयास करते हैं। हम क्षण से पहले नाश हो जाएंगे। इसलिए सभी को दाऊद के साथ प्रार्थना करनी चाहिए, यहोवा तू अपने सेवक के साथ न्याय में प्रवेश मत कर, क्योंकि तेरी दृष्टि में पृथ्वी पर जीवित, कोई भी मनुष्य धर्मी नहीं है।

लेख -24

मनुष्य का पवित्रीकरण और अच्छे कार्य

हम विश्वास करते हैं, कि मनुष्य में सच्चा विश्वास, परमेश्वर के वचन के सुनने और पवित्र आत्मा के कार्य से पैदा होता है, जो उसे नया करके नया मनुष्य बनाता, नया जीवन जीने में मदद और पाप के दासत्व से स्वतंत्र करता है। इसलिए यह कतई सत्य नहीं है, कि धर्मी ठहराने वाला विश्वास मनुष्य को, धार्मिकता के कार्य और पवित्र जीवन में आलसी (कर्तव्य के प्रति असावधान) बनाता है, जबकि इसके बिना वे परमेश्वर के प्रेम से प्रेरित होकर कुछ नहीं कर सकते, वरन् आत्मप्रेम और नाश होने के डर से ही कुछ करते हैं। इसलिए यह असम्भव है, कि यह पवित्र विश्वास मनुष्य के लिए अहितकर है। हम एक व्यर्थ विश्वास की बात नहीं करते, वरन् ऐसे विश्वास की, जिसे पवित्र शास्त्र में प्रेम द्वारा कार्य करने वाला विश्वास कहा गया है, जो मनुष्य को अच्छे कार्य जिनकी परमेश्वर ने अपने वचन में आज्ञा दी है, करने के लिए प्रोत्साहित करता है।

ये अच्छे कार्य जब विश्वास से प्रेरित होकर निकलते हैं, वे परमेश्वर की दृष्टि में अच्छे और स्वीकार्य हैं, उतने ही जितने वे सब, उसके अनुग्रह से पवित्र किये गये हैं। तो

भी वे हमारे धर्मी ठहराए जाने में किसी काम के नहीं, क्योंकि अच्छे कार्य करने से पहले ही हम विश्वास से मसीह में धर्मी ठहराये गये हैं। अन्यथा ये कार्य अच्छे नहीं हो सकते इससे ज्यादा कि एक पेड़ के फल अच्छे हैं। इससे पहले की पेड़ स्वयं अच्छा है।

हम इसलिए अच्छे कार्य नहीं करते हैं, कि उनसे हमें कोई लाभ हो, इतना ही नहीं अच्छे कार्य करने के लिए हम परमेश्वर के ऋणी न कि वह हमारा। यह वह ही है जो हममें इच्छा और कार्य अपनी खुशी के लिए करता है। इसलिए आओ जो वचन में लिखा है उस पर ध्यान दें ''जब तुम वह सब कर चुको जिसकी तुम्हें आज्ञा दी गयी है तो कहना हम अयोग्य सेवक हैं, हमने वही किया जो हमारे कर्तव्य थे।'' परंतु हम इस बात को अस्वीकार नहीं करते, कि परमेश्वर अच्छे काम का प्रतिफल देता है। परंतु यह उसका अनुग्रह है कि वह पुरुस्कार का मुकुट प्रदान करता है।

यद्यपि हम अच्छे काम करते हैं। हम उनमें अपना उद्धार नहीं पाते, हम अपने गन्दे शरीर (पाप) जो दण्ड योग्य है से अच्छे कार्य नहीं कर सकते और यदि हम ऐसे अच्छे कार्य करते भी, तब भी एक पाप पर्याप्त है, कि परमेश्वर उन्हें अस्वीकार कर दे। तब हम हमेशा दुविधा में बने रहेंगे और अपने विवेक में हम हमेशा दु:खी रहेंगे, यदि वे (अच्छे कार्य) हमारे उद्धारकर्ता की यातना और मृत्यु की विशेषता पर आश्रित नहीं है।

लेख -25

संस्कारी (औपचारिक) व्यवस्था का समाप्त होना

हम विश्वास करते हैं, व्यवस्था के संस्कार और चिन्ह मसीह के आने से समाप्त हो गये हैं और सभी बातें पूर्ण हो गई है। इसलिए उनका इस्तेमाल मसीहियों में समाप्त होना चाहिए, फिर भी उनकी सच्चाई और सार, यीशु मसीह में हमारे साथ बना रहता है जिसमें उन्हें परिपूर्णता मिलती है। फिर भी हम अभी भी व्यवस्था और भविष्यद्वक्ताओं की गवाही इस्तेमाल करते हैं, कि सुसमाचार के सिद्धान्त में निश्चित हो और अपने जीवन को परमेश्वर की महिमा के लिए परमेश्वर की इच्छानुसार बिता सके।

लेख -26

मसीह की मध्यस्थता

हम विश्वास करते हैं, कि धर्मी यीशु मसीह, जो हमारा बिचवइया और वकील है, के बिना हम परमेश्वर तक नहीं पहुँच सकते, यीशु इसलिए मनुष्य बन गया, उसने एक व्यक्ति में ईश्वरीय और मानवीय स्वभाव को संगठित किया, ताकि हम/मनुष्य ईश्वरीय महिमा में प्रवेश कर सकें, अन्यथा वहाँ पहुँचना हमारे लिए असम्भव होता। यह

बिचवइया जिसे परमेश्वर ने अपने और हमारे बीच नियुक्त किया है, किसी भी प्रकार से अपनी महिमा (गौरव) से हमें भयभीत नहीं करता, न ही हमें, अपनी कल्पना से दूसरे किसी की खोज करने को कहता है। स्वर्ग और पृथ्वी पर अन्य कोई नहीं जो हमें यीशु मसीह से ज्यादा प्रेम करता हो, जो परमेश्वर होते हुए उसने अपने आप को शून्य कर दिया और मनुष्य की समानता में हो गया और हमारे लिए दास का स्वरूप धारण किया और सभी बातों में अपने भाइयों (हमारे) जैसा हो गया। यदि तब हम किसी अन्य बिचवइया की खोज करें, जिसका झुकाव हमारे पक्ष में हो, कौन ऐसा है, जो हमसे उससे ज्यादा प्रेम करे, जिसने हमारे लिए, जब हम उसके दुश्मन ही थे, हमारे लिये अपने प्राणों को दे दिया और यदि हम ढूंढे तो कौन ऐसा है? जिसके पास सामर्थ और पवित्रता है जो परमेश्वर के दाहिने बैठा है और जिसे पृथ्वी और स्वर्ग का सारा अधिकार दिया गया है। और किसकी परमेश्वर के, अपने लिये बेटे से, पहले सुनी जाएगी?

इसलिये सिर्फ अविश्वास की वजह से आदर के स्थान पर संतों का अनादर की रीति प्रारम्भ हुई कि उन्होंने वह किया जो अनावश्यक न था, परंतु इसके विपरीत अपने कर्तव्य के आधीन धैर्य के साथ इसे अस्वीकार किया, जैसा उनके लेखन से प्रतीत होता है। ऐसा भी नहीं है कि हम अपनी अयोग्यता के लिए प्रार्थना करें, इसका मतलब ये नहीं है कि हम अपनी प्रार्थना परमेश्वर को अपनी योग्यता के आधार पर प्रस्तुत करे, परंतु प्रभु यीशु मसीह की योग्यता और उत्तमता के आधार पर जिसकी धार्मिकता, विश्वास से हमारी हो जाती है।

इसलिए हमसे, इस डर और अविश्वास को दूर करने के लिये प्रेरित सत्य ही कहते हैं कि यीशु मसीह सभी बातों में हमारे समान बना, कि वह करुणामयी और विश्वास योग्य महायाजक बने, और लोगों के पापों का प्रायश्चित करे, जिसमें उसने स्वयं परीक्षा की यातना सही और इस योग्य है, कि जो परीक्षा में पढ़ते हैं, उनकी मदद करे। और हमें अपने पास आने के लिए उत्साहित करने के लिए कहता है, ''जबकि हमारे पास ऐसा महायाजक है जो स्वर्ग में है यीशु मसीह परमेश्वर का पुत्र, तो आओ हम अपने अंगीकार को दृढ़ता से थामे रहे। हमारा महायाजक ऐसा नहीं है, जो हमारी कमजोरियों का अनुभव न रखता हो, परंतु वह हमारे समान परखा गया है और फिर भी पाप रहित है। इसलिये आओ साहस के साथ अनुग्रह के सिंहासन के पास जाएं, कि हम करुणा और जरूरत के समय मदद के लिये अनुग्रह प्राप्त करें। प्रेरित कहता है-जबकि यीशु मसीह के खून से हमें पवित्र स्थान में प्रवेश करने का साहस है, तो आओ हम सच्चे हृदय में विश्वास से उसके पास जाएं। उसी प्रकार मसीह का याजकीय गुण अपरिवर्तनीय है, जिससे वह जो उसके द्वारा परमेश्वर के पास आते हैं, उन्हें पूर्णता बचाने में सक्षम है। इस बात को जानते हुए कि वह हमेशा उनके लिए मध्यस्थता करता है।

और क्या चाहिए ? जबकि मसीह ने स्वयं कहा है, ''मार्ग सत्य और जीवन मैं ही हूँ, बिना मेरे कोई परमेश्वर तक नहीं पहुँच सकता'', तब हमें किस उद्देश्य के लिए दूसरे वकील की आवश्यकता है, जबकि परमेश्वर ने अपने बेटे को ही एक वकील के रूप में दे दिया है। आओ हम उसे त्यागे नहीं, कि दूसरे को ले अथवा एक के बाद एक को, खोजते रहे, और कभी इस योग्य न हों, कि उसे पा सके। परमेश्वर अच्छी तरह जानता था, कि जब उसने उसे (बेटे) दिया, हम पापी ही थे।

इसलिए मसीह की अज्ञानुसार हम मसीह यीशु एकमात्र बिचवइया के द्वारा स्वर्गीय पिता को पुकारते हैं जैसा कि हमने प्रभु की प्रार्थना में सीखा है और आश्वस्त रहते हैं, कि जो कुछ भी हमने पिता से उसके नाम से मांगा पूरा होगा।

लेख -27

विश्व व्यापक मसीही कलीसिया

हम एक विश्वव्यापक कलीसिया में विश्वास और अंगीकार करते हैं। जो सच्चे मसीहीयों, विश्वासिों की पवित्र सभा है। सभी अपने मसीह में अपने उद्धार की आशा, उसके लहू द्वारा, साफ और पवित्र होकर, पवित्र आत्मा द्वारा प्रमाणित किये गये हैं। यह कलीसिया संसार के प्रारंम्भ से हैं और उन्त तक रहेगी। जो इस बात से प्रगट होती है, कि मसीह अनन्तकालीन राजा हैं। जो बिना प्रजा के नही हो सकता। और यह पवित्र कलीसियों परमेश्वर द्वारा, पूरे संसार की उग्रता के विरूद्व सुरक्षा और मदद प्राप्त करती है। यद्यपि कई बार कुछ समय के लिये, बहुत छोटी प्रतीत होती हैं। और मनुष्य की दृष्टि में कुछ नही हैं। जैसे कि अहाब के क्रूर शासनकाल में, प्रभु ने अपने लिए सात हजार मनुष्यों को जिन्होंने बालदेवता के आगे अपने घुटने को नहीं झुकाया सुरक्षित रखा। और यह पवित्र कलीसिया एक निश्चित स्थान अथवा कुछ लोगो में ही सीमित नही हैं। परन्तु यह पूरे संसार में फैली हैं। और फिर भी एक ही आत्मा और विश्वास की सामर्थ द्वारा ह्रदय और इच्छा में जुड़ी और संगठित हैं।

लेख -28

सभी विश्वासियों के लिए जरूरी है, कि वे अपने आपको सच्ची कलीसिया में जोड़े

हम ये विश्वास करते हैं, जबकि यह पवित्र सभा उन लोगों की है, जिन्होंने उद्धार पाया है। और इसके बाहर उद्धार नही है। कोई भी व्यक्ति चाहे वह कही का, कैसी भी स्थिति का है, उसे स्वयं को इससे अलग नही करना चाहिए, न वह अपने आपमें सन्तुष्ट हो परन्तु सभी मनुष्य का कर्तव्य है और वे इसमें जुड कर संगठित होने के लिए बाध्य

हैं। कलीसिया की एकता का बनाए रखने के लिए, उसके सिद्धान्त और अनुशासन की आधीनता के लिए, यीशु मसीह के जुए के नीचे अपनी गर्दन झुकाने के लिए और एक ही शरीर के सदस्यों के रूप में, भाइयों की बढ़ोत्तरी के लिए, परमेश्वर के दिये गये गुणों के अनुसार सेवा करते हुए, संगठित रहें। इसे और अधिक प्रभावशाली ढंग से पूरा करने के लिए परमेश्वर के वचन के अनुसार, यह सभी विश्वासियों का कर्तव्य है कि वे अपने आपको, उनसे जो कलीसिया में नही हैं, अलग करे, और अपने आप को इस सभा में जोड़े, जहाँ भी परमेश्वर ने इसे स्थापित किया है। तब भी जबकि न्यायाधीश और राजाओं की आज्ञा इसके विरुद्ध हो, चाहे मृत्यु का दुःख अथवा शारिरिक दण्ड ही क्यों न सहना पड़े,

इसलिए वे सब जो अपने आपकों इससे (कलीसिया) अलग करते अथवा इसमें शामिल नही होते, वे परमेश्वर के नियम के विरूद्ध जाते हैं।

लेख -29

सच्ची कलीसिया के चिन्ह, और इसकी झूठी कलीसिया से भिन्नता

हम विश्वास करते है कि हमे बड़ी सर्तकता और सावधानी से परमेश्वर के वचन के आधार पर निर्णय करना है कि कौन सी सच्ची कलीसिया हैं। जबकि संसार में सभी सप्रदाय अपने आपको कलीसिया कहते (समझते) हैं। लेकिन हम यहाँ पर दिखावे के लिए, जो कलीसिया में स्वार्थ के साथ मिश्रित हो गये हैं। फिर भी कलीसिया नहीं है, यद्यपि बाहरी स्वरूप ऐसा लगता है। वरन् हम कहते की सच्ची कलीसिया का स्वरूप और सहभागिता अन्य सभी सप्रदाय से जो अपने आपको कलीसिया कहते हैं, अलग होना चाहिए।

वे चिन्ह जिनसे सच्ची कलीसिया की पहचान होती है:-

यदि उसमें सुसमाचार के शुद्ध सिद्धान्त प्रचार किये जाते हैं। यदि संस्कारों का प्रबन्धन जैसा मसीह ने नियुक्त किया है, के अनुरूप होता है, यदि कलीसिया का अनुशासन पाप को दण्डित करता है, संक्षेप में यदि सभी बाते परमेश्वर के वचन के अनुसार होती हैं। और जो वचन के विरुद्ध है, उसे अस्वीकार किया जाता है। और यीशु मसीह को कलीसिया का सिर (मुखिया) माना जाता है। इसलिए सच्ची कलीसियों को पूर्ण निश्चयता के साथ जानना आवश्यक है, जिससे अलग होने का अधिकार किसी मनुष्य (विश्वासी) को नहीं है।

वे जो कलीसिया के सदस्य है। उन्हें मसीहत के चिन्ह से जाना जा सकता है। विशेषकर विश्वास से-जब वे यीशु मसीह को एक मात्र उद्धार कर्ता स्वीकार करते हैं। वे पाप छोड़ देते, धार्मिकता में बढ़ते, सच्चे परमेश्वर और अपने पड़ोसी से प्रेम करते है।

विश्वास से अलग नही होते, और अपने कार्यो शरीर/पाप को क्रूस पर चढ़ाते हैं। परन्तु इसका मतलब यह नहीं कि उनमें कोई कमजोरी नहीं रह जाती, परन्तु वे इसके विरूद्ध आत्मा की सामर्थ से पूर्ण जीवन संघर्ष करते हैं। और हमारे प्रभु यीशु मसीह का खून, मृत्यु, यातना और आज्ञाकारिता में सहारा लेते है, जिसमें उन्हें उस विश्वास के द्वारा पापों से छुटकारा (प्रायश्चित) प्राप्त हुआ है।

झूठी कलीसियाओं में- कलीसियाएं वचन से ज्यादा सामर्थ और अधिकार, अपने नियम को देते है। और अपने आपको मसीह के जुए के आधीन नही करती, न ही संस्कारों को जैसा की वचन में मसीह ने ठहराया के अनुसार प्रबन्धन करते है। और अपनी सुविधा के अनुसार इनमें कम, ज्यादा करती है। ये मसीह से ज्यादा मनुष्यों पर आश्रित होती है। और उन्हें सताती है, जो परमेश्वर के वचन के अनुसार पवित्र जीवन जीते हैं और उन्हें (कलीसिया) को उसकी गलती, लालच और मूर्ति पूजा के लिए प्रताड़ित करते है। ये दो कलीसियाएं आसानी से पहचानी और एक दूसरे से अलग की जाती है।

लेख -30

कलीसिया का शासन और इसके कार्य (पद)

हम विश्वास करते हैं, कि सच्ची कलीसिया-आत्मिक व्यवस्था (नियमों) से जो प्रभु ने अपने वचनों में सिखाए, से शासित होनी चाहिए। विशेषकर उसमें सेवक अथवा पादरी होने चाहिए, जो परमेश्वर का वचन और संस्कारों का प्रबन्धन कर सकें और प्राचीन और धर्म सेवक जो पादरी के साथ, कलीसिया की समिति का गठन कर सकें, होने चाहिए, कि इनके द्वारा सच्चा धर्म सुरक्षित रह सके और सच्चे सिद्वान्त, शिक्षा सब जगह प्रचारित हो सके, इसे तोड़ने वाल दण्डित हो सके और आत्मिक माध्यम (साधन) से वचिंत किए जाए। और गरीब और प्रताड़ित को सहारा और तसल्ली उनकी जरूरत के अनुसार दी जा सकें, इस प्रकार सभी कुछ कलीसिया में अच्छी प्रकार से किया जाएगा, जब विश्वास योग्य मनुष्य उन नियमों के आधार पर चुने जाएगें, जिसे पौलूस ने तिमुथियुस के पत्र में लिखा है।

लेख -31

सेवक, प्राचीन और धर्म सेवक

हम विश्वास करते हैं, कि परमेश्वर के वचन के सेवक, प्राचीन और धर्म सेवक, उनके पदों के लिए कलीसिया द्वारा उचित चुनाव कराकर, प्रभु का नाम लेते हुए, जो परमेश्वर का वचन सिखाता है, उसके अनुसार उन्हें चुना जाना चाहिए। इसलिए हर कोई

इस बात का ध्यान रखे कि वह अपने आपको अनुचित साधन से इसमें शामिल न करें। वरन् तब तक प्रतीक्षा करें, जब तक परमेश्वर उसे न बुलाए। कि उसके पास उसके बुलाहट की गवाही हो और निश्चयता का आश्वासन हो, कि यह परमेश्वर की ओर से है।

परमेश्वर के वचन के सेवकों के पास समानता में समार्थ और अधिकार है, चाहे वे जहाँ भी है। वे सभी मसीह जो एक मात्र विश्वव्यापी अध्यक्ष और कलीसिया का सिर (मुखिया)है, के सेवक है।

तो भी ताकि परमेश्वर का पवित्र नियम तोड़ा अथवा इसकी अवहेलना न हो, हम कहते है। सभी विश्वासियों को परमेश्वर के वचन के सेवको और प्राचीनों को, उनके कार्य के लिए ऊँचा स्थान और सम्मान देना चाहिए, और उनके साथ बिना कुड़कुड़ाहट, कलह, विवाद के जितना भी सम्भव है, शान्ति से रहना चाहिए ।

लेख -32

कलीसिया का अनुशासन और व्यवस्था

हम इस बात में विश्वास करते है, यद्यपि यह अच्छा और लाभकारी है, कि जो कलीसिया के अधिकारी है, और कुछ नियम कलीसिया की व्यवस्था को बनाए रखने के लिए स्वयं बनाते हैं। तो भी उन्हें वचन का अध्ययन करते हुए इस बात का ध्यान रखना चाहिए, कि वे उन बातों को अनदेखा और अलग न करें, जो मसीह ने स्थापित/नियुक्त की है। और इसलिए हम मनुष्य द्वारा रचित सभी व्यवस्था, जो मनुष्य, परमेश्वर की आराधना के लिए बताते है अस्वीकार करते है। इसलिए हम सिर्फ उन बातों जो पोषण, मेल और एकता को सुरक्षित रखती है, और सभी मनुष्य को परमेश्वर की आज्ञा मानने को कहती है। स्वीकार करते है। इस उद्देश्य के लिए बहिष्कार करना और कलिसिया में अनुशासन आवश्यक है। जो परमेश्वर के वचन अनुसार, सभी इसमें शामिल हैं।

लेख -33

संस्कार

हम इस बात में विश्वास करते है, कि अनुग्रहकारी परमेश्वर ने हमारी कमजोरी और पापों को जानते हुए, संस्कारों को हमारे लिये नियुक्त किया है। जिससे वह अपने वायदो को और उसकी भलाई और अनुग्रह को, हमारे लिए प्रतिज्ञा करता है। और इनसे हमारे विश्वास को पोषण और दृढ़ता प्रदान करता है। जिसे उसने सुसमाचार के वचन से जोड़ा है। कि हम अपने विवेक में उसे अच्छी तरह से, जो वह हमसे वचन में घोषित करता और हमारे ह्रदय में कार्य करता है। समझ सकें, जिससे वह उस उद्धार को जो हमें दिया

है। उसे सुदृढ़/पुष्टि करता है। वे सदृश्य चिन्ह और प्रमाण है, आन्तरिक और अदृश्य बातों का जिसे परमेश्वर अपनी पवित्र आत्मा की सामर्थ से हममें कार्य करता है। इसलिए चिन्ह अर्थहीन नहीं कि हमें धोखा दे, यीशु मसीह सच्चा पात्र है, जो उनमें उपस्थित होता है। जिसके बिना उनका मूल्य नही है।

हम संस्कार, जो मसीह ने नियुक्त किये उनकी संख्या से सन्तुष्ट होते, जो मात्र दो है।-बपतिस्मे और प्रभुभोज का संस्कार।

लेख -34

पवित्र बपतिस्मा

हम विश्वास करते है, कि यीशु मसीह जो व्यवस्था का अन्त है। उसने अपने लहू को बहाकर, अन्य सभी लहू बहाने को, जो मनुष्य अपने पापों के लिए बहाता या बहाएगा उन्हें समाप्त कर दिया, और उसने खतने को जो लहू से होता था, के स्थान पर बपतिस्में के संस्कार को प्रारम्भ किया, जिससे हम, सभी मनुष्यों से और अनुचित धर्म से अलग होकर परमेश्वर की कलीसिया में शामिल होते हैं। कि हम पूरे उसके हो जाए। जिसका चिन्ह और ध्वज हम अपने ऊपर लेते हैं, जो इस बात की गवाही है कि वह हमेशा हमारा अनुग्रकारी परमेश्वर और पिता रहेगा।

इसलिए उन सभी को जो उसके है, आज्ञा दी है, कि शुद्व पानी से पिता और पुत्र और पवित्र आत्मा के नाम से वपतिस्मा लो, जो इस बात का प्रतीक है। जैसे पानी शरीर की गन्दगी धोता है जब ऊपर डाला जाता है, और बपतिस्मा लेने वाले के शरीर पर नज़र आता है। जब इसे छिड़का जाता है। उसी प्रकार पवित्र आत्मा की सामर्थ से मसीह के खून का आत्मा पर छिड़काव होता है। वह पाप से शुद्ध करता है, और हमें क्रोध की सन्तान से बदल कर परमेश्वर की सन्तान बना देता है। ऐसा बाहरी पानी के प्रभाव से नही होता, वरन् परमेश्वर के पुत्र के बहुमूल्य खून के छिड़काव से होता है। जो हमारा लाल समुद्र है। जिससे हमारा गुजरना आवश्यक है, कि फिरौन की क्रूरता, जो शैतान है से बच सके, और आत्मिक कनान में प्रवेश करे।

इसलिए सेवक संस्कार का प्रबन्ध (देते) करते हैं, जो की सदृश्य है। परन्तु हमारा प्रभु वह देता है। जो संस्कार का प्रतीक है, का गुण और अदृश्य अनुग्रह हमारी आत्मा को अधार्मिकता की गन्दगी से धोता साफ, शुद्ध करता है। हमारे हृदय को नया बनाता और उसे सभी तसल्ली से भरता है। हमें उसके भलाई का सच्चा आश्वासन देता है। और हमारे पुराने मनुष्यत्व और उसके कार्य को समाप्त कर, हमें नया मनुष्यत्व प्रदान करता है।

इसलिए हम विश्वास करते हैं, हर एक मनुष्य जिसने सच्चाई से अनन्त जीवन पाया है, बपतिस्मे को एक बार अवश्य लेना चाहिए, और इसे कभी दोहराना नही चाहिए क्योंकि हम दो बार जन्म नहीं ले सकते, इस बपतिस्मे के फायदा का लाभ सिर्फ उस समय ही नहीं होता जब पानी का छिड़काव होता है। परन्तु पूरे जीवन काल में इसका महत्व होता है।

इसलिए हम Anabaptist की गलत शिक्षा का घृणित मानते है। जो एक बपतिस्मे से जिसे उन्होने लिया है। संतुष्ट नहीं होते और विश्वासीयों के बच्चों के बपतिस्मों को गलत बताते है। जो हम विश्वास करते और मानते है। कि उन्हे बपतिस्मा और वाचा के चिन्ह का प्रमाण देना चाहिए, जैसे पहले इस्राइल में बच्चों का खतना उसी वायदे के अनुरूप होता था। और मसीह ने अपने लहू को जितना बड़ों के लिए उतना ही विश्वासियों के बच्चों के लिए भी बहाया, इसलिये जो मसीह ने उनके लिए किया उसका चिन्ह और संस्कार उन्हें देना चाहिए। जैसे कि व्यवस्था में प्रभु ने आज्ञा दी कि जन्म के कुछ समय पश्चात उन्हें मसीह के दु:ख और मृत्यु के संस्कार में एक मेम्ने को देने के द्वारा जो यीशु मसीह का एक संस्कार था, में शामिल करना चाहिए, और जो खतना यहूदियों के लिये था वही बपतिस्मा हमारे बच्चों के लिये है। इसी वजह से पौलुस बपतिस्में को मसीह का खतना कहता है।

लेख -35

प्रभु यीशु मसीह का पवित्र भोज

हम विश्वास और अंगीकार करते है, कि हमारे उद्वार कर्ता प्रभु यीशु मसीह ने पवित्र भोज के संस्कार को नियुक्त और प्रारम्भ किया कि, जिन्हे उसने नया करके अपने परिवार जो की कलीसिया है, में शामिल कर लिया है। उन्हे पोषण और सहायता प्रदान करें। अब जिन्होंने नया जन्म पाया है, उनमें दो जीवन है। एक सांसारिक और अस्थायी जिसे उन्होंने पहले जन्म से पाया है, जो सभी मनुष्यों में सामान्य है। और दूसरा आत्मिक और स्वर्गीय जीवन जो उन्हें दूसरे जन्म से, जो कि सुसमाचार के वचन से मसीह के शरीर की संगति में आने से प्राप्त होता है। और यह आत्मिक जीवन सामान्य नहीं है। वरन् परमेश्वर के चुने हुओ के लिए ही है, उसी प्रकार परमेश्वर ने शारीरिक और सांसारिक जीवन के लिए सामान्य रोटी जो आवश्यक है और सभी मनुष्य के लिए सामान्य है। परन्तु विश्वासियों के स्वर्गीय और आत्मिक जीवन के लिए, उसने जीवन की रोटी को स्वर्ग से भेजा जो कि यीशु मसीह है। जो विश्वासियों के आत्मिक जीवन को पोषित और ताकत देती है, जब वे इसे खाते है। जिसका मतलब कि जब वे उसे विश्वास से आत्मा में स्वीकार करते हैं।

इसके लिए, कि वह हमारे लिए आत्मिक और स्वर्गीय रोटी को प्रस्तुत कर सके, मसीह ने अपने शरीर के संस्कार के लिए सांसारिक और सदृश्य रोटी और दाखरस को अपने लहू के संस्कार के लिये नियुक्त किया, कि उनसे हममें वह निश्चयता, जैसे हम इन संस्कार को हाथ में पकड़ते, और अपने मुंह से खाते और पीते है। जिससे हमारे जीवन पोषित होते है। उसी निश्चयता के साथ हम विश्वास से, (जो कि हमारी आत्मा का हाथ और मुँह है) हमारे एकमात्र उद्धारकर्ता के सच्चे शरीर और रक्त को, अपने आत्मिक जीवन की बढ़ोत्तरी के लिए अपनी आत्मा में स्वीकार करते हैं। अब जिस प्रकार यह निश्चित और हर शक, (दुविधा) से परे है। कि यीशु मसीह ने उसके संस्कार के इस्तेमाल की आज्ञा हमें व्यर्थ ही नहीं दी, इसलिए वह हममें वह सब करता है। जो इन पवित्र चिन्हों के द्वारा प्रस्तुत होते है। यद्यपि यह बात हमारी समझ से परे है। और हम इसे समझ नही सकते, क्योंकि पवित्र आत्मा के कार्य छिपे और हमारी समझ से बाहर है। इसलिए हम कोई गलती नही करते जब कहते है। कि जो हमने खाया और पिया वह मसीह का स्वाभाविक शरीर और रक्त है। परन्तु जिस प्रकार हम इसमें शामिल होते है। वह मुंह से नही वरन आत्मा से विश्वास के द्वारा, तब यद्यपि मसीह स्वर्ग में हमेशा अपने पिताजी के दाहिने बैठा है। फिर वह हमें विश्वास से अपने साथ शामिल करना समाप्त नही करता। यह पर्व एक आत्मिक मेज है। जिसमे मसीह अपने आपके और अपने सभी फायदे हमें देता है और हमारे आनन्द के लिए अपने आपको और अपने दु:खों और मृत्यु के गुणों को हमें देता है। और हमारी अशान्त आत्मा को उसके शरीर में खाने से, पोषण, शक्ति और तसल्ली देता है। और उसके लहू को पीने से हमें उत्साहित और तरोताजा करता है।

यद्यपि संस्कार, इससे जुड़ी बातों का प्रतीक है। तो भी यह सभी मनुष्य द्वारा स्वीकार नहीं किया जा सकता, अधर्मी इसे अपने ऊपर दोष लाने के लिए स्वीकार करते हैं। परन्तु संस्कार की सत्यता को नहीं ग्रहण करते, जैसे यहूदा और जादू-टोना करने वाला साइमन, दोनों ने संस्कार ग्रहण किया, परन्तु यीशु मसीह जो इनमें प्रतीक है ग्रहण नहीं किया, जिसमें सिर्फ विश्वासी शामिल किये जाते है। आखिरी बात हम इस संस्कार को परमेश्वर के लोगों की सभा में दीनता, आदर, हमारे उद्धारकर्ता मसीह की मृत्यु को याद करते हुए, धन्यवाद के साथ, अपने विश्वास और मसीह धर्म का अंगीकार करते हुए इसे ग्रहण करते है। इसलिए यदि कोई बिना अपने आपको जांचे परखे, इस मेज में रोटी खाता और प्याले से पीता है। वह अपने लिये न्याय को खाता पीता है। एक शब्द में, हम इस संस्कार में शामिल होने से परमेश्वर और अपने पड़ोसी के साथ, उत्साही प्रेम में आगे बढ़ते है।

इसलिए हम मनुष्य रचित सभी मिश्रणों को जो इस संस्कार में जोड़े गये हैं। अस्वीकार करते हैं, और दृढ़ता से जैसे मसीह और उसके प्रेरितों ने सिखाया, उसमें सन्तुष्ट होते हैं। और इसके विषय में जैसा उन्होने (यीशु और प्रेरितों) कहा है, हम कहते हैं।

लेख -36

न्याय सम्बन्धी बाते (नागरिक शासन)

हम विश्वास करते हैं, मनुष्य के पतन के कारण परमेश्वर ने राजा, अधिकारी और न्यायाधीश नियुक्त किये हैं, कि संसार पर शासन, निश्चित व्यवस्था और नियमों से हो, कि मनुष्य का दुराचार (बुरी बातों) को रोका जा सके और उनके बीच सभी बातें अच्छे नियम और शिष्टाचार के साथ हो, इस उद्देश्य के लिए उसने न्यायालय को बुरा करने वाले को दण्ड और भले लोगों की सुरक्षा के लिए अधिकार (तलवार) दिया है।

उनके कार्य सिर्फ नागरिक राज्य की खुशहाली और सम्पन्नता का ख्याल रखने के लिये ही नहीं है। पवित्र सेवा की सुरक्षा भी कि मसीह का राज्य फैलाया जा सके, इसलिए उन्हें सुसमाचार के वचन के प्रचार को समर्थन देना है, कि जैसे परमेश्वर ने अपने वचन में आज्ञा दी उसका आदर और आराधना सब कर सकें।

फिर भी यह हर एक व्यक्ति चाहे वह कहीं का भी, कैसी ही योग्यता का, और स्थिति का है। उसका कर्तव्य है, कि वह न्यायधीशों के आधीन रहे, और कृतज्ञाता के लिए उन्हें सम्मान और आदर दें, और हर बात में जो वचन के विरुद्ध नहीं है, उनकी आज्ञा मानें, और उनके लिए प्रार्थना करें, ताकि परमेश्वर उन्हें शासित और उनके हर कार्यों में अगुवाई करे, और ताकि हम सभी भलाई के साथ, शांति का जीवन जी सके।

इसलिए हम उन सभी लोगों से नफरत करते हैं, जो न्यायाधीशों के ऊँचे अधिकारों की अवहेलना करते हैं और न्याय को नहीं मानते, और शिष्टाचार और भले नियमों में गड़बड़ी पैदा करते हैं, जो परमेश्वर ने मनुष्यों के बीच स्थापित किये हैं।

लेख -37

अन्तिम न्याय

अन्तत: हम परमेश्वर के वचन के अनुरूप विश्वास करते हैं, कि जब प्रभु द्वारा ठहराया (नियुक्त) (जो सभी प्राणियों के लिए अनजान है) वक्त आएगा और चुनो हुओं की संख्या पूरी हो जाएगी। हमारा प्रभु यीशु मसीह स्वर्ग से शारीरिक और सदृश्य जैसे व स्वर्ग में चढ़ा था, वैसे ही-बड़ी महिमा और गौरव के साथ अपने आपको, मृतकों और जीवितों का न्यायी घोषित करते हुए, इस संसार को आग और लपटों से शुद्ध करने के

लिए आएगा।

तब सभी मनुष्य, पुरुष, स्त्री और बच्चे जो जगत की उत्पत्ति से लेकर अन्त तक हुए हैं, इस महान न्यायधीश के सामने उपस्थित होंगे, उन्हें प्रधान स्वर्गदूत की और परमेश्वर की तुरही की आवाज से इकट्ठा किया जाएगा। सभी मृतक पृथ्वी से जी उठेंगे और उनकी आत्मा उनके शरीर से जुड़ जाएगी और जो जीवित होंगे वह अन्य (दूसरों) के समान मरेंगे नहीं, परंतु पलक झपकते ही नाशवान से अविनाशी अवस्था में परिवर्तित हो जाएंगे, तब पुस्तकें, (जिसे विवेक कहते हैं) खोली जाएगी और मृतकों का जो अच्छा या बुरा उन्होंने संसार में किया है, के अनुसार उनका न्याय होगा। तब सभी मनुष्य हर एक बेकार शब्द जो उन्होंने बोला है, जिसे संसार ने मनोरंजन और मजाक समझा था, का हिसाब देंगे, और फिर मनुष्य की गुप्त बातें, काम और दिखावा सभी मनुष्य के सामने प्रगट हो जाएगा।

और इसलिये बुरे और अधर्मी के लिए यह न्याय, डरावना और भयानक होगा, परंतु चुने हुओ और धर्मियों के लिए चाह रखने वाला और तसल्ली देने वाला होगा, क्योंकि तब उनका पूर्ण छुटकारा सिद्ध होगा, और तब वे अपने परिश्रम और परेशानियों का प्रतिफल पाएंगे। उनकी निर्दोषता सभी मनुष्यों के सामने प्रगट होगी और वे परमेश्वर के क्रोध और बदले को अधर्मी पर देखेंगे, जिन्होंने उनको संसार में अति क्रूरता से सताया और पीड़ा दी थी, वे अपने विवेक की गवाही से दोषी ठहरेंगे और उस आग में जो शैतान और उसके दूतों के लिए बनायी गई है, उस आग में पीड़ा सहने के लिए अविनाशी बनाए जाएंगे।

परंतु विश्वास योग्य और चुनो हुओ को महिमा और सम्मान का मुकुट पहनाया जाएगा और परमेश्वर का पुत्र अपने पिता परमेश्वर और उसके चुने हुए स्वर्ग दूतों के सम्मुख उनका नाम पुकारेगा, उनकी आँखों से सभी आँसू पोछ डाले जाएंगे और उन्हें जिन्हें अभी कई न्यायाधीश दुष्ट और अधर्मी कहकर दोष लगाते हैं। वे अब परमेश्वर के पुत्र होंगे और एक अनुग्रहकारी पुरुस्कार के लिए, प्रभु उन्हें ऐसी महिमा से लिप्त करेगा जिसकी कभी मनुष्य के हृदय ने कल्पना भी नहीं की थी।

इसलिए हम उस महान दिन का इन्तजार बड़े उत्साह से करते हैं, कि हम मसीह यीशु हमारे प्रभु में परमेश्वर के वायदों का पूर्णता आनन्द मना सके।

●

HEIDELBERG CATECHISM (प्रश्नावली)

हमारे सिद्धान्तों का दूसरा मानक प्रश्नावली है, इस Heidelberg प्रश्नावली कहा जाता है, क्योंकि यह Heidelberg जर्मन Electorate की राजधानी में Elector, Fredrick III के आदेश पर तैयार की गयी, ताकि कालविन का सुधार वहाँ फैल सके, परिणाम स्वरूप एक नयी प्रश्नावली Elector की मान्यता पाकर कालविन के लेखों को इकट्ठा करके 1563 में प्रकाशित हुई।

नीदरलैण्ड में Heidelberg प्रश्नावली, तत्काल Petru Denthenas के प्रयास जिसने इसे Dutch भाषा मं अनुवादित किया (1566) में प्रभावित होकर स्वीकार की गई, 1566 में Peter Gabrel ने Amsterdam में कलीसिया के सामने इसकी व्याख्या की। 16वीं शताब्दी में National Synod ने इसे स्वीकार कर लिया। सभी सेवकों को इसे अपनाना और कलीसिया में इसकी व्याख्या आवश्यक हो गयी, Synod of Dort ने 1618-19 से लेकर, अब तक इसे मसीह संशोधित कलीसियाओं में लागू रखा है।

आज भी Heidelberg प्रश्नावली साधारणत: सभी संशोधित कलीसियों द्वारा स्वीकार की जाती है।

- - -

HEIDELBERG CATECHISM (प्रश्नावली)

प्रभु का दिन - I

प्रश्न 1 : जीवन और मृत्यु तुम्हारी एकमात्र तसल्ली क्या है?

उत्तर : यह, कि मैं शरीर और आत्मा में, जीवन और मृत्यु दोनों में अपना स्वयं का नहीं वरन् अपने विश्वास योग्य उद्धारकर्ता यीशु मसीह का हूँ, जिसने अपने बहुमूल्य रक्त से मेरे पापों की पूरी कीमत चुकायी और मुझे शैतान की सामर्थ से छुटकारा दिलाया है, और मुझे सुरक्षित रखता है, कि बिना मेरे स्वर्गीय पिता की इच्छा से, मेरे सिर का एक बाल भी नहीं झड़ (गिर) सकता। हाँ ये सभी बातें मेरे उद्धार में अति सहायक (उपयोगी) हैं, जिससे वह अपनी पवित्र आत्मा से, मुझे अनन्त जीवन के लिए आश्वस्त करता और मुझे उसके लिए जीने के लिए इच्छा देता और तैयार करता है।

रोमियो - 14.8, I कुरि-6:19,
I कुरि. - 3.23, तीतुस - 2:14
I पतरस - 1:18, 19, I यूहन्ना - 1:17, 2:2, 12

इब्रा. 2:14, । यूहन्ना- 3:8, यूहन्ना - 8:34-36,
यहून्ना, 6:39, 10:28, 29 ॥ थिस 3:3, । पतरस 1:5
मत्ती - 10.30, लूका 21:18, इफि-1:14, रोमि-8:16,
रोमि. - 8.28, ॥ कुरि.-1:22, 5:5, रोमि -8:14, । यूह-3:3

प्रश्न 2 : तुम्हें कितनी बातों को जानना आवश्यक है, कि तुम इस तसल्ली में आनन्द से जी और मर सको?

उत्तर : तीन बातें- पहली - मेरे पाप और दु:ख कितने बड़े हैं दूसरी-मैं कैसे अपने पाप और दु:खों से छुड़ाया गया हूँ, तीसरी-मैं परमेश्वर को इस छुटकारें के लिए कैसे धन्यवाद देता हूँ।

मत्ती - 11:28, इफि. 5:8,
यूहन्ना - 9:41, मत्ती-9:12 रोमि. 3:10,
। यूहन्ना - 1:9, 10
यूहन्ना - 17:3, प्रेरि. 4:12, 10:43
इफि . 5:10, भज - 50:14
रोमि - 6:13, ॥ तिमु - 2:15

पहला भाग
पाप और दु:ख
प्रभु का दिन - II

प्रश्न 3 : कहाँ से तुम्हें अपने दु:ख का पता चलता है?

उत्तर : परमेश्वर की व्यवस्था से।

रोमियो - 3:20

प्रश्न 4 : परमेश्वर की व्यवस्था हमसे क्या चाहती है ?

उत्तर : यीशु मसीह सारांश में इसे सिखाते हैं, मत्ती : 22:37-40, ''तू प्रभु अपने परमेश्वर से अपने सारे हृदय, अपने सारे प्राण और अपनी सारी बुद्धि से प्रेम कर, यही बड़ी और प्रमुख आज्ञा है और इसी के समान दूसरी यह है, तू अपने पड़ोसी से अपने समान प्रेम कर, यही दो आज्ञाएं सम्पूर्ण व्यवस्था और नबीयों का आधार है।''

व्यवस्था - 6:5, लैव्य. 19:18, मर-12:30, लूका : 10:27

प्रश्न 5 : क्या तुम इन्हें पूर्ण (सिद्धता) से पूरा कर सकते हो ?

उत्तर : किसी भी तरह से नहीं। वरन् स्वभाव से मैं परमेश्वर और अपने पड़ोसी से घृणा करता हूँ।

रोमि. - 3:10, 20, 23, । यूहन्ना - 1:8,10, रोमि - 8:7, इफि - 2:3, तीतुस -3:3, उत-6:5, 8:21, यिर्म-17:9, रो.-7:23

प्रभु का दिन - III

प्रश्न 6 : तो क्या परमेश्वर ने मनुष्य को इतना भ्रष्ट, तर्क रहित और पतित बनाया?

उत्तर ' किसी भी तरह नहीं ! वरन् परमेश्वर ने मनुष्य को अच्छा और अपनी समानता, सच्ची धार्मिकता और पवित्रता में बनाया, कि वह अपने सृष्टिकर्ता परमेश्वर को जान सके, हृदय से प्रेम कर सके और उसके साथ अनन्त आशीषों में रहते हुए उसकी स्तुति और महिमा कर सके।

उत : 1:26, 27, 31, इफि - 4:24, कुलु -3:10, II कुरि - 3:18

प्रश्न 7 : फिर मनुष्य का भ्रष्ट (पतित) स्वभाव कहाँ से आता है ?

उत्तर : ऐदेन की वाटिका में हमारे आदि माता पिता की अनाज्ञाकारिता और पतन के द्वारा, जिससे हमारा स्वभाव इतना दूषित हो जाता है कि हम सभी पाप में गर्भधारण और जन्म लेते हैं।

उत - 3, रोमि 5:12, 18,19, भज - 5:15, उत-5:3

प्रश्न 8 : क्या हम इतने भ्रष्ट हो गये हैं, कि कुछ भी अच्छा नहीं कर सकते ? और बुराई की तरफ हमारा झुकाव सदा रहता है?

उत्तर : हां ! यह सत्य है। जब तक कि हम परमेश्वर की आत्मा द्वारा फिर से नये नहीं किये जाते।

उत-6:5, 8:21, अय-14:4, 15:14, 16:35, यूह-3:6, यशा-53:6 यूह-3:3, 5:1, 1 कुरि - 12:3, II कुरि. 3:5

प्रभु का दिन - IV

प्रश्न 9 : क्या तब परमेश्वर गलती करता है, मनुष्य को ऐसी व्यवसथा देकर जिसे वह पूरा नहीं कर सकता ?

उत्तर : नहीं ! कदापि नहीं, परमेश्वर ने मनुष्य को इस योग्य बनाया, कि वह इसे (व्यवस्था) को पूरा कर सके, परंतु मनुष्य शैतान के बहकावे में आकर अपनी स्वेच्छा की अनाज्ञाकारिता से, अपने आप और अपने सभी वंशजां को

इन गुणों से अलग कर लिया।

इफि.-4:24, उत-3:13, । तिमु-2:13,14, उत-3:6, रोमि - 5:12

प्रश्न 10 : क्या परमेश्वर ऐसी अनाज्ञाकारिता और भटकने को सहन करेगा और इसका दण्ड नहीं देगा ?

उत्तर : कदापि नहीं, वरन् वह हमारे मौलिक पाप और वास्तविक पाप से बहुत दु:खी होता है और उन्हें उचित न्याय से अस्थायी और हमेशा के लिए दण्ड देगा, जैसी कि उसने घोषणा की है। जो कोई व्यवस्था की पुस्तक में लिखी सभी बातों का पालन नहीं करता शापित है।

उत-2:17, रोमि-5:12, भज-50:21, नहे-1:2, निर्ग-20:5, 34:7, रोमि-1:18, इफि- 5:6, व्य-27:26, गला- 3:16

प्रश्न 11 : तब क्या परमेश्वर दयालु नहीं है?

उत्तर : परमेश्वर दयालु है, परंतु वह न्यायी भी है, इसलिए उसके न्याय की मांग है कि पाप जो उसकी बड़ी महिमा के विरुद्ध हुआ है, उसका दण्ड भी बड़ा हो जो कि शरीर और आत्मा पर हमेशा का दण्ड है।

निर्ग-34:6,7, 20:6, भज-7:9, निर्ग-20:5, 23:7, 34:7, भज-5:45

दूसरा भाग

छुटकारा

प्रभु का दिन - V

प्रश्न 12 : तब जबकि, परमेश्वर के धर्मी न्याय से हम अस्थायी और अनन्तकाल दण्ड के हकदार है तो क्या ऐसा कोई उपाय नहीं, जिससे हम इस दण्ड से बच सकें और दुबारा उसका पक्ष प्राप्त कर सकें ?

उत्तर : परमेश्वर का न्याय का संतुष्ट होना आवश्यक है, इसलिए हमें उसके न्याय को संतुष्ट करना आवश्यकत है। चाहे अपने आप अथवा किसी अन्य के द्वारा।

उत -2:17, निर्ग-23:7, यहेज-18:4, मत- 5:26, ॥ थिस-1:6, लूका-16:2, रोमि-8:4

प्रश्न 13 : लेकिन क्या हम स्वयं पूर्ण संतुष्टि कर सकते हैं?

उत्तर : कदापि नहीं, वरन हम रोज इसे (न्याय) को बढ़ाते जाते हैं।

अय-9:2, 15:15,16, 4:18,19, भज-130:3, मत्ती-6:12, 18:25, 16:26

प्रश्न 14 : क्या कहीं कोई ऐसा प्राणी है, जो हमारे बदले परमेश्वर के न्याय को संतुष्ट कर सकता है?

उत्तर : नहीं ! परमेश्वर हमारे बदले किसी अन्य प्राणी को उस पाप के बदले जो हमने किया है, दण्ड नहीं देगा। और न ही मात्र प्राणी, पाप के विरुद्ध परमेश्वर के अनन्त क्रोध के बोझ को सह सकता कि दूसरों को इससे बचा ले।

यहेज-18:4, उत-3:17, नहे-1:6, भज 130-3

प्रश्न 15 : तो हमें किस प्रकार का मध्यस्थ और छुड़ाने वाला चाहिए ?

उत्तर : वह जो सच्चा और धर्मी मनुष्य हो और फिर भी सभी प्राणियों से सामर्थी हो, जो सच्चे परमेश्वर के अतिरिक्त कोई नहीं है।

I कुरि-15:21, इब्रा-7:26, यशा-7:14, 9:6, यिर्म-23:6, लूका-11:22

प्रभु का दिन - VI

प्रश्न 16 : क्यों आवश्यक है, कि वह सच्चा और धर्मी मनुष्य हो?

उत्तर : क्योंकि परमेश्वर का न्याय चाहता है, कि जिस मनुष्य स्वभाव ने पाप किया है, वही पाप के लिए संतुष्टि दे और क्योंकि जो स्वयं पापी है वह दूसरों के पापों के लिए संतुष्टि नहीं दे सकता।

यहेज-18:4, 20, रोमि-5:18, । कुरि-15:21, इब्रा-2:14-16, 27 भज-49:8

प्रश्न 17 : क्यों आवश्यक है कि वह सच्चे परमेश्वर के अतिरिक्त अन्य कोई न हो?

उत्तर : इसलिए कि वह उसके ईश्वरीय सामर्थ से, अपने मनुष्य स्वभाव में परमेश्वर के क्रोध का बोझ, बरदाश्त कर सके, और हमारे लिये धार्मिकता और जीवन प्राप्त करे?

यशा-9:6, व्य-4:24, नहे-1:6, भज-130:3, यशा-53:4, 5,11

प्रश्न 18 : लेकिन ऐसा मध्यस्थ कौन है, जो एक साथ सच्चा परमेश्वर और सच्चा धर्मी मनुष्य है?

उत्तर : हमारा प्रभु यीशु मसीह ''जो हमारे लिये परमेश्वर की ओर से ज्ञान , धार्मिकता, पवित्रता और छुटकारा ठहरा।''

I यूहन्ना-5:20, रोमि-9:5,8:3, गला-4:4, यशा-'9:6, यिर्म-23:6, मला-3:1, लूका-1:42, 2:6,7, रोमि-1:3, 9:5, फिलि-2:7, इब्रा-2:14, 16,17, 4:15, यशा-53:9,11, यिर्म-23:5, लूका-1:35, यूहन्ना-2:46, इब्रा-4:15,

I पत-1:19, 2:22, 3:18, I तिमु-2:5, मत्ती-1:23, I तिमु 3:16, लूका-2:11, इब्रा-2:9, I कुरि-1:30

प्रश्न 19 : तुम इसे कहाँ से जानते हो?

उत्तर : पवित्र सुसमाचार से, जिसे परमेश्वर ने स्वयं पहली बार एदेन की वाटिका में प्रगट किया था, बाद में पवित्र कुलपतियों और नबीयों द्वारा प्रगट किया गया, और बलिदान और व्यवस्था के संस्कारों में इसकी छवि दिखी और अन्त में उसके इकलौते बेटे में पूरी हुई।

उत-3:15, 22:18, 12:3, 49:10, यशा-53, 42:1-4, 43:25, 49:5, 6, 23, यिर्म-23:5,6, 31:32, 33, 32:39-41, मीका-7:18-20, प्रे.-10:43, इब्रा-10:1,7, कुलि-2:7, यूहन्ना-5:46, रोमि-10:4, गला-4:4, 3:24, कुलि-2:17

प्रभु का दिन - VII

प्रश्न 20 : क्या सभी मनुष्य मसीह द्वारा बचाए गए हैं जैसे सभी आदम में नाश हुए?

उत्तर : नहीं ! परंतु वे जो सच्चे विश्वास से मसीह में जुड़ते और उसके सभी फायदे स्वीकार करते हैं।

मत्ती-7:14, 22:14, 16:6, यूहन्ना-1:12, 3:16, 18,36, यशा-53:11, भज-2:12, रोमि-11:3., 3:22, इब्रा-4:3, 5:9, 10:39, 11:6

प्रश्न 21 : सच्चा विश्वास क्या है ?

उत्तर : सच्चा विश्वास सिर्फ ज्ञान ही नहीं है, जिससे मैं उस सच्चाई को थामे रहूँ जो परमेश्वर ने अपने वचन में प्रगट की है, वरन् एक दृढ़ विश्वास है, जो पवित्र आत्मा सुसमाचार से मेरे हृदय में उत्पन्न करता है, कि सिर्फ दूसरों के लिये ही नहीं वरन् पापों से छुटकारा, हमेशा की धार्मिकता और उद्धार, परमेश्वर द्वारा, सिर्फ अनुग्रह से और मसीह के वजह से मुफ्त में मेरे लिये भी है।

याक-2:19, इब्रा-11:1,7, रोमि-4:18-21, 10:10, इफि-3:12, इब्रा-4:16, याक-1:6, गला-5:22, मत्ती:16:17, II कुरि.-4:13, इफि-2:8, फिलि-1:9, रोमि-1:16, 10:17, I कुरि.-1:21, रोमि-1:17, गला-3:11, इब्रा-10:19, इफि-2:8, रोमि-3:24, 5:19, लूका-1:77, 78

प्रश्न 22 : एक मसीही के लिए तब क्या विश्वास करना आवश्यक है?

उत्तर : वह सब कुछ, जिसका वायदा हमसे सुसमाचार में किया गया है, जो हमारे व्यापक और सन्देह रहित मसीह विश्वास के लेख, हमें संक्षेप में सिखाते हैं। यूहन्ना 20:13, मत्ती-28:19, मर-1:15

प्रश्न 23 : ये लेख क्या हैं?

उत्तर :

1. **मैं विश्वास रखता हूँ सर्वसामर्थी पिता परमेश्वर पर जिसने आकाश और पृथ्वी की सृष्टि की।**
2. **और उसके इकलौते पुत्र हमारे प्रभु यीशु मसीह पर**
3. **कि वह पवित्र आत्मा की सामर्थ से देहधारी होकर कुंआरी मरियम से उत्पन्न हुआ।**
4. **पेन्तुस पिलातुस के राज्य में दु:ख उठाया क्रूस पर चढ़ाया गया, मारा गया, गाढ़ा गया, अधोलोक में गया।**
5. **तीसरे दिन मृतकों में से जी उठा।**
6. **आकाश पर चढ़ गया और सर्वसामर्थी पिता परमेश्वर के दाहिने हाथ बैठा है।**
7. **जहाँ से वह जवितों और मृतकों का न्याय करने के लिये आएगा।**
8. **मैं विश्वास रखता हूँ पवित्र आत्मा पर,**
9. **मैं विश्वास रखता हूँ विश्वासियों की मण्डली पर, संतों की संगति पर,**
10. **पापों की क्षमा,**
11. **देह के जी उठने,**
12. **और अनन्त जीवन पर,**

प्रभु का दिन - VIII

प्रश्न 24 : ये लेख किस तरह से विभाजित हैं?

उत्तर : ये तीन भागों में विभाजित हैं। **पहला**-परमेश्वर पिता और हमारे सृष्टिकर्ता के लेख हैं, **दूसरा**-परमेश्वर पुत्र और हमारे छुटकारें के, **तीसरा**- परमेश्वर पवित्र आत्मा और हमारे पवित्रीकरण के लेख हैं।

प्रश्न 25 : जबकि सिर्फ एक ही ईश्वरीय अस्तित्व है, तो तुम क्यों पिता, पुत्र, पवित्र आत्मा, तीन की बातें करते हो?

उत्तर : क्योंकि परमेश्वर ने अपने आपको, अपने वचन में ऐसे ही प्रगट किया है कि ये तीनों अलग-अलग व्यक्ति, एक ही सच्चा और अनन्त परमेश्वर है।

व्य-6:4, इफि-4:6, यशा-44:6, 45:5, I कुरि.-8:4,6 यशा-61:1, लूका-4:18, उत-1:2,3, भज-33:6, यशा-48:16, मत्ती-3:16, 17, 28:19, I यूहन्ना-5:7, यशा-61:1,3, यूहन्ना-14:26, 15:26, II कुरि.-13:14, गला-4:6, इफि-2:18, तीत-3:5,6

प्रभु का दिन - IX

प्रश्न 26 : तुम क्या विश्वास करते हो जब तुम यह कहते हो, ''मैं विश्वास रखता हूँ सर्वसामर्थी पिता परमेश्वर पर जिसने आकाश और पृथ्वी की सृष्टि की?''

उत्तर : हम विश्वास करते हैं, कि हमारे प्रभु यीशु मसीह के अनन्तकालीन पिता ने, आकाश और पृथ्वी और जो कुछ उसमें है, की सृष्टि बिना किसी (शून्य) से की। जो मसीह उसके बेटे जो मेरा परमेश्वर और मेरा पिता है, के लिये, अपनी अनन्त युक्ति और देखरेख से सृष्टि को संभालता और शासन करता है, जिसमें मैं विश्वास करता हूँ, कि जो भी मेरी आत्मा और शरीर के लिए आवश्यक है वह मुझे देगा, और मुझमें जो कुछ भी बुरा होने की अनुमति वह देता है, आंसुओं की घाटी में वह उसे मेरी भलाई में परिवर्तित कर देगा, वह ऐसा करने में सक्षम है। क्योंकि वह सर्वसामर्थी परमेश्वर और एक विश्वास योग्य पिता है।

उत-1, 2, निर्ग-20:11, अय-33:4, 38:39, 4:24, 14:15, भज-33:6, यशा-45:7, इब्रा-1:3, भज-104:27-30, 115:3, मत्ती-10:29, इफि-1:11, यूहन्ना-1:12, रोमि-8:15, गला-8:15, गला-4:5-7, इफि-1:5, भज-55:22, मत्ती-6:25, 26, लूका-12:22, रोमि-8:28

प्रभु का दिन - X

प्रश्न 27 : परमेश्वर की देखरेख (ईश्वरीय कृपादृष्टि) से आपका क्या तात्पर्य है?

उत्तर : इससे हमारा तात्पर्य है, कि परमेश्वर की सर्वसामर्थी और सर्वव्यापी सामर्थ, जिससे वह आकाश, पृथ्वी और जो कुछ उसमें है, सबको संभालता और शासित करता है, कि पेड़ और घास, वर्षा और सूखा, उपज और उपजाऊ वर्ष, खाना और पीना, अच्छा स्वास्थ्य और बीमारी, अमीरी और गरीबी, सभी कुछ अचानक नहीं होता, वरन् उसके हाथों से होता है।

प्रे-17:25-28, यिर्म-23-23-24, यशा-29:15,16, यहेज-8:12, इब्रा-1:3, यिर्म-5:24, प्रे-14:17, यूहन्ना-9:3, नीति-22:2, मत्ती-10:29, नीति-16:33

प्रश्न 28 : हमें इस बात से क्या फायदा है कि उसने सब कुछ बनाया और अपनी देखरेख में सब चीजों को स्थिर रखता है?

उत्तर : इससे हमें यह फायदा है, कि विपत्ति में हम धैर्य रखें, सफलता में धन्यवाद दें और आने वाले समय में हम हमारे परमेश्वर और पिता में विश्वास रख सकें, कि कोई भी हमें उसके प्रेम से अलग नहीं कर सकता, क्योकि सभी प्राणी उसके हाथ में हैं कि बिना उसकी इच्छा से वे कुछ नहीं कर सकते।

रोमि-5:3, याक-1:3, भज-39:9, अय-1:21, 22,I थिस-5:18, व्य-8:10, भज-55:22, रोमि-5:4, 8:38, 39, अय-1:12, 2:6, नीति-21:1, प्रेरि-17:26

प्रभु का दिन - XI

प्रश्न 29 : परमेश्वर के पुत्र को यीशु जो कि उद्धारकर्ता है क्यों कहा गया है?

उत्तर : क्योंकि वह हमें सभी पापों से छुड़ाता और बचाता है, और इसलिए भी कि उसके अतिरिक्त अन्य किसी में उद्धार नहीं है।

मत्ती-1:21, इब्रा-7:25, प्रे-4:12, यूहन्ना-15,4,5, I तिमु-2:5

प्रश्न 30 : तब, वे जो अपना उद्धार और संतों की देखभाल का कार्य अपने आप करते हैं, उन्हें सिर्फ यीशु पर विश्वास करना चाहिये अथवा अन्य किन्हीं बातों में?

उत्तर : उन्हें ऐसा नहीं करना चाहिए, यद्यपि शब्दों में वे उस पर (यीशु) घमण्ड करते हैं। फिर भी कार्यों में एकमात्र उद्धारकर्ता यीशु का इन्कार करते हैं। दो में से एक बात सत्य होनी आवश्यक है, या तो यीशु पूर्ण उद्धारकर्ता नहीं, अन्यथा जो सच्चे विश्वास से इस उद्धारकर्ता को स्वीकार करते हैं उसमें जो कुछ उद्धार के आवश्यक है, पा लेते हैं, मानना आवश्यक है।

I कुरि-1:13, 3, गला-5:4, इब्रा-12:2, यशा-9:6, कुलि-1:19, 20, 2:10, I यूहन्ना-17

प्रभु का दिन - XII

प्रश्न 31 : उसे मसीह जिसका तात्पर्य अभिषिक्त है, क्यों कहा जाता है?

उत्तर : क्योंकि, वह परमेश्वर पिता द्वारा नियुक्त किया गया और पवित्र आत्मा से अभिषेक किया गया है, कि हमारा मुख्य नबी और शिक्षक हो, जिसने परमेश्वर की गुप्त युक्ति और हमारे छुटकारे की इच्छा को, पूर्णता हम पर प्रगट किया है और हमारा महायाजक है, जिसने अपने शरीर के बलिदान से हमें छुड़ा लिया है और निरन्तर हमारे लिए परमेश्वर से विनती करता है और हमारा अनन्त राजा है, जो अपने वचन और आत्मा से हम पर प्रभुता करता है और उस उद्धार में जो उसने हमें दिया हमें संभालता और सुरक्षा प्रदान करता है।

भज-45:7, इब्रा-1:9, यशा-61:1, लूका-4:18, व्य-18:15, प्रे-3:22,

7:37, यशा-55:4, यूहन्ना-1:18, 15:15, भज-110:4, इब्रा-10:12, 14, 9:12, 14, 28, रोमि-8:34, इब्रा-9:24, I यूहन्ना-2:1, रोमि-5:9,10, भज-2:6, जक-9:9, मत्ती-2:15, लूका-1:33, मत्ती-28:18, प्रक-12:10,11

प्रश्न 32 : परंतु तुम्हें मसीही क्यों कहा जाता है?

उत्तर : क्योंकि मैं विश्वास से मसीह का सदस्य हूँ और उसके अभिषेक में शामिल हूँ, कि मैं उसका नाम ले सकूं, अपने आपको धन्यवाद का जीवित बलिदान करके उसे प्रस्तुत करूँ और आजाद और भले विवेक से इस जीवन में पाप और शैतान से युद्ध कर सकूं और यहाँ के बाद उसके साथ हमेशा सभी (लोगों) प्राणियों पर राज्य करूँ।

प्रे-11:26, I कुरि-6:15, I यूह-2:27, प्रे-2:17, मत्ती-10:32, रोमि-10:10, 12:1, I पत-2:5,9, प्रका-1:6, 5:8,9, I पत-2:11, रोमि-6:12,13, गला-5:16, 17, Eph-6:11, I तिमु-1:10, 18, II तिमु-2:12, मत्ती-25:34

प्रभु का दिन - XIII

प्रश्न 33 : उसे परमेश्वर का इकलौता पुत्र क्यों कहा जाता है, जबकि हम भी परमेश्वर की संतान हैं ?

उत्तर : क्योंकि एकमात्र मसीह ही परमेश्वर का अनन्तकालीन, स्वाभाविक पुत्र है, परंतु हम अनुग्रह से मसीह के लिए परमेश्वर की गोद ली हुई संतान है।

यूह-1:14, इब्रा-1:1, 2, यूह-3:16, I यूह-4:9, रोमि-8:16, 32, यूह-1:12, गला-4:6, इफि-1:5,6

प्रश्न 34 : तुम उसे अपना प्रभु क्यों कहते हो?

उत्तर : क्योंकि उसने हमें, हमारी आत्मा और शरीर को हमारे सभी पापों से, सोने और चांदी से नहीं वरन अपने बहुमूल्य रक्त से छुड़ाया है और शैतान की सभी सामर्थ से छुड़ाकर हमें अपना बनाया है।

I पत-1:18, 19, 2:9, I कुरि.-6:20, I तिमु-2:6, यूह-20:28

प्रभु का दिन - XIV

प्रश्न 35 : वह पवित्र आत्मा से देहधारी होकर कुंवारी मरियम से उत्पन्न हुआ इसका क्या तात्पर्य है?

उत्तर : इसका मतलब है, कि जो परमेश्वर का अनन्तकालीन पुत्र है, जो सच्चा और अनन्त परमेश्वर है और निरन्तर रहेगा, उसने मनुष्य का स्वरूप धारण किया,

पवित्र आत्मा के सामर्थ से कुंवारी मरियम से खून और शरीर धारण किया कि वह दाऊद का सच्चा वंशज और पाप को छोड़कर, सभी बातों में अपने भाइयों के समान बने।

I यूह-5:20, यूह-1:1, 17:3, रोमि-1:3, 9:5, गला-4:4, लूका-1:31, 42, 43, मत्ती-1:20, लूका-1:35, रोमि-1:3, भज-132-11, II शम-7:12, लूका-1:32, प्रे-2:30, फिल-2:7, इब्रा-2:14, 17, 4:15

प्रश्न 36 : पवित्र गर्भधारण और मसीह के जन्म लेने तुम्हें क्या फायदा होता है?

उत्तर : हमारा फायदा है कि वह हमारा मध्यस्थ है और उसकी निर्दोषता और सिद्ध पवित्रता में परमेश्वर के सामने हमारे पाप, जिनमें हमारा गर्भधारण और जन्म हुआ ढक जाते हैं।

इब्रा-7:26,27, I पत-1:18,19, 3:18, I कुरि.-1:30, रोमि-8:3,4, यशा-53:11, भज-32:1

प्रभु का दिन - XV

प्रश्न 37 : इसका क्या मतलब है, कि उसने दु:ख उठाया?

उत्तर : इसका मतलब है कि अपने पूरे जीवन काल वह जब पृथ्वी पर रहा, विशेषकर जीवन के अन्तिम समय, उसने शरीर और आत्मा में, पूर्ण मनुष्य जाति के पाप के विरुद्ध, परमेश्वर के क्रोध को अपने ऊपर ले लिया, ताकि अपनी यातना के प्रायश्चित, बलिदान से वह हमारी आत्मा और शरीर को अनन्तकाल की यातना से छुड़ाकर, हमारे लिए परमेश्वर का अनुग्रह, धार्मिकता और अनन्त जीवन प्राप्त करे।

यशा-53:4, I पत-2:24, 3:18, I तिमु-2:6, यशा-53:10, इफि-5:2, I कुरि-5:7, I यूह-2:2, रोमि-3:25, इब्रा-9:28, 10:14, गला-3:13, कुलि-1:13, इब्रा-9:12, I पत-1:18,19, रोमि-3:25, II कुरि- 5:21, यहू-3:16, 6:51, इब्रा-9:15, 10:19

प्रश्न 38 : उसने पेन्तुस पिलातुस के राज्य में दु:ख क्यों उठाया?

उत्तर : यद्यपि वह निर्दोष था, फिर भी वह अस्थायी न्यायधीश द्वारा दोषी ठहराया गया, जिससे उसने हमें परमेश्वर के न्याय जिसके हम आधीन थे, से स्वतन्त्र किया।

यूह-18:38, मत्ती-27:24, लूका-23:14, भज-19:4, भज-16:4, यशा-53:4,5, II कुरि-5:21, गला-3:13

प्रश्न 39 : क्या उसका क्रूस पर प्राण देना ज्यादा उचित था, इसकी अपेक्षा कि वह किसी और प्रकार से मृत्यु प्राप्त करता?

उत्तर : हाँ ! हाँ क्योंकि इस मृत्यु से मैं आश्वस्त होता हूँ, कि वह शाप जो मुझ पर था उसने अपने ऊपर ले लिया, क्योंकि क्रूस की मृत्यु परमेश्वर की और शापित थी।

गला-3:13, व्य-21:23

प्रभु का दिन - XVI

प्रश्न 40 : यह क्यों आवश्यक था कि मसीह अपने आपको मृत्यु तक दीन करे ?

उत्तर : क्योंकि परमेश्वर के न्याय और सच्चाई के लिए और हमारे पापों की संतुष्टि के लिए, परमेश्वर के पुत्र की मृत्यु के अतिरिक्त कोई अन्य उपाय नहीं था।
उत-2:12, रोमि-3:3:4, इब्रा-2:14,15

प्रश्न 41 : उसे दफनाया क्यों गया?

उत्तर : प्रमाणित करने के लिये, कि वह वास्तव में मरा था।
प्रे-13:29, मत्ती-27:59,60, लूका-23:53, यूहन्ना-19:38

प्रश्न 42 : जबकि मसीह हमारे मर गया, हमारा मरना क्यों आवश्यक है?

उत्तर : हमारी मृत्यु हमारे पाप की संतुष्टि नहीं है, वरन् हम पाप के लिए मरते हैं और अनन्त जीवन में प्रवेश करते हैं।
मर-8:37, भज-49-7, फिलि-1:23, यहू-5:24, रोमि-7:24

प्रश्न 43 : हमें मसीह के क्रूस पर बलिदान और मृत्यु से और क्या फायदे होते हैं?

उत्तर : हमें फायदे होते हैं, कि उसकी सामर्थ से हमारा पुराना मनुष्यत्व उसके साथ क्रूसित, मारा और दफनाया गया, कि शरीर की बुरी लालसाएं हम पर प्रभुता न कर सके, वरन् हम अपने आपको, उसको धन्यवाद का बलिदान करके प्रस्तुत करें।

रोमि-6:6, 12, 12:1

प्रश्न 44 : वह नरक में गया यह बात क्यों लिखी गयी ?

उत्तर : इसलिए कि बड़ी परीक्षाओं के समय, मैं आश्वस्त रहूँ और इस बात में तसल्ली पाऊँ कि मेरा प्रभु यीशु मसीह अपने अवर्णनीय दु:ख, यातना, भय और नरक की यातना जो उसने अपने सभी दु:खों में सहन की, परंतु विशेषकर क्रूस पर सही जिससे उसने मुझे नरक के दु:ख और यातना से छुड़ा लिया है।
भज-18:4,5, 116:3, मत्ती-26:38, 27:46, इब्रा-5:7, यशा-53:5

प्रभु का दिन - XVII

प्रश्न 45 : मसीह के पुनरुत्थान से हमें क्या लाभ होता है?

उत्तर : **पहला**- अपने पुनरुत्थान से उसने मृत्यु पर विजय पाई, कि वह हमें अपनी धार्मिकता में शामिल करे, जो उसने हमारे लिए अपनी मृत्यु से प्राप्त की, **दूसरा**-हम भी उसकी सामर्थ से नये जीवन को पाते हैं (जी उठते हैं) **तीसरा**-मसीह का पुनरुत्थान हमारे पुनरुत्थान की पक्की गारन्टी है।

रोमि-4:25, I पत-1:3, I कुरि-15:16, रोमि-6:4, कुलि-3:1, इफि-2:56, I कुरि-15:20, 21

प्रभु का दिन - XVIII

प्रश्न 46 : वह स्वर्ग पर चढ़ गया इससे तुम क्या समझते हो?

उत्तर : मसीह अपने चेलों के सामने पृथ्वी से आकाश पर चढ़ गया और वह निरंतर वहाँ हमारे लिए है, जब तक कि वह दोबारा जीवितों और मृतकों का न्याय करने नहीं आता।

प्रे-1:9, मर-16:19, लूका-25:51, इब्रा-9:24, 4:15, रोमि-8:34, कुलि-3:4, प्रे-1:11, मत्ती-24:30

प्रश्न 47 : तो क्या मसीह हमारे साथ जगत के अंत तक नहीं है जैसा उसने वादा किया है?

उत्तर : मसीह पूर्ण मनुष्य और पूर्ण परमेश्वर है, अपने मनुष्य स्वभाव में वह अब पृथ्वी पर नहीं है। परंतु अपने ईश्वरीय, गौरव, महिमा, आत्मा में एक पल के लिए भी हमसे अलग नहीं है।
यूह-14:18, मत्ती-28:20

प्रश्न 48 : यदि उसका मनुष्य स्वभाव वहाँ नहीं है, जहाँ उसका ईश्वरीय स्वभाव है, तो क्या मसीह के दो स्वभाव एक दूसरे से अलग नहीं हो गये?

उत्तर : कदापि नहीं ! क्योंकि ईश्वरीय स्वभाव असीमित और हर जगह उपस्थित हैं। इसलिये समझना आवश्यक है, कि यह मनुष्य स्वभाव जो उसने धारण किया से बहुत विशाल है और इसलिए मनुष्य स्वभाव में है और उसमें व्यक्तिगत रीति से संगठित है।
यिर्म-23:24, प्रे-7:49, कुलि-2:9, यहू-3:13, 11:15, मत्ती-28:6

प्रश्न 49 : मसीह स्वर्ग पर चढ़ गया इसका हमारे लिये क्या फायदा है?

उत्तर : **पहला** -कि स्वर्ग में पिता की उपस्थिति में वह हमारा वकील है, **दूसरा**-यह पक्की निश्चयता है कि हमारी देह स्वर्ग में है, वह सिर है और हम जो उसका (हिस्सा) सदस्य हैं, अपने साथ ले जाएगा, **तीसरा**-उसने अपनी आत्मा हमें दी है जो संकल्प है, जिसकी सामर्थ से हम उन वस्तुओं की खोज में रहते हैं, जो स्वर्ग की है जहां मसीह विद्यमान है और परमेश्वर की दाहिनी ओर विराजमान हैं और हम अपना मन पृथ्वी की वस्तुओं पर नहीं लगाते।
I यूह-2:1, रोमि-8:34, यूह-14:2, 17:24, 20:17, इफि-2:6, यूह-14:16, 16:7, प्रे-2:33, II कुरि-1:22, 5:5, यूह-14:2, 17:24, 20:17, इफि-2:6

प्रभु का दिन - XIX

प्रश्न 50 : और वह परमेश्वर के दाहिने बैठा है, इस बात को क्यों लिखा (जोड़ा) गया?

उत्तर : क्योंकि मसीह स्वर्ग पर इसलिये चढ़ गया कि वह वहाँ पर कलीसिया का मुखिया बनकर उपस्थित हो, जिसके द्वारा पिता सभी चीजों पर शासन (प्रभुता) करता है।
इफि-1:20-23, कुलि-1:18, मत्ती-28:18, यूह-5:22

प्रश्न 51 : हमारे मुखिया (प्रमुख) मसीह की इस महिमा में हमारा क्या लाभ है?

उत्तर : **पहला** - कि वह अपनी आत्मा के द्वारा हममें (जो उसके सदस्य हैं) स्वर्गीय उपहार (दान) प्रदान करता है। **दूसरा**-और अपनी सामर्थ से हमें हमारे दुश्मनों के विरुद्ध सुरक्षा प्रदान करता है।
प्रे-2:33, इफि-4:8, भज-2:9, 110:1,2, यूह-10:28, इफि-4:8

प्रश्न 52 : ''मसीह जीवित और मृतकों का न्याय करने आयेगा'' इस बात में तुम्हारी क्या तसल्ली है?

उत्तर : इसमे हमारी तसल्ली है, कि अपने सारे दु:खों और यातनाओं में मैं अपनी आंखें उसकी तरफ उठाऊं, जिसने मेरे लिए अपने आपको परमेश्वर के न्याय के लिए बलिदान कर दिया और मुझसे सारे शाप को दूर किया, कि एक न्यायाधीश के रूप में स्वर्ग से आएगा, जो मेरे और अपने दुश्मनों को अनन्त काल के लिए दोषी ठहरायेगा, परंतु मुझे अपने चुने हुओं के साथ अपने लिए स्वर्गीय आनन्द और महिमा में ले जाएगा।
फिलि-3:20, लूका-21:28, रोमि-8:23, तीत-2:13, तीत-2:13, I थिस-4:16, मत्ती-25:41, II थिस 1:16

प्रभु का दिन - XX

प्रश्न 53 : पवित्र आत्मा के विषय में आप क्या विश्वास करते हैं?

उत्तर : **पहला**-कि वह पिता और पुत्र के साथ अनन्तकालीन परमेश्वर है, **दूसरा**-वह मुझे दिया गया है, और उसने मुझे सच्चे विश्वास से मसीह और उसके सभी फायदों में सम्मिलित किया है, कि मुझे तसल्ली दे और मेरे साथ सदा बना रहे।
I यूह-5:7, उत-1:2, यशा-48:16, I कुरि-3:16, 6:19, प्रे-5:3,4, गला-4:6, मत्ती-28:19,20, I कुरि-1:22, इफि-1:13, गला-3:14, I पत-1:2, यूह-15:26, प्रे-9:31, यूहन्ना 14:16, I पत-4:14

प्रभु का दिन - XXI

प्रश्न 54 : विश्वसियों की मण्डली (विश्व व्यापक कलीसिया) के विषय में आप क्या विश्वास करते हैं?

उत्तर : परमेश्वर का बेटा, (यीशु) संसार के प्रारम्भ से लेकर अन्त तक, सभी मानव जाति में से अपनी आत्मा और वचन के द्वारा सच्चे विश्वास की एकता में, कलीसिया (मण्डली) जो अनन्त जीवन के लिये चुनी गयी है। उसे अपने लिए इकट्ठा, उसकी रक्षा और उसको सुरक्षा प्रदान करता है और यह कि मैं उसका हमेशा एक जीवित सदस्य बना रहूंगा।
इफि-5:26, यूहन्ना-10:11, प्रे-20-28, इफि-4:11-13, उत-26:4, प्रका-5 : 9, भज-71:17,18, यशा-59:21, I कुरि-11:26, मत्ती-16:18, यूहन्ना-10:28-30, यशा-59:21, रोमि-1:16, 10:14-17, प्रे-2:42, इफि-4:3-5, रोमि-8:29, इफि-1:10-13, I यूहन्ना-3:14-19-21, भज-23-6, I कुरि-1:8,9, यूहन्ना-10:28

प्रश्न 55 : संतों की संगति से आप क्या समझते हो?

उत्तर : **पहला** - कि सभी और हर एक विश्वासी जो मसीह के सदस्य हैं, उसमें और उसके सभी खजाने और दान में शामिल है। **दूसरा**-सभी को यह जानना आवश्यक है, कि वे अपने दानों को स्वेच्छा और आनन्द से दूसरों की भलाई और उद्धार के लिए इस्तेमाल करने के लिए बाध्य है।
I यूहन्ना-1:3, रोमि-8:32, I कुरि-12:12, 13, 6:17, 12:21, 13:1,5, फिलि-2:4-8

प्रश्न 56 : पापों की क्षमा के विषय में तुम क्या विश्वास करते हो?

उत्तर : हमारा विश्वास है, कि मसीह की संतुष्टि के लिये परमेश्वर मेरे पापों को याद नहीं रखेगा, न ही मेरे पापी स्वभाव को, जिसके विरुद्ध मैं पूरे जीवनकाल

में संघर्ष करता हूँ, परंतु अनुग्रह में मुझे मसीह की धार्मिकता देता है और मुझ पर दोष न लगाया जाएगा।

I यूहन्ना-2:2, 1:7, II कुरि-5:19, रोमि-7:23-25, यिर्म-31:34, मीका-7:19, भज-103:3,10,12, यूहन्ना-3:18, 5:24

प्रभु का दिन - XXII

प्रश्न 57 : शरीर के पुनरुत्थान में आपकी तसल्ली क्या है?

उत्तर : कि इस जीवन के बाद तत्काल सिर्फ मेरी आत्मा ही, मसीह अपने (मुखिया) सिर के पास न ही जाएगी, वरन मेरा शरीर भी मसीह की सामर्थ से दुबारा मेरी आत्मा से जोड़ा जाएगा और वह मसीह के अद्‌भुद शरीर के समान बनाया जाएगा।

लूका-16:22, 23:43, फिलि-1:21,23, अय-19:25, 26, I यूह-3:2, फिलि-3:21

प्रश्न 58 : अनन्तकाल का जीवन से तुम अपने लिये क्या तसल्ली पाते हो?

उत्तर : इसमें मेरी तसल्ली है कि अभी मैं अपने हृदय में अनन्त आनन्द की शुरुआत अनुभव करता हूँ, इस जीवन के बाद मैं उसे पूर्ण सिद्ध, परम सुख को प्राप्त करूँगा, जिसे कभी आँखों ने नहीं देखा, न ही कानों ने सुना है, न ही वह मनुष्य के हृदय में पहुँचा है और वहाँ हमेशा परमेश्वर की स्तुति होगी।

I कुरि.-5:2,3,6, 2:9

प्रभु का दिन - XXIII

प्रश्न 59 : इस सब में विश्वास करने से तुम्हारा वर्तमान में क्या फायदा है?

उत्तर : कि परमेश्वर के सामने, मैं मसीह में धर्मी और अनन्त जीवन का वारिस हूँ।

हब-2:4, रोमि-1:17, यूहन्ना-3:36

प्रश्न 60 : तुम परमेश्वर के सामने धर्मी कैसे हो?

उत्तर : सिर्फ यीशु मसीह में सच्चे विश्वास से, कि यद्यपि मेरा विवेक मुझ पर दोष लगाता है, कि मैंने परमेश्वर की सभी आज्ञाओं के विरुद्ध पाप किया है और उनमें से एक को भी नहीं माना और अभी भी सभी बुराई के लिए तत्पर रहता हूँ। फिर भी परमेश्वर, बिना मेरे अच्छे कामों और गुणों के, सिर्फ अनुग्रह से मसीह की संतुष्टि, धार्मिकता और पवित्रता को मुझे देता और मुझमें भरता है, जैसे कि मैंने कभी कोई पाप ही नहीं किया और मैंने ही सारी आज्ञाओं को पूरा किया है जिसे मसीह ने मेरे लिये किया, यदि मैं इन फायदों को एक

विश्वास करने वाले हृदय से स्वीकार करता हूँ।

रोमि-3:21-24, 5:1,2, गला-2:16, इफि-2:8,9, फिलि-3:9, रोमि-3:9, 7:23, तीत-3:5, व्य-9:6, रोमि-3:24, इफि-2:8, रोमि-4:4, II कुरि-5:19, I यूहन्ना 2:1,2, II कुरि-5:21, रोमि-3:22, यूहन्ना-3:18

प्रश्न 61 : तुम यह क्यों कहते हो कि तुम सिर्फ विश्वास से धर्मी हो?

उत्तर : इसलिये नहीं कि मैं अपने विश्वास की योग्यता से परमेश्वर द्वारा स्वीकार किया गया हूँ, वरन मसीह की संतुष्टि, धार्मिकता और पवित्रता ही, परमेश्वर के सामने मेरी धार्मिकता है और मैं इसे पाकर अपना बना सकता हूँ उसके लिये विश्वास के अतिरिक्त कोई अन्य माध्यम नहीं है।

I कुरि-1:30, 2:2, I यूहन्ना-5:10

प्रभु का दिन - XXIV

प्रश्न 62 : क्यों हमारे अच्छे कार्य पूर्ण, अथवा कुछ हद तक परमेश्वर के सामने हमारी धार्मिकता नहीं हो सकते?

उत्तर : क्योंकि धार्मिकता जो परमेश्वर के न्याय सिंहासन के सामने स्थिर रह सकती है, वह पूर्ण सिद्ध और ईश्वरीय व्यवस्था के अनुकूल होनी चाहिए, जबकि हमारे इस जीवन के अच्छे कार्य अधूरे और पाप में घृणित हैं।

गला-3:10, व्य-27:26, यशा-64:6

प्रश्न 63 : क्या हमारे अच्छे कार्यों का कोई महत्व नहीं, जबकि परमेश्वर फिर भी उनका प्रतिफल इस जीवन और आने वाले जीवन में देगा।

उत्तर : यह इनाम हमारे कार्यों का फल नहीं वरन अनुग्रह से मिलता है।

लूका-17:10

प्रश्न 64 : तब क्या यह शिक्षा (सिद्धान्त) हमें आलसी और गैर जिम्मेदार नहीं बनाता?

उत्तर : कभी नहीं। यह असम्भव है कि जो सच्चे विश्वास से मसीह से जुड़े हैं, वे धन्यवाद के फलों को न लाए।

मत्ती - 7:18, यूहन्ना-15:5

प्रभु का दिन - XXV

प्रश्न 65 : जबकि हम सिर्फ विश्वास से मसीह और उसके सभी फायदों में शामिल है, यह विश्वास कहाँ से आता है?

उत्तर : पवित्र आत्मा से, जो पवित्र सुसमाचार के प्रचार से हमारे हृदय में इसे उत्पन्न करती है और पवित्र संस्कार के इस्तेमाल से इसकी पुष्टि होती है।

इफि-2:8, 6:23, यूहन्ना-3:5, फिलि-1:29, मत्ती-28:19, I पत-1:22, 23

प्रश्न 66 : संस्कार क्या हैं?

उत्तर : संस्कार पवित्र, सदृश्य, चिन्ह और मोहर जिन्हें परमेश्वर ने नियुक्त किया है, कि इसके इस्तेमाल से वह सुसमाचार के वायदों को हमारे लिए बहुतायत से घोषित और दृढ़ कर सके, कि मसीह के एक बलिदान जो उसने क्रूस पर दिया, वह हमें अनुग्रह देता है कि हम पापों की क्षमा और अनन्त जीवन प्राप्त करें।

उत-17:11, रोमि-4:11, व्य-30-6, लैव-6:25, इब्रा-9:7-9, 24, यहेज-20:12, यशा-6:6,7, 54:9

प्रश्न 67 : तब, क्या वचन और संस्कार दोनों हमारे विश्वास को यीशु मसीह के क्रूस के बलिदान की ओर निर्देशित करते हैं कि वही हमारे उद्धार का आधार है ?

उत्तर : हाँ ! यह सच है। पवित्र आत्मा हमें सुसमाचार में सिखाती और संस्कार से निश्चित करती है, कि हमारे पूर्ण उद्धार का आधार मसीह का एक बलिदान है जो उसने क्रूस पर दिया।

प्रश्न 68 : मसीह ने नये नियम अथवा वाचा में कितने संस्कार नियुक्त किये हैं?

उत्तर : दो-पवित्र बपतिस्मा और पवित्र भोज।

प्रभु का दिन - XXVI

प्रश्न 69 : किस प्रकार से पवित्र बपतिस्मा तुम्हारे लिए चिन्ह और निश्चयता है, कि मसीह के क्रूस पर बलिदान में तुम शामिल हो?

उत्तर : मसीह ने पानी से बाहरी सफाई नियुक्त की है, और इसमें वायदा किया है कि मैं उसके रक्त और आत्मा से, अपनी आत्मा की गन्दगी जो मेरे सभी पाप हैं, से साफ किया जाता हूँ, यह उतना ही निश्चित है, जैसे पानी से शरीर की सारी गन्दगी साफ हो जाती है।

मत-28:19, I पत-3:21, मर-1:4, लूका-3:3, मर-16:16, प्रे-2:38, यूह-1:33, मत-3:11, रोमि-6:3,4

प्रश्न 70 : मसीह के खून और आत्मा से साफ होने का क्या मतलब है?

उत्तर : इसका मतलब है कि परमेश्वर ने अनुग्रह से, मसीह के खून के लिये जो उसने अपने बलिदान में क्रूस पर बहाया, हमारे पापों को क्षमा किया है और यह भी कि पवित्र आत्मा द्वारा नये होकर और पवित्र होकर मसीह के सदस्य बन जाए, कि हम अधिक से अधिक पाप के लिए मरें और पवित्र और

निर्दोष जीवन जी सकें।

इब्रा-12:24, I पत -1:2, प्रका-1:5, 7:14, जक-13:1, यहेज-36:25, यूह-1:33, 3:5, I कुरि-6:11, 12:13, रोमि-6:4, कुलि-2:12

प्रश्न 71 : मसीह ने हमें इसका आश्वासन कहाँ दिया है, कि हम उसके रक्त और आत्मा से धोये गये, उसी निश्चयता के साथ जैसे हम बपतिस्में में पानी से धोये गये?

उत्तर : बपतिस्में की नियुक्ति में जिसे ऐसे पढ़ा जाता है, ''इसलिए जाओ और सब जातियों के लोगों को चेले बनाओ तथा उन्हें पिता, पुत्र और पवित्र आत्मा के नाम से बपतिस्मा दो।'' मत्ती-28:19, ''जो विश्वास करे और बपतिस्मा ले वह उद्धार पाएगा परंतु जो विश्वास न करे वह दोषी ठहराया जाएगा।'' मरकुस 16:16, यह वायदा दोहराया गया है जहाँ पवित्र शास्त्र कहता है बपतिस्मा नये जन्म और पापों से धुलने का बपतिस्मा है। तीतुस-3:5, प्रे.-22:16, तीत-3:5, प्रे-22:16

प्रभु का दिन - XXVII

प्रश्न 72 : तब क्या पानी से बाहरी धुलाई अपने आप में पापों का धुल जाना है?

उत्तर : नहीं ! सिर्फ यीशु मसीह का रक्त और पवित्र आत्मा ही, हमें, हमारे सभी पापों को धो डालते हैं।

मत-3:11, I पत-3:21, इफि-5:26, I यूह-1:7, I कुरि-6:11

प्रश्न 73 : तब क्यों पवित्र आत्मा, बपतिस्मों को नये जन्म के लिए धुल जाना और पापों से धुल जाना कहती है ?

उत्तर : परमेश्वर बिना किसी बड़े उद्देश्य के लिए नहीं बोलता-वह हमें कतई यह नहीं सिखाना चाहता, कि जैसे शरीर की गन्दगी पानी से धुल जाती है, वैसे ही मसीह के रक्त और आत्मा से हमारे पाप दूर हो जाते हैं, परंतु वह सिखाता और हमें आश्वस्त करता है कि इस ईश्वरीय वाचा और चिन्ह से हम अपने पापों से आत्मिक रीति से साफ हो गये हैं। वैसे ही जैसे पानी से बाहरी सफाई हुई है।

प्रका-1:4?5, 7:14, I कुरि-6:11

प्रश्न 74 : क्या शिशुओं को भी बपतिस्मा देना चाहिए?

उत्तर : हाँ ! क्योंकि वे और समझदार व्यक्ति दोनों ही वाचा और कलीसिया में शामिल किये गये हैं, और पापों से छुटकारा और पवित्र आत्मा जो विश्वास

का कर्ता है, दोनों को मसीह के रक्त द्वारा, जैसे बड़ों से वैसे ही शिशुओं से वायदा किया गया है, इसलिए उन्हें बपतिस्मे द्वारा वाचा के चिन्ह से मसीही कलीसियाओं में शामिल किया जाना चाहिए, ताकि उन्हें अविश्वासियों के बच्चों से अलग पहचान मिल सके, जैसा कि पुराने नियम में खतने के द्वारा होता था, जिसके बदले नये नियम में बपतिस्मा नियुक्त किया गया है।

उत-17:7, मत-19:14, लूका-1:15, भज-20:10, यशा-44:1-3, प्रे-2:39, प्रे-10:47, उत-17:14, कुलु-2:11-13

प्रभु का दिन - XXVIII

प्रश्न 75 : प्रभु भोज में तुम्हारे लिये यह कैसे प्रकट और प्रमाणित होता है, कि मसीह के क्रूस पर बलिदान और उसके सभी फायदों में तुम सम्मिलित हो?

उत्तर : मसीह ने मुझे और सभी विश्वासियों को आज्ञा दी है, कि उसकी याद में हम उस टूटी रोटी में से खायें और उस कप से पिये, जिसमें उसने हमसे यह वायदा किया है- **पहला**-कि उसका शरीर मेरे लिए क्रूस पर चढ़ा और तोड़ा गया और उसका खून मेरे लिये बहाया गया, वैसे ही जैसे मैं देखता हूँ, कि प्रभु भोज की रोटी मेरे लिये तोड़ी जाती है और प्याला मुझे दिया जाता है। **दूसरा**-कि वह अपने क्रूस पर चढ़ाये गये शरीर और बहाये गये लहू से मेरी आत्मा को अनन्त जीवन के लिए पोषित करता है, उसी दृढ़ता के साथ जैसे मैं सेवक के हाथ से प्रभु की रोटी और प्याला लेकर मुंह से स्वाद लेता हूँ, जो यकीनन मसीह के शरीर और रक्त का चिन्ह है।

प्रश्न 76 : मसीह का क्रूस पर चढ़ाया गया शरीर खाना और बहाया रक्त पीना क्या है?

उत्तर : यह सिर्फ इतना ही नहीं है, कि हृदय से, विश्वास से उसके सारे दु:खों और मृत्यु को अपनाकर हम पापों की क्षमा और अनन्त जीवन प्राप्त करते हैं, परंतु यह भी कि पवित्र आत्मा, जो हममें और मसीह में वास करता है, से हम बहुतायत से उसके पवित्र शरीर में संगठित होते हैं, ताकि यद्यपि मसीह स्वर्ग में और हम पृथ्वी पर हैं, तो भी हम उसके मांस का मांस और हड्डियों की हड्डी हैं और एक आत्मा से जीवन जीते और शासित होते हैं। जैसे एक ही शरीर और आत्मा के सदस्य हैं।

यूह-6:35,40,47, 48, 50, 51, 53, 54, 56, कुलु-3:1, प्रे-3:1, I कुरि-11:26, इफि-5:24, 30, 3:16, I कुरि-6:15 I यूह 3:24, 4:13, यूह-6:57, 15:1-6, इफि-4:15-16

प्रश्न 77 : मसीह ने कहाँ यह वायदा किया है, कि जैसे वे उस तोड़ी हुई रोटी से खाते और उस प्याले से पीते हैं तो वह निश्चय ही विश्वासियों को अपने शरीर और लहू से तृप्त और पोषित करेंगे?

उत्तर : जब उसने प्रभु भोज नियुक्त किया तो यह वायदा किया जिसे हम पढ़ते हैं, ''प्रभु यीशु ने जिस रात वह पकड़वाया गया रोटी ली और उसने धन्यवाद देकर रोटी तोड़ी और कहा यह मेरी देह है, जो तुम्हारे लिये है मेरे स्मरण के लिये यही किया करो। इसी प्रकार भोजन के पश्चात् उसने यह कहते हुए कटोरा भी लिया, यह मेरे लहू में नई वाचा का कटोरा है जब-जब तुम इसमें से पियो मेरे स्मरण के लिये यही किया करो। क्योंकि जब जब तुम इस रोटी को खाते और इस कटोरे में से पीते हो तो जब तक प्रभु न आये उसकी मृत्यु का प्रचार करते हो'' एवं पौलुस इस वायदे को दोहराते हुए कहते हैं- ''धन्यवाद का वह कटोरा जिसके लिये हम धन्यवाद देते क्या मसीह के लहू में सहभागिता नहीं? वह रोटी जिसे हम तोड़ते हैं क्या वह मसीह की देह में सहभागिता नहीं? जबकि रोटी एक ही, तो हम जो बहुत है, एक देह है, क्योंकि हम सब एक रोटी में सहभागी होते हैं।''

I कुरि-10:16, 17, 11:23-26, मत-26:26-28, मर-14:22:24 लूका-22:19, 20

प्रभु का दिन - XXIX

प्रश्न 78 : तब क्या रोटी और दाखरस वास्तव में मसीह का शरीर और लहू बन जाते हैं?

उत्तर : नहीं! परंतु जैसे बपतिस्मे में पानी, मसीह के खून में परिवर्तित नहीं होता न ही स्वत: इससे पाप धुलते हैं। वरन् यह मात्र ईश्वरीय प्रतीक और पुष्टिकरण होता है। उसी प्रकार रोटी प्रभु भोज में, मसीह की सच्ची देह नहीं बन जाती यद्यपि संस्कार के स्वभाव और गुणों में, इसे यीशु मसीह की देह कहा जाता है। मत-26:29, इफि-5:26, तीत-3:5, I कुरि-10:16, 11:26, इफि-5:26, तीत-3:5, उत-17:10,11, निर्ग-12:11,13, 13:9, I मत-3:21, I कुरि-10:3,4

प्रश्न 79 : तब क्यों मसीह रोटी को अपना शरीर और प्याले को अपना लहू अथवा उसके लहू में नई वाचा कहते हैं और पौलुस इसे मसीह के शरीर और लहू में सहभागिता क्यों कहते हैं?

उत्तर : मसीह बिना उद्देश्य के कुछ नहीं कहते-वह इससे हमें सिर्फ यही नहीं

सिखाते, कि जैसे रोटी और दाखरस अस्थायी जीवन को बनाये रखते है, वैसे ही उसकी क्रूसित देह और बहा हुआ लहू अनन्त जीवन के लिए हमारी आत्मा (प्राण) का सच्चा भोजन और पानी है, वरन् इससे ज्यादा वे बताते हैं कि इन सदृश्य चिन्ह और प्रतीज्ञा से हमें आश्वस्त करते हैं, कि हम पवित्र आत्मा के कार्य द्वारा उसके सच्चे शरीर और लहू में उतने सच्चे सहभागी हैं जैसे हम चिन्हों को उसकी याद में अपने शरीर के मुँह द्वारा लेते हैं। और उसके सारे दु:ख और आज्ञाकारिता निश्चयता से हमारी है-जैसे कि हमने अपने व्यक्तित्व में दु:ख उठाया और हमारे पापों के लिए परमेश्वर को संतुष्ट किया है।

I यूह-6:55, I कुरि-10:16

प्रभु का दिन - XXX

प्रश्न 80 : प्रभु भोज और पोपिश माश (Popish Mass) के बीच में क्या अन्तर है?

उत्तर : प्रभु भोज हमें इस बात की साक्षी देता है, कि यीशु मसीह के एक बलिदान, जिसे उसने स्वयं क्रूस पर दिया, से हमें हमारे पापों से पूर्ण क्षमा प्राप्त है और पवित्र आत्मा से हम मसीह में जोड़े गये हैं, जो हमारे मनुष्य स्वभाव के अनुसार अब पृथ्वी पर नहीं वरन् स्वर्ग में उसके पिता परमेश्वर के दाहिने बैठा है और चाहता है, कि हम उसकी आराधना करें, परंतु Popish Mass सिखाता है, कि यीशु मसीह के दु:खों से जीवित और मृतकों के पाप क्षमा नहीं हुए हैं। जब तक कि मसीह रोजाना, याजक के द्वारा उनके लिए बलि नहीं किया जाता और मसीह शारीरिक रीति से रोटी और दाखरस में उपस्थित होता है, इसलिये उनकी आराधना होनी चाहिए। इस प्रकार Mass मसीह के एक बलिदान और यातना को झूठलाने के अतिरिक्त कुछ नहीं है, और श्रापित मूर्ति पूजा है।

इब्रा-10:10,12, 7:26,27, 9:12,25, यूह-19:30, I कुरि-10:16, 17, 6:17, प्रे-7:56, फिलि-3:20, इब्रा-9:26, 10:12, 14

प्रश्न 81 : प्रभु भोज किनके लिए नियुक्त किया गया?

उत्तर : उनके लिए, जो अपने पापों के लिए दु:खी होते हैं और फिर भी यह विश्वास करते हैं, कि मसीह के कारण उनके पाप क्षमा हुए और उनकी बची हुई कमजोरियां मसीह के यातना और मृत्यु से ढांकी गयी है और जो बहुतायत से अपने विश्वास को मजबूती और जीवन को सुधारना चाहते हैं। परंतु जो दिखावे के लिये परंतु सच्चे हृदय से परमेश्वर के पास नहीं आये हैं, यदि इसमें खाते और पीते हैं तो वे अपने ऊपर परमेश्वर का न्याय लाते हैं।

I कुरि-11:28, 29, 10:19-22

प्रश्न 82 : क्या उन्हें प्रभु भोज देना चाहिए जो अपने अंगीकार और जीवन से यह प्रगट करते हैं कि वे अविश्वासी और अधर्मी हैं?

उत्तर : कदापि नहीं! ऐसा करने से परेश्वर की वाचा घृणित ठहरेगी और उसका क्रोध पूरी कलीसिया के विरुद्ध भड़क उठेगा, इसलिये मसीह कलीसिया का, मसीह और प्रेरितों के अधिनियम के अनुसार, यह कर्तव्य है कि ऐसे लोगों को स्वर्ग राज्य की चाबी से, जब तक वे जीवन में बदलाव नहीं लाते, तब तक प्रभु भोज से अलग रखना चाहिए।

I कुरि-11:20, 34, यशा-1:11, 66:3, यिर्म-7:21, भज-50:16

प्रश्न 83 : स्वर्ग के राज्य की चाबियां क्या है?

उत्तर : सुसमाचार का प्रचार और कलीसिया का अनुशासन अथवा मसीही कलीसिया से बहिष्कृत कर देना है, इन दोनों बातों से स्वर्ग का राज्य विश्वासियों के लिए खुलता और अविश्वासियों के विरुद्ध बन्द किया जाता है।

प्रश्न 84 : किस प्रकार पवित्र सुसमाचार के प्रचार से स्वर्ग का राज्य खोला और बन्द किया जाता है?

उत्तर : सभी विश्वासियों को मसीह की आज्ञा के अनुसार प्रचार और सरे आम साक्षी देने से, कि जब वे सच्चे विश्वास से सुसमाचार की प्रतीज्ञा को स्वीकारते हैं, तो उनके सभी पाप परमेश्वर, मसीह के गुणों के कारण माफ कर देता है। मगर दूसरी तरफ सभी अविश्वासी और वे जो सच्चा पश्चाताप नहीं करते प्रचार और गवाही से उन पर परमेश्वर का क्रोध और अनन्त दोष बना रहता है, जब तक वे परिवर्तित नहीं होते, सुसमाचार के इस गवाही के अनुसार परमेश्वर इस जीवन और आने वाले जीवन में न्याय करेगा।

यूह-20:21-23, मत-16:19

प्रश्न 85 : किस प्रकार कलीसिया के अनुशासन से स्वर्ग का राज्य खुलता और बन्द होता है?

उत्तर : मसीह की आज्ञा अनुसार उन्हें संस्कारों में शामिल नहीं करते, जो मसीह होने का दावा करते हुए, गैर मसीह शिक्षाओं और कार्यों के अनुरूप चलते हैं, जो भाईचारे की ताड़ना और समझाने से अपनी गलती और भ्रष्ट जीवन को नहीं छोड़ते, और जिनकी कलीसिया में शिकायत होने के बाद नियुक्त अगुओ की ताड़ना को अनदेखा करते हैं। इस दोष के कारण उन्हें कलीसिया से बहिष्कृत किया जाता है और परमेश्वर उन्हें मसीह के राज्य से बहिष्कृत करता है और जब वे सच्चा सुधार, बदलाव और प्रतिज्ञा प्रगट करते हैं, उन्हें मसीह और उसकी कलीसिया के सदस्य स्वीकार किया जाता है।

मत-16:15-17, I कुरि- 5:4,5,11, II कुरि-2:6-8

तीसरा भाग

धन्यवादिता (कृतज्ञता)

प्रभु का दिन - XXXII

प्रश्न 86 : जबकि हम अपने दुखों से मसीह द्वारा सिर्फ अनुग्रह से छुड़ाए गए हैं। बिना अपने किसी गुणों और कार्यों के, तो क्यों फिर भी हमें अच्छे कार्य करने चाहिए?

उत्तर : इसलिए कि मसीह ने हमें अपने लहू से छुड़ाया है, वह हमें अपनी पवित्र आत्मा द्वारा अपनी समानता में भी नया बनाता है, कि हम अपने पूर्ण जीवन में परमेश्वर को उसकी आशीषों के लिए धन्यवाद दें और वह हमारे से स्तुति पाए और यह, कि हम सभी उसके विश्वास के फलों से उसमें निश्चित हो जाएं और हमारे अच्छे चाल चलन से हमारे पड़ोसी भी मसीह के लिए जीते जा सकें।
रोमि-6:13, 12:1,2, I पत-2:5,9, I कुरि-6:20, मत-5:16, II पत-1:10, मत-7:17, गला-5:6,22, I पत-3:1,2, रोमि-14:19

प्रश्न 87 : वे जो निरन्तर पाप और घमण्ड में अपने जीवन को जीते और परमेश्वर की तरफ नहीं मुड़ते, तो क्या वे बचाए नहीं जाएंगे?

उत्तर : कदापि नहीं ! पवित्र शास्त्र सिखाता है, कि कोई भी, मूर्ति पूजक, व्यभिचारी, चोर लालची, पियक्कड़, गाली देने वाला, डाकू अथवा अन्य इनके समान परमेश्वर के राज्य के वारिस न होंगे।
I कुरि-6:9,10, इफि-5:5,6, I यूह-3:14

प्रभु का दिन - XXXIII

प्रश्न 88 : सच्चा परिवर्तन अथवा मनुष्य का परमेश्वर में आना के कितने भाग हैं?

उत्तर : दो-पुराने मनुष्यत्व का विनाश और नये का जी उठना।
रोमि-6:1,4-6, इफि-4:22-24, कुलु-3:5, 6,8-10, I कुरि-5:7, I कुरि-7:10

प्रश्न 89 : पुराने मनुष्यत्व का विनाश (मरना) क्याा है?

उत्तर : यह, हृदय में गहरा दु:ख अनुभव करना है, कि हमने अपने पापों से परमेश्वर को क्रोध दिलाया और अधिक से अधिक उन पापों से घृणा और उनसे दूर भागना है।
रोमि-8:13, योए-2:13, होशे-6:1

प्रश्न 90 : नये मनुष्यत्व का जी उठना क्या है?

उत्तर : यह, हृदय में मसीह द्वारा परमेश्वर में आनन्द है और प्रेम और प्रसन्नता से सभी अच्छे कार्यों में परमेश्वर की इच्छा अनुसार जीवन जीना है।
रोमि-5:1, 14:17, यशा-57:15, रोमि-6:10,11, गला-2:20

प्रश्न 91 : लेकिन अच्छे कार्य क्या है?

उत्तर : सिर्फ वे कार्य, जो परमेश्वर की व्यवस्था के अनुसार और उसकी महिमा के लिये सच्चे विश्वास से किये जाते हैं और वे कार्य नहीं जो हमारे अपने विचार अथवा मनुष्य की समझ से किये जाते हैं।
रोमि-14:23, लैव-18:4, I शम-15:22, इफि-2:10, I कुरि-10:31, यहेज-20:18,19, यशा-29:13, मत-15:7-9

प्रभु का दिन - XXXIV

प्रश्न 92 : परमेश्वर की व्यवस्था क्या है?

उत्तर : परमेश्वर ने ये सब वचन कहे - मैं तेरा यहोवा परमेश्वर हूँ जो मुझे दासत्व के घर अर्थात मिश्र देश से निकाल लाया हूँ।

I. तू मुझे छोड़ दूसरों को ईश्वर करके न मानना।

II. तू अपने लिये कोई मूर्ति खोद कर न बनाना, न किसी की प्रतिमा बनाना, जो आकाश में या पृथ्वी पर या पृथ्वी के जल में है, न तो तू उनको दण्डवत करना और न ही उनकी उपासना करना, क्योंकि मैं तेरा परमेश्वर यहावा जलन रखने वाला परमेश्वर हूँ, जो मुझसे बैर करते हैं उनकी संतान को तीसरी और चौथी पीढ़ी तक बापदादों की दुष्टता का दण्ड देता हूँ। जो मुझसे प्रेम रखते हैं और मेरी आज्ञाओं का पालन करते हैं उन हजारों हजार पर करुणा करता हूँ।

III. तू अपने परेश्वर यहोवा का नाम व्यर्थ न लेना, क्योंकि जो यहोवा का नाम व्यर्थ लेता है उसको यहोवा दण्ड दिये बिना नहीं छोड़ेगा।

IV. विश्राम दिन को पवित्र मानने के लिये स्मरण रखना। छ: दिन तक तू परिश्रम करके अपना सब काम कर लेना, परंतु सातवा दिन तेरे परमेश्वर यहोवा का विश्राम दिन है। उसमें तू कुछ भी काम न करना न तो तू ने, तेरा पुत्र न तेरी पुत्री, न तेरा दास, न तेरी दासी, न तेरे पशु न तेरे साथ ठहरा हुआ कोई परदेशी। क्योंकि यहोवा ने छ: दिन में

आकाश और पृथ्वी, समुद्र और जो कुछ उनमें है, सब को बनाया और सातवे दिन विश्राम किया, इसलिये यहोवा ने विश्राम दिन को आशीष दी और उसे पवित्र ठहराया।

V. तू अपने पिता और अपनी माता का आदर करना, जिससे जो देश तेरा परमेश्वर यहोवा तुझे देता है, उसमें तू बहुत दिन तक रहने पाये।

VI. तू हत्या न करना।

VII. तू व्यभिचार न करना।

VIII. तू चोरी न करना।

IX. तू अपने पड़ोसी के विरुद्ध झूठी साक्षी न देना।

X. तू अपने पड़ोसी के घर का लालच न करना। तू न अपने पड़ोसी की पत्नी, न उसके दास, न उसकी दासी, न उसके बैल, न उसके गधे न अपने पड़ोसी की किसी भी वस्तु का लालच करना।
निर्ग-20:1-17, व्य-5:6-21

प्रश्न 93 : कैसे इन आज्ञाओं को विभाजित किया गया है?

उत्तर : दो भागों में - **पहली**-कि हमारा व्यवहार परमेश्वर के साथ कैसा होना चाहिए। **दूसरी**-हमारे पड़ोसी के पति क्या कर्तव्य हैं?
व्य-4:13, निर्ग-34:28, व्य-10:3,4, मत्ती-22:37-40

प्रश्न 94 : पहली आज्ञा में परमेश्वर क्या चाहता है?

उत्तर : वह चाहता है, कि जितना मैं अपनी आत्मा के उद्धार से लगाव रखता हूँ, वैसे ही मैं सभी मूर्ति पूजा, तंत्र विद्या, भविष्य कहने वालों, अन्धविश्वास, संतों अथवा अन्यों की बिचवइए की प्रार्थना को अनदेखा और इनसे दूर भागाता हूँ। और मैं एक सच्चे परमेश्वर को सत्यता से मान्यता देता हूँ, सिर्फ उस पर भरोसा, उसको सारी नम्रता और धैर्य के साथ समर्पण, और अपने सम्पूर्ण मन से उसे प्रेम, उसका भय और उसका आदर करता हूँ, मैं सभी प्राणी को छोड़ता इसकी अपेक्षा कि उसके विरुद्ध छोटी बात करूँ।

I यूह-5:21, I कुरि-6:10, 10:7,14, लैव-19:31, व्य-18:9,10, मत-4:10, प्रका-19:10, 22:8,9, यूह-17:3, यिर्म-17:5,7, इब्रा-10:36, कुलु-1:11, रामि-5:3,4, I पत-5:5, भज-104:27, याक-1:17, व्य-6:5, भज-111:10, नीति-1:7, 9:10,

प्रश्न 95 : मूर्ति पूजा क्या है?

उत्तर : एक सच्चे परमेश्वर जिसने वचन में अपने आप को प्रगट किया है, के अलावा अन्य को परमेश्वर मानूं अथवा उसके स्थान पर किसी अन्य पर भरोसा या विश्वास करूं।
इफि-5:5, I इति-16:26, फिलि-3:19, गला-4:8, इफि-2:12, I यूह-2:23, II यूह-9 यूह-5:23

प्रश्न 96 : दूसरी आज्ञा में परमेश्वर क्या चाहता है?

उत्तर : परमेश्वर चाहता है, कि हम किसी भी प्रकार से परमेश्वर की प्रतिमा न बनायें, न ही उसकी आज्ञा जो उसने अपने वचन में दी है, के अतिरिक्त किसी अन्य प्रकार से उसकी आराधना करें।
यशा-40:18, 19, 25, व्य-4:15:16, रोमि-1:23, प्रे-17:29, I शम-15:23, व्य-12:30, मत-15:9

प्रश्न 97 : तब क्या हम कोई मूर्ति कदापि नहीं बना सके ?

उत्तर : परमेश्वर का किसी भी प्रकार से किसी भी सदृश्य चीज से प्रतिनिधित्व नहीं किया जा सकता। यद्यपि प्राणी सृदश्य रूप से प्रतिनिधि हो सकते हैं, फिर भी परमेश्वर हमें उनकी प्रतिमा, समानता में उसकी आराधना और सेवा उनके माध्यम से करना मना करता है।
यशा-40:25, निर्ग-34:17, 23:24,34:13, गिन-33:52

प्रश्न 98 : परंतु क्या कलीसिया में लोगों के लिए पुस्तकों को, प्रतिमा (मूर्ति) के समान सहन नहीं करना चाहिए?

उत्तर : नहीं। हमें परमेश्वर से ज्यादा बुद्धिमान होने की आवश्यकता नहीं है। वह अपने लोगों को बेजान प्रतिमाओं से नहीं सिखाता वरन् अपने वचन के जीवित प्रचार से सिखाता है।
यिर्म-10:8, हब-2:18-19, रोमि-10:14,15, 17, II पत-1:19, II तिमु- 3:16, 17

प्रभु का दिन - XXXVI

प्रश्न 99 : तीसरी आज्ञा में क्या आवश्यक है?

उत्तर : तीसरी आज्ञा में आवश्यक है, कि हम न श्राप, अथवा झूठी गवाही, न ही अनावश्यक कसम खाने से परमेश्वर के नाम की निन्दा अथवा उसे घृणित

ठहरायें, न ही चुप रहकर अथवा अनदेखा करके दूसरों के इस भयंकर पाप में शामिल हों। संक्षेप में हम उसके नाम को भय और आदर के साथ लें, कि वह हमारे द्वारा सच्चा अंगीकार और आराधना पाकर हमारे सभी बातों और कार्यों से महिमा प्राप्त करे।

लैव-24:15, 16, लैव-19:12, मत-5:37, याक-5:12, लैव-5:1, नीति-29:24, यिर्म-4:1, यशा-45:23, मत-10:32, रोमि-10:9, 10, भज-5:1, भज-50:14,15, I तिमु-2:8, कुलु-3:17, रोमि-2:24, I तिमु-6:1

प्रश्न 100 : तो क्या परमेश्वर के नाम को, कसम खाकर और निन्दा करके अपवित्र करना, इतना घृणित (गम्भीर) पाप है, कि उसका क्रोध उनके विरुद्ध भी भड़क जाता है, जो इसे नहीं करते परंतु इसे दूसरों के करने से रोकते भी नहीं।

उत्तर : जी हाँ। परमेश्वर के नाम को अपवित्र करने से बड़ा पाप कोई नहीं, जो उसे और अधिक भड़का सके, इसलिए उसने आज्ञा दी है कि इस पाप का दण्ड मृत्यु है।

नीति-29:24, लैव-5:1

प्रभु का दिन - XXXVII

प्रश्न 101 : क्या हम उचित रीति से परमेश्वर के नाम की शपथ नहीं ले सकते?

उत्तर : हाँ। जब न्यायालय में यह नागरिकों से कहा जाता है, अथवा सच्चाई और सत्य की पुष्टि करने के लिये आवश्यक हो जाता है और परमेश्वर की महिमा और अपने पड़ोसी की भलाई के लिए, इस प्रकार की शपथ खाना (लेना) परमेश्वर के वचन के अनुकूल है और इसलिए पुराने और नये नियम में संतों द्वारा सही प्रकार से शपथ ली गयी।

व्य-6:13, 10:20, यशा-48:1, इब्रा-6:16, उत-21:24, 31:53, यहो-9:15, I शम-24:23, II शम-3:35, I रा-1:29, रोम-1:9, 9:1, II कुरि-1:23

प्रश्न 102 : क्या हम संतों अथवा अन्य प्राणियों की भी शपथ ले सकते हैं?

उत्तर : नहीं! परमेश्वर का नाम लेना ही उचित शपथ है, क्योंकि सिर्फ वह ही हृदय का खोजी है, कि सच्चाई की साक्षी दे और मुझे दण्डित करे यदि मैं झूठी शपथ लेता हूँ। यह सम्मान किसी अन्य प्राणी को नहीं दिया गया है।

II कुरि-1:23, 9:1, मत-5:34-36, याक-5:12

प्रभु का दिन - XXXVIII

प्रश्न 103 : परमेश्वर चौथी आज्ञा में क्या चाहता है?

उत्तर : **पहला** - कि सुसमाचार और विद्यालय की सेवा की देखभाल हो, और यह कि मैं विशेषकर, विश्राम दिन में कलीसिया में उपस्थित होकर परमेश्वर का वचन सीखूंगा, संस्कार में शामिल होऊँगा, प्रभु का नाम सबके सामने लूँगा और मसीही दान दूंगा, **दूसरा**-कि अपने पूर्ण जीवनकाल में, मैं अपने बुरे कार्यों से विश्राम पाऊँगा, पवित्र आत्मा से प्रभु को मुझमें कार्य करने दूंगा। इस प्रकार इस जीवन में अनन्त विश्राम की शुरूआत करूँगा।

इफि-6:1, 2,5, कुलु-3:18, 20, 22, इफि-5:22, नीति-1:8, 4:1, 15:20, निर्ग-21:17, नीति-23:22, उत-9:24, I मत-2:18, इफि-6:4,9, कुलु-3:20, रोमि-13:2, मत-22:21

प्रभु का दिन - XXXIX

प्रश्न 104 : पाँचवीं आज्ञा में परमेश्वर क्या चाहता है?

उत्तर : परमेश्वर चाहता है, कि मैं अपने माता, पिता और जो मेरे ऊपर अधिकार रखते हैं, सबको पूर्ण सम्मान, प्रेम और विश्वास योग्यता प्रदान करूँ और उनकी सही शिक्षा और सुधार को अपनी आज्ञाकारिता से उन्हें समर्पित करूँ और धैर्य से उनकी कमजोरी और दुर्बलता को समझूँ, क्योंकि परमेश्वर उनके द्वारा हम पर प्रभुता करने में आनन्दित होता है।

तीत-1:5, II तिमु-3:14, I कुरि-9:13, 14, भज-40:9,10, 68:26, प्रे-2:42, I तिमु-4:13, I कुरि-14:29, 11:33, I तिमु-2:1, I कुरि-14:16, 16:2, यशा-66:23

प्रभु का दिन - XL

प्रश्न 105 : परमेश्वर छठी आज्ञा में क्या चाहता है?

उत्तर : परमेश्वर चाहता है, कि मैं न विचारों में, न शब्दों अथवा भावनाओं, न कार्यों से, अपने पड़ोसी से नफरत नहीं करूँगा, न नुकसान न हत्या करूँगा, न स्वयं अथवा अन्य किसी के द्वारा; वरन बदले की हर भावना को अपने से अलग करूँगा और मैं अपने आपको हानि नहीं पहुँचाऊंगा, न ही जानबूझकर किसी खतरे में डालूँगा। इसलिए न्यायाधीश के हाथों में तलवार दी गयी है कि वह हत्या होने को रोके।

मत-5:21, 22, 26:52, उत-9:6, इफि-4:26, रोमि-12:19, मत-5:25, 18:35, रोमि-13:14, कुलु-2:23, मत-4:7, उत-9:6, निर्ग-21:14, मत-26:52, रोमि -13:4

प्रश्न 106 : परंतु इस आज्ञा में आभास होता है, कि यह सिर्फ हत्या की बात करती है?

उत्तर : हत्या करना मना है में परमेश्वर सिखाता है, कि वह खून के कारणों जैसे-ईर्ष्या, नफरत, क्रोध और बदले की इच्छा से भी घृणा करता है और वह इन सबको हत्या के समान मानता है।

नीति-14:30, रोमि-1:29, I यूह-2:11, याक-1:20, गला-5:19-21, I यूह-3:15

प्रश्न 107 : क्या यह पर्याप्त नहीं है कि हम किसी प्रकार से अपने पड़ोसी की हत्या नहीं करते?

उत्तर : नहीं। जब परमेश्वर ईर्ष्या, नफरत और क्रोध करना मना करता है तो वह आज्ञा देता है, कि हम अपने पड़ोसी से अपने समान प्रेम करें, कि उनके प्रति धैर्य, शांति, दीनता, करुणा और दयालुता प्रगट करे और उसे नुकसान से बचाए, जैसे अपने आपको, और यहाँ तक कि अपने दुश्मनों के साथ भलाई करे।

मत-22:39, 7:12, रोमि-12:10, इफि-4:2, गला-6:1,2, मत-5:5, रोमि-12:18, लूका-6:36, मत-5:7, I पत-3:8, कुलु-3:12, निर्ग-23:5, मत-5:44, रोमि-12:20

प्रभु का दिन - XLI

प्रश्न 108 : सातवीं आज्ञा हमें क्या सिखाती है?

उत्तर : सातवीं आज्ञा सिखाती है कि सारी अशुद्धता (व्यभिचार, कामुकता) परमेश्वर की ओर से शापित है और इसलिए हम हृदय से इससे घृणा करे और दूर रहें, और विवाह में और बाहर दोनों जगह एक पवित्र और संतुष्टि का जीवन जिएं।

लैव-18:28, I थिस-4:3-5, इब्रा-13:4, I कुरि-7:7

प्रश्न 109 : क्या परमेश्वर इस आज्ञा में व्यभिचार और इससे घोर पापों के अतिरिक्त कुछ मना नहीं करते?

उत्तर : जबकि, हमारा शरीर और आत्मा दोनों पवित्र आत्मा के मन्दिर है, उसकी इच्छा है कि हम दोनों को शुद्ध और पवित्र रखें, इसलिए वह सभी कामुकता के कार्य, भावनाएं, बातें, विचार, इच्छाएं और कुछ भी जो इन्हें प्रोत्साहन देती है, को मना करता है।

इफि-5:3,4, I कुरि-6:18,19 मत-5:27,28, इफि-5:18, I कुरि-15:33

प्रभु का दिन - XLII

प्रश्न 110 : परमेश्वर ने आठवीं आज्ञा में क्या मना किया है?

उत्तर : परमेश्वर सिर्फ ऐसी चोरी और डकैती को ही नहीं मना करता, जो न्यायालय द्वारा दण्डित की जाती हैं। वरन् सभी अनुचित चालाकी, जिससे हम अपने पड़ोसी की सम्पत्ति हासिल करना चाहते हैं, चाहे ताकत से अथवा अपने हक जताकर, जैसे अनुचित तोल, माप, नाप और माल, नकली सिक्के, अधिक ब्याज, अथवा अन्य कोई माध्यम, सभी उसके लिए चोरी है और परमेश्वर द्वारा मना किये गये हैं। उसी प्रकार लालच और उसके दिये उपहारों (आशीषों) का गलत इस्तेमाल और व्यर्थता भी चोरी है।

I कुरि-6:10, 5:10, यशा-33:1, लूका-3:14, I थिस-4:6, नीति-11:1, 16:11, यहेज-45:9,10, व्य-25:13, भज-15:5, लूका-6:35, I कुरि-6:10, नीति-23:20, 21- 21:20

प्रश्न 111 : लेकिन परमेश्वर इस आज्ञा में तुम से क्या चाहता है?

उत्तर : वह चाहता है, कि मैं अपने पड़ोसी के लिए जो भी कर सकता हूँ करूँ, और उसके साथ ऐसा बर्ताव करूँ, जैसा मैं चाहता हूँ कि दूसरे मेरे साथ करें और ईमानदारी से परिश्रम करूँ, जिससे मैं जरूरतमंद की मदद कर सकूँ।

मत-7:12

प्रभु का दिन - XLIII

प्रश्न 112 : नौंवी आज्ञा में आवश्यक क्या है?

उत्तर : नौवी आज्ञा में आवश्यक है, कि मैं किसी भी मनुष्य के विरुद्ध झूठी गवाही न दूं, किसी की बात तो तोड़-मोड़ कर न कहूँ, पीठ पीछे बुराई अथवा निन्दा न करूँ, किसी का न्याय अथवा बिना सुने किसी मनुष्य पर दोष लगाने में जल्दबाजी न करूँ। परंतु सभी प्रकार के झूठ और धोखे को शैतान के काम समझकर उनसे दूर रहूँ, अन्यथा मैं अपने ऊपर परमेश्वर के क्रोध को ले आऊँगा। इसी प्रकार सभी न्याय और अन्य बातों में मैं सत्य से प्रेम रखूँ, इसे न्याय के लिये कहूँ और अंगीकार करूँ, और जहाँ तक मेरे लिए संभव है मैं अपने पड़ोसी के सम्मान की रक्षा और बढ़ोत्तरी करूँ।

नीति-15:5,9, 21:28, भज-15:3, 50:19,20, रोमि-1:30, मत-7:1, लूका-6:37, यूह-8:44, नीति-12:22, I कुरि-13:6, इफि-4:25, I पत-4:8

प्रभु का दिन - XLIV

प्रश्न 113 : दसवीं आज्ञा हमसे क्या चाहती है?

उत्तर : दसवी आज्ञा चाहती है, कि परमेश्वर की आज्ञा के विरोध में कोई भी छोटी बात अथवा विचार कभी भी हमारे हृदय में नहीं आने चाहिए, परंतु हमेशा हम अपने पूर्ण हृदय से सभी पापों से नफरत करें और सभी धार्मिकता में आनन्दित रहें।
रोमि-7:7

प्रश्न 114 : परंतु क्या वे जो परमेश्वर के लिये परिवर्तित हो चुके हैं, इन आज्ञाओं को पूर्णता पूरा कर सकते हैं?

उत्तर : नहीं ! वरन् अत्यन्त पवित्र मनुष्य इस जीवन में सिर्फ आज्ञाकारिता की छोटी सी शुरूआत ही करता है। अब तो वे सिर्फ थोड़ी नहीं, वरन् परमेश्वर की सभी आज्ञाओं के अनुसार अच्छे उद्देश्य के साथ, जीवन जीना प्रारम्भ करते हैं।
I यूह-1:8, रोमि-7:14,15, सभो-7:20, I कुरि-13:9, रोमि-7:22, भज-1:2

प्रश्न 115 : तब क्यों, परमेश्वर ने इन दस आज्ञाओं को इतनी कठोरता से प्रचारित किया, जबकि इस जीवन में कोई इन्हें पूरा नहीं कर सकता?

उत्तर : **पहला कारण** -कि हम अपने पूर्ण जीवनकाल में अधिक से अधिक अपने पापी स्वभाव को समझ सकें, और बहुतायत से मसीह में पापों से छुटकारा और धार्मिकता के खोजी हों, **दूसरा**-हम परमेश्वर से पवित्र आत्मा के अनुग्रह के लिए निरंतर यत्न और प्रार्थना करें, कि अधिक से अधिक परमेश्वर की समानता में नये होते जाए, जब तक कि इस जीवन के पश्चात हम सिद्धता के उद्देश्य तक न पहुँच जाएं।
रोमि-3:20, I यूह-1:9, भज-32:5, मत-5:6, रोमि-7:24, 25, I कुरि-9:24, फिलि-3:12-14

प्रभु का दिन - XLV

प्रश्न 116 : मसीहीयों के लिये प्रार्थना करना क्यों आवश्यक है?

उत्तर : क्योंकि, प्रार्थना धन्यवादिता का मुख्य भाग है, जो परमेश्वर हमसे चाहता है और क्योंकि परमेश्वर अपना अनुग्रह और पवित्र आत्मा सिर्फ उन्हें देगा जो हृदय की कराहट, इच्छा से, निरंतर उससे मांगते और उनके लिये परमेश्वर का धन्यवाद करते हैं।
भज-50:14, मत-7:7, लूक-11:9,13, I थिस-5:17

प्रश्न 117 : ऐसी प्रार्थना जिससे परमेश्वर आनन्दित हो और सुने उसमें क्या होता है?

उत्तर : **पहला**-कि हम हृदय से सिर्फ एक सच्चे परमेश्वर को पुकारें, जिसने अपने आपको अपने वचन में प्रगट किया है, सब बातों को उसकी इच्छानुसार उससे मांगने के लिये उसने हमें आज्ञा दी है। **दूसरा**-कि हम सही प्रकार से अपनी जरूरत और दु:खों, तंगहाली को जाने, ताकि हम अपने आपको उसके गौरवशाली चेहरे के सम्मुख नम्र कर सकें, **तीसरा**-कि हम दृढ़ता से आश्वस्त हों, कि यद्यपि हम इसके योग्य नहीं हैं, फिर भी मसीह हमारे प्रभु के कारण वह हमारी प्रार्थना जरूर सुनेगा, जैसा कि उसने अपने वचन में वादा किया है।
यूह-4:24, भज-145-18, प्रका-19:1, यूह-4:22-24, रोमि-8:26, याक-1:5, I इति-20:12, भज-2:11, 34:18, यशा-66:2, रोमि-10:13, याक-1:6, यूह-14:13, 16:23, दान-9:18, मत-7:8, भज-27:8

प्रश्न 118 : परमेश्वर ने हमें क्या आज्ञा दी है, कि हम उससे मांगे ?

उत्तर : सभी कुछ जो प्राण और शरीर के लिए आवश्यक है, जिनका हमारे प्रभु ने उस प्रार्थना में समावेश किया है, जिसे उसने स्वयं हमें सिखाया।
याक-1:17, मत-6:33

प्रश्न 119 : प्रभु की प्रार्थना क्या है?

उत्तर : प्रभु प्रार्थना है -
हे हमारे पिता तू जो स्वर्ग में है,
तेरा नाम पवित्र माना जाए,
तेरा राज्य आए,
तेरी इच्छा जैसे स्वर्ग में पूरी होती है वैसे ही पृथ्वी पर भी पूरी हो।
हमारे दिन भर की रोटी आज हमें दे।
और जैसे हम ने अपने अपराधियों को क्षमा किया है वैसे ही तू भी हमारे अपराधों को क्षमा कर,
और हमें परीक्षा में न ला परंतु बुराई से बचा।
क्योंकि राज्य ओर पराक्रम और महिमा सदा तेरे ही हैं-आमीन
मत-6:9-13, लूका-11:2-4

प्रभु का दिन - XLVI

प्रश्न 120 : क्यों मसीह ने हमें आज्ञा दी कि हम परमेश्वर को, हे हमारे पिता कहकर बुलाएं?

उत्तर : ताकि हम प्रार्थना के शुरूआत में इस बात को समझ लें, कि परमेश्वर के प्रति बच्चे के समान आदर और भरोसा ही हमारी प्रार्थना का आधार होना चाहिए, अर्थात मसीह के द्वारा परमेश्वर हमारा पिता बन गया है और हमारे सांसारिक माता, पिता हमें सांसारिक चीजों के लिये मना कर सकते हैं, उसकी तुलना में वह हमें बहुत कम (शायद ही) मना करेंगे, जो हम उससे सच्चे विश्वास से मांगते हैं।

मत-7:9-11, लूका-11:11-13

प्रश्न 121 : तू जो स्वर्ग में है क्यों जोड़ा (लिखा) गया है?

उत्तर : इसलिए कि हमें परमेश्वर की स्वर्गीय महिमा का कोई सांसारिक विचार न हो और उसकी असीमित सामर्थ से सभी कुछ जो शरीर और प्राण के लिए आवश्यक है, कि प्राप्ति की आशा रखें।

यिर्म-23:23, प्रे-17:24, 25,27, रोमि-10:12

प्रभु का दिन - XLVII

प्रश्न 122 : पहली विनती क्या है?

उत्तर : **तेरा नाम पवित्र माना जाए।** मतलब कि तू हमें योग्यता दे कि हम तुझे सही प्रकार से समझ सकें और सभी कार्यों से तेरी पवित्रता, महिमा और स्तुति करें, जिससे तेरी सामर्थ, बुद्धि, भलाई, न्याय, करुणा, और सच्चाई की चमक फैल सके और हम अपने पूर्ण जीवन, विचार, शब्दों और कार्यों को इस तरह से व्यस्थित और निर्देशित कर सकें, कि हमारे कारण तेरे नाम की निन्दा नहीं, वरन् आदर और स्तुति हो।

यूह-17:3, यिर्म-9:24, 31:33,34, मत-16:17, याक-1:5, भज-119:105, भज-119:137, लूका-1:46, 47, 68, 69 रोमि-11:33, भज-71:1

प्रश्न 123 : दूसरी विनती क्या है?

उत्तर : **तेरा राज्य आये।** अर्थात - यह कि तू अपने वचन और आत्मा से हम पर ऐसी प्रभुता करे, कि हम अधिक से अधिक अपने आपको तेरे लिये समर्पित कर सकें। अपनी कलीसिया को सुरक्षित रख और उसकी बढ़ोत्तरी कर, शैतान के कार्यों एवं सामर्थ, जो तेरे विरुद्ध अपने आपको सम्मान (ऊँचा) देती और तेरे वचन के विरुद्ध दुष्ट योजनाएं बनाती हैं, का नाश कर, जब तक कि तेरा राज्य पूर्णता स्थापित न हो।

भज-1:43:10, 119-5, मत-6:33, भज-51:18, 122:6, I यूह-3:8, रोमि-6:20

प्रभु का दिन - XLIX

प्रश्न 124 : तीसरी विनती क्या है?

उत्तर : **तेरी इच्छा जैसे स्वर्ग में पूरी होती है वैसे ही पृथ्वी पर भी पूरी हो।** अर्थात-सामर्थ दे कि हम और सभी मनुष्य अपनी इच्छाओं का इन्कार कर सकें और बिना इंकार किये तेरी आज्ञा मानें, जो एकमात्र अच्छी है। ताकि सभी अपने अधिकार और बुलाहट के कर्तव्य को, स्वेच्छा और ईमानदारी से पूरा कर सके। जैसे स्वर्ग में स्वर्गदूत करते हैं।

मत-16:24, तीत-2:11,12, लूका-22:42, इफि-5:10, रोमि-12:2, I कुरि-7:24, भज-103:20, 21

प्रभु का दिन - L

प्रश्न 125 : चौथी विनती क्या है?

उत्तर : **हमारे दिन भर की रोटी आज हमें दे।** अर्थात-हमारी सभी शारीरिक आवश्यकताओं की पूर्ति करके आनन्दित हो, कि इससे हम तुझे सारी आशीषों का झरना (स्त्रोत) स्वीकार कर सकें, और मान सकें कि बिना तेरे आशीष के न हमारी देखरेख, और परिश्रम न ही तेरे दाने हमारे किसी लाभ के हैं, और इस प्रकार हम अपने भरोसे को सभी प्राणियों (व्यक्तियों) से हटाकार सिर्फ तुझ पर रख सकें।

भज-145:15, 104:27, मत-6:26, याक-1:17, प्रे-14:17, 17:25, I कुरि-15:58, व्य-8:3, भज-37:16, 127:1,2, भज-55:22, 62:10, यिर्म-17:5,7

प्रभु का दिन - LI

प्रश्न 126 : पाँचवीं विनती क्या है?

उत्तर : **''जिस प्रकार हमने अपने अपराधियों को क्षमा किया है वैसे ही तू हमारे अपराधों को क्षमा कर''** अर्थात-मसीह के लहू के कारण, हम दु:खी पापियों पर, हमारे गुनाहों और उस बुराई जो हमेशा हमसे जुड़ी रहती है, का बोझ तू हम पर नहीं डालता, जब हम तेरे इस अनुग्रह को अपने लिये

प्राप्त करते हैं। तब हमारा उद्देश्य है कि हम अपने पड़ोसी को हृदय से क्षमा करें।

भज-51:1, 143:2, I यूह-2:1, रोमि-8:1, मत-6:14

प्रभु का दिन - LII

प्रश्न 127 : छठी विनती क्या है?

उत्तर : **और हमें परीक्षा में न ला परंतु बुराई से बचा।** अर्थात-जबकि हम अपने आपमें अत्यन्त कमजोर है कि हम एक क्षण भी स्थिर नहीं रह सकते, और इसके अतिरिक्त हमारा दुश्मन शैतान, संसार और हमारा स्वयं का पाप हम पर आक्रमण करना नहीं छोड़ता, इसलिए हमें अपनी पवित्र आत्मा की सामर्थ में संभालने, सुरक्षा, और शक्ति देने में आनन्दित हो, ताकि हम इस आत्मिक युद्ध में परास्त न हो, वरन् हमेशा इसका दृढ़ता से विरोध करते रहे, अन्ततः हम पूर्ण विजयी हो जाए।

यूह-15:5, भज-103:14, I पत-5:8, इफि-6:12, यूह-15:19, रोमि-7:23, गला-5:17, मत-26:41, मर-13:33, I थिस-3:13, 5:23

प्रश्न 128 : तुम अपनी प्रार्थना का समापन कैसे करते हो?

उत्तर : **क्योंकि राज्य और पराक्रम और महिमा सदा तेरे ही है।** अर्थात-हम यह सब तुझसे मांगते है, क्योंकि तू हमारा राजा है जिसके पास सभी कुछ पर प्रभुता और सामर्थ है, जो इच्छा रखता और योग्य है, कि हमें सभी अच्छी वस्तुएं दे और इसलिए हमारी नहीं वरन् तेरे पवित्र नाम की महीमा युगानयुग होती रहे।

रोमि-10:12, II पत-2:9, यूह-14:13, यिर्म-33:8, भज-115:1

प्रश्न 129 : आमीन शब्द का क्या तात्पर्य है?

उत्तर : आमीन शब्द का तात्पर्य है- यह सत्यता और निश्चयता से पूरा होगा, क्योंकि मेरी प्रार्थनाएं मेरे हृदय में सोचने से, कि मैं उससे ये चीजें माँगता हूँ, से अधिक निश्चयता के साथ परमेश्वर ने सुनी है।

II कुरि-1:20, II तिमु-2:13

V V V

नियम (सिद्धान्त)
Conons of Dort

नीदर लैण्ड में पाँच मुख्य सिद्धान्त के मतभेद के विषय में Dort के Synod के निर्णय को Dort के नाम से जाना जाता है। यह Dort की Synod जो Dordrent शहर में 1618-19 में इकट्ठी हुई के सिद्धान्तो के कथन (घोषणा) पर बनायी गयी। यद्यपि यह नीदरलैण्ड की राष्ट्रीय Synod थी परन्तु इसमें सिर्फ Dutch प्रतिनिधि ही नही वरन् 26 देशों के प्रतिनिधि भी शामिल थे।

Dort की Synod डच कलीसिया में Jacab Arminius द्वारा शुरू विवाद को सुलझाने के लिए हुयी, Arminius के पीछे चलने वालो ने उसकी मृत्यु के पश्चात-चुनाव विश्वास पर आधारित, सबका प्रायश्चित, पूरा विनाश मे न जाना, अनुग्रह जिसे रोका जा सके, और अनुग्रह से गिरने की संभावना, की शिक्षा दी। Dort की Synod ने इन्हें अस्वीकार किया और संशोधित सिद्धान्तों को स्थापित किया जो मुख्यत: है।

बिना शर्त के चुनाव (Unconditional election)
सीमित लोगों के लिए प्रायश्चित (Limited Atonement)
पूर्ण अयोग्यता (Total Depravity)
अप्रतिरोधक अनुग्रह (Irresistible grace)
संतों की दृढ़ता (Perseverance of Saints)

ये नियम सभी सिद्धान्तों को सम्बोधित नही करते वरन् उन पांच सिद्धान्तों को ही जो विवाद का विषय थे।

●

सिद्धान्त (शिक्षा) का पहला मुख्य विषय
ईश्वरीय चुनाव और अस्वीकरण

लेख-1

लोगो को दोषी ठहराने का परमेश्वर का अधिकार

जबकि सबने आदम में पाप किया और अनन्त मृत्यु के लिये श्रापित हुए/किये गये। यदि परमेश्वर पूरी मानव जाति को पाप और उसके श्राप में छोड़ कर उनके पाप के लिए उन्हें दोषी ठहराया होता परमेश्वर ने कुछ भी गलत नही किया होता ।

जैसा प्रेरित कहते है, ''समस्त संसार परमेश्वर को लेखा देने वाला ठहरे'' रोमि-3:19,''सबने पाप किया और परमेश्वर की महिमा से रहित है'' रोमि-3:23,''पाप की मजदूरी तो मृत्यु है।'' रोमि-6:23

लेख-2

परमेश्वर के प्रेम का प्रगटीकरण

लेकिन परमेश्वर ने अपने प्रेम को इस प्रकार प्रगट किया कि उसने अपने इकलौते प्रिय पुत्र को संसार में भेज दिया, ताकि जो कोई उस पर विश्वास करे नाश न हो परन्तु अनन्त जीवन पाएं।

लेख-3

सुसमाचार का प्रचार करना

परमेश्वर ने अपने अनुग्रह में ऐसे प्रचारको को भेजा जो इस आनन्द के संदेश को लोगो के पास पहुचाएं, जिन्हे परमेश्वर चाहता है। ताकि वे विश्वास में आ जाए। इस सेवा के द्वारा लोग पश्चाताप और क्रूस पर चढ़ाए गये यीशु पर विश्वास में बुलाए गये। धर्मशास्त्र कहता है, ''वे उसे क्यों पुकारेंगे जिस पर उन्होंने विश्वास ही नहीं किया? और वे उस पर विश्वास कैसे करेंगे जिसके विषय में उन्होंने सुना ही नहीं? भला वे प्रचारक के बिना कैसे सुनेंगे? और वे प्रचार कैसे करेंगे जब तक कि उन्हें भेजा न जाए?

रोमि-10:14-15

लेख-4

सुसमाचार को दो प्रति उत्तर

जो सुसमाचार पर विश्वास नही करते परमेश्वर का क्रोध उन पर बना रहता है। लेकिन जो सच्चे और जीवित विश्वास के द्वारा, यीशु उद्धार कर्ता को स्वीकार करके

अपना लेते है। उसके द्वारा परमेश्वर के क्रोध और नाश होने से बच जाते है। और अनन्त जीवन के उपहार को पाते है।

लेख-5

अविश्वास और विश्वास का स्त्रोत

अविश्वास और दूसरे सभी पापो का कारण किसी भी तरह परमेश्वर नही, स्वयं मनुष्य है। लेकिन, यीशु मसीह में विश्वास और उसके द्वारा उद्धार परमेश्वर के द्वारा मुफ्त उपहार है। जैसाकि धर्मशास्त्र कहता। ''विश्वास के द्वारा अनुग्रह से ही तुम्हारा उद्धार हुआ है। और यह तुम्हारी और से नही वरन परमेश्वर का दान है'' इफि- 2:8 । ''तुम पर परमेश्वर का अनुग्रह हुआ कि तुम मसीह पर विश्वास करो''-फिल-1:29

लेख-6

परमेश्वर का अनन्त कालीन निर्णय

परमेश्वर के अनन्त कालीन निर्णय के द्वारा, कुछ परमेश्वर द्वारा विश्वास के उपहार को प्राप्त करते है। और कुछ इसे स्वीकार नही करते। धर्मशास्त्र कहता है:-उसके सभी कार्यों को परमेश्वर अनन्त काल से ही जानता है।-Acts-15:18 इफि-1:11 अपने निर्णय के अनुसार परमेश्वर अनुग्रह से अपने चुने हुए के ह्रदयों को खोलता, तैयार करता है, कि वे विश्वास करे-लेकिन अपने सच्चे सही धार्मिक न्याय मे जो चुने हुए नहीं है। उनके ह्रदय की कठोरता मे उन्हे उनके पाप में छोड़ देता है। इसके द्वारा, हमारी समझ से बाहर अपने कार्य को प्रगट करता है। वह जितना दयालु-उतना न्याय संगत- पूरे खोये हुयों के बीच मे अन्तर दिखाता है।

यह परमेश्वर के वचन मे अच्छी तरह प्रगट हुआ, चुनाव और Reprobation (अस्वीकरण) का निर्णय है।

यह निर्णय कि अधर्मी-अपवित्र अपनी नाश का कारण स्वयं है, लेकिन पवित्र और परमेश्वर का भय मानने वाली आत्माओं को ऐसी तसल्ली जो शब्दों में नहीं कही जा सकती, प्रदान करता है।

लेख-7

चुनाव:-परमेश्वर का न बदलने वाला उद्देश्य जिसके द्वारा वह अग्रलिखित बाते करता है

संसार की उत्पत्ति से पहले अनुग्रह के द्वारा अपनी भली स्वतन्त्र इच्छा के अनुसार

पूरी मानव जाति में से जो अपनी गलती के कारण पवित्रता से गिर कर पाप मे चली गई, परमेश्वर ने पूरी मानव जाति में से कुछ लोगो को यीशु मसीह मे उद्धार के लिए चुन लिया। जिन्हे उसने चुना ऐसा नही कि वे अच्छे थे या दूसरो से ज्यादा लायक थे-परन्तु सभी मे सामान्य दु:ख थे, उसने मसीह में ऐसा किया, जिसे उसने अनन्त काल से बिचवइया चुने हुओं का मुखिया, सिर और उनके उद्धार की बुनियाद ठहराया।

और उसने निर्णय किया कि चुनों हुओं को यीशु मसीह को उद्धार के लिए दे, और वचन ओर आत्मा के द्वारा प्रभावशाली रूप से बुलाया और मसीह की संगति में शामिल किया। दूसरे शब्दो में:- परमेश्वर ने उनका न्याय और पवित्र करने के लिए मसीह मे सच्चा विश्वास देने का निर्णय किया, और अपने बेटे की संगति में बचाकर रखने के द्वारा उनकी महिमा की। परमेश्वर ने ऐसा करके अपनी दया को प्रगट किया ताकि उसकी महिमायुक्त अनुग्रह की स्तुति हो।

जैसी की धर्मशास्त्र कहता है, ''उसने हमे जगत की उत्पति से पूर्व मसीह मे चुन लिया कि हम उसके समक्ष प्रेम मे पवित्र और निर्दोष ठहरे, उसने हमें अपनी इच्छा के भले अभिप्राय के अनुसार पहिले से ही अपने लिये यीशु मसीह के द्वारा लेपालक पुत्र होने के लिए ठहराया, कि उसके उसे अनुग्रह की महिमा की स्तुति हो जिसे उसने हमें उस अति प्रिय में सेंत मेत दिए है।'' इफि-1:4-6

फिर जिन्हें उसने पहले से ठहराया है, उन्हे बुलाया भी ओर जिन्हें बुलाया उन्हें धर्मी भी ठहराया और जिन्हे धर्मी ठहराया उन्हे महिमा भी दी है। रोमि-8:30

लेख-8

चुनाव का एक मात्र निर्णय

चुनाव कई प्रकार का नहीं है-जो पुराने नियम और नये-नियम मे उद्धार प्राप्त करते है। सभी का चुनाव एक, और एक जैसा है। धर्मशास्त्र कहता है, कि परमेश्वर की एक ही भली उद्देश्य और योजना है जिसमें उसने हमे अनुग्रह और महिमा उद्धार और उद्धार के मार्ग के लिए अनन्त काल से चुन लिया, जिसे उसने पहले से तैयार किया कि हम उस पर चले।

लेख-9

चुनाव, दिखने वाले विश्वास पर आधारित नही

चुनाव विश्वास, विश्वास की आज्ञाकारिता, पवित्रता और अन्य कोई अच्छे गुण पर आधारित नही है। यद्यपि यह मनुष्य की पूर्व अपेक्षित स्थिति पर चुनाव विश्वास, विश्वास

की आज्ञाकारिता, पवित्रता के लिए किया गया। उद्धार के सभी फायदों का स्रोत चुनाव है। विश्वास पवित्रता, और अन्य सभी उद्धार के उपहार, और अनन्त काल का जीवन चुनाव का प्रतिफल और प्रभाव है। प्रेरित कहते है, उसने हमें इसलिये चुना कि हम उसके समक्ष प्रेम में पवित्र और निर्दोष हो। इफि-1:14,

लेख-10

चुनाव परमेश्वर की भली इच्छा पर आधारित है।

चुनाव जो हमारा अधिकार नही, का कारण सिर्फ परमेश्वर की भली इच्छा पर आधारित है। परमेश्वर के चुनाव में मनुष्य के कोई गुण, भले कार्य, उद्धार के जरूरी हो शामिल नहीं है। लेकिन सभी पापियों में जो एक समान है। परमेश्वर ने कुछ लोगो को चुन लिया-गोद ले लिया कि वे उसके अपने हो।

जैसा कि पवित्रशास्त्र कहता है।

यद्यपि अब तक न तो जुड़वा जन्मे थे न कुछ भला या बुरा किया था इस अभिप्राय से कि परमेश्वर द्वारा चुनने के उद्धेश्य कर्म के कारण नही वरन् बुलाने वाले के कारण स्थिर रहे, उससे यह कहा गया था ज्येष्ठ पुत्र छोटे की सेवा करेगाा, जैसा लिखा है ''याकूब से मैने प्रेम किया परन्तु एसाव को अप्रिय जाना'' - रोमि-9:11-13

''जब तुझे गैर यहूदियो के लिये ज्योति ठहराया है कि पुथ्वी को छोर तक का उद्धार का कराण हो, जब गैरयहूदियों ने यह सुना तो वे आनन्दित होने तथा प्रभु के वचन की प्रशंसा करने लगे और जितने अनन्त जीवन के लिए ठहराए गये थे उन्होने विश्वास किया-प्रेरितो के काम 13:47-48

लेख-11

न बदलने वाला चुनाव

जैसे कि परमेश्वर सर्वबुद्विमान, न बदलने वाला, सब कुछ जानने वाला, सर्वसामर्थी है, उसी प्रकार उसका चुनाव त्यागा, उसमे फेरबदल और समाप्त नही किया जा सकता, और न ही उसके चुने हुओं का छोड़ा जा सकता है। और न ही उनकी संख्या कम की जा सकती है।

लेख-12

चुनाव का आश्वासन

अनन्त और न बदलने वाले उद्धार के चुनाव का आश्वासन चुने हुओं लोगो को समय-समय पर अलग-अलग प्रकार से होता है। ये आश्वासन परमेश्वर के छिपे हुए और गहरे भेदो को समझ कर नहीं, परन्तु अपने आप को जानकार होता है। आत्मिक आनन्द

और पवित्र खुशी के साथ चुनाव के प्रतिफल, परमेश्वर के वचन के अनुसार अनुभव होते है-यीशु मसीह पर सच्चा विश्वास, बच्चे के समान परमेश्वर का भय, पाप का दु:ख, धार्मिकता की भूख और प्यास है।

लेख-13.

आश्वासन का प्रतिफल

परमेश्वर की सन्तान रोजना/प्रतिदिन- चुनाव की जानकारी और आश्वासन में अपने आपको परमेश्वर के सम्मुख नम्रता/दीनता से प्रस्तुत करते है। परमेश्वर का दया जो समझ से बाहर है। उसकी प्रशंसा करते है। और परमेश्वर जिसने पहले उन्हे प्रेम किया, उससे प्रेम करते है। इसका यद्यपि मतलब नहीं है। कि चुनाव की यह शिक्षा परमेश्वर के सन्तानों को उसकी आज्ञा के प्रति आलसी अथवा स्वंय आश्वस्त करती है। परमेश्वर के उचित न्यायद्वारा ऐसा उनमे होता है जो परमेश्वर के अनुग्रह को अन्यथा लेते है और इसके विषय में अनुचित बात करते और चुनें हुओं के मार्ग के अनुसार नही चलते।

लेख-14

चुनाव की सही शिक्षा

परमेश्वर की उचित योजना के अनुसार जिस प्रकार ईश्वरीय चुनाव की शिक्षा भविष्यद्वक्ताओं के द्वारा, यीशु मसीह और प्ररितों के द्वारा पुराने और नये नियम में सिखायी गयी और पवित्र शास्त्र में लिखी गयी। आज भी परमेश्वर की कलीसियों में आत्मा की समझ के द्वारा, यह शिक्षा पूरी पवित्रता और सच्चाई के साथ, परमेश्वर के मार्गों की सिखानी है यह परमेश्वर की पवित्र नाम की महिमा और उसके लोगो की तसल्ली के लिये होनी चाहिए।

लेख-15

परमेश्वर का वचन हमारे अनन्त और अनुग्रह के चुनाव को और ज्यादा प्रस्तुत करता

जिसमे पवित्र शास्त्र सिखाता है। कि सभी लोग चुने नही गये है। परमेश्वर के अनन्त चुनाव में कुछ लोग नही चुने गये-जिनके बारे मे परमेश्वर ने अपनी स्वतन्त्र, सर्व उचित, न बदलने वाली भली इच्छा में अग्रलिखित निर्णय लिया-

अपनी गलती और पाप के द्वारा जिस दु:ख मे वे गये उन्हें छोड़ दिया,

उन्हें उद्धार का विश्वास और परिवर्तन का अनुग्रह नहीं दिया।

अन्तत: उनके हाल पर छोड़कर अपने उचित न्याय के द्वारा दोषी ठहराया और अनन्त कालीन दण्ड दिया-सिर्फ उनके अविश्वास के लिए नही वरन् अन्य सभी पापों के लिए इसके द्वारा उसने अपने न्याय को प्रगट किया।

यह अस्वीकरण (reprobation) का निर्णय है- जो परमेश्वर को पाप का जन्मदाता नही बनाता, लेकिन यह भययोग्य, irreprochable उचित न्याय और बदला है।

लेख-16.

अस्वीकरण (Reprobation) की शिक्षा को प्रतिउत्तर

जिन्होंनें अपने आप में अभी तक मसीह मे जीवित विश्वास, ह्रदय में दृढ़ भरोसा, मन में शान्ति, बच्चे की तरह आज्ञाकारिता का बोझ और मसीह के द्वारा परमेश्वर की महिमा का अनुभव नही किया है। लेकिन ऐसे साधनों में बने है। जिनके द्वारा परमेश्वर इन बातों को हमारे जीवन मे करता है। ऐसे लोगों को अस्वीकरण (Reprobation) के नाम से चिन्तित होने की आवश्यकता नहीं है। न ही वे अस्वीकृत (Reprobate) है। उन्हें लगातार खुशी से इन बातों में बने रहना हैं। भरपूरी के अनुग्रह की इच्छा में बने रहे और दीनता और आदर से उसका इन्तजार करते रहना हैं। दूसरी तरफ जो गम्भीरता से परमेश्वर की ओर मुड़ना चाहते है। उसे खुश रखना चाहते है। और मृत्यु के शरीर से छुटकारा चाहते है। लेकिन परमेश्वर के मार्ग, विश्वास में ऐसा करने में सफल नहीं होते-ऐसे लोगो को भी नाश होने की शिक्षा से डरने की आवश्यकता नहीं हैं। क्योकि दयालु परमेश्वर ने वादा किया हैं कि वह कमजोर को अलग नहीं करेगा और कमजोर को तोड़ेगा नहीं।

लेकिन वे लोग जिन्होंने परमेश्वर और उद्धारकर्ता यीशु को भुला दिया हैं। और अपने आपको पूरी रीति से संसार और शरीर की लालसाओं में सौप दिया हैं। ऐसे लोग जब तक गम्भीरता से परमेश्वर की ओर नही मुड़ते उनके पास नाश होने की शिक्षा से डरने के लिए हर कारण हैं।

लेख-17

विश्वासियों के बच्चों का उद्धार

परमेश्वर के वचन से हम परमेश्वर की इच्छा जानते है। जिससे हम जानते हैं कि विश्वासियों के बच्चे पवित्र है, स्वाभाव से नही परन्तु अनुग्रह की उस वाचा से जिसमें वे अपने माता-पिता के साथ शामिल हैं। इसलिए परमेश्वर का भय मानने वालो माता-पिता को अपने बच्चों के उद्धार और चुनाव के बारे में कोई शक नहीं करना चाहिए। जिन्हे परमश्वेर ने बाल्यवस्था में बुलाया है।

लेख-18

चुनाव और अस्वीकरण की तरफ उचित रूख/व्यवहार

जो चुनाव के अनुग्रह और अस्वीकरण के दु:ख के विषय में शिकायत करते हैं। उन्हें हम प्रेरित के शब्दों में जवाब देते है। ''इसके विपरीत है मनुष्य तू कौन है, जो परमेश्वर से प्रतिवाद करता हैं। क्या गढ़ी हुयी वस्तु गढ़ने वाले से यह कहेगी कि तूने मुझे ऐसा क्यों बनाया। रोमि-9:2 ''क्या मेरे लिये उचित नही कि जो मेरा उदार होना तेरी आंखों में खटकता हैं'' मत्ती-20:15

हम फिर भी आदर के साथ इन रहस्य की बातों में प्रेरितों के साथ पुकारते हैं। ''अहा! परमेश्वर का धन बुद्धि और ज्ञान कितने अगाध है उसके विचार जैसे अथाह और उसके मार्ग कैसे अगम्य है, क्योंकि प्रभु के मन को किसने जाना है, अथवा उसका परामर्श दाता कौन हुआ अथवा किसने उसे सर्वप्रथम कुछ दिया है जो उसे लौटा दिया जाए। क्योंकि उसी की ओर से उसी के द्वारा जो उसी के लिए सब कुछ है उसी की महिमा युगानगुग होती रहे आमीन।'' रोमि-11:33-36

गलत शिक्षाओं का विरोध-अस्वीकारना जिसने डच कलीसिया को कुछ समय तक परेशान किया जबकि चुनाव और अस्वीकारण परम्परागत शिक्षा को समझ चुके है। Synod गलत शिक्षाओं को अस्वीकार करती है।

I

वे जो ये शिक्षा देते हैं, कि परमेश्वर उन्हें ही बचाएगा जो विश्वास करेंगें और विश्वास में सुरक्षित रहेगे और विश्वास की आज्ञाकारिता में ही चुनाव और उद्धार का निर्णय निहित है। इसके सिवा कुछ भी चुनाव और अस्वीकरण के बारे में परमेश्वर के वचन में प्रगट नहीं किया गया है।

ऐसे लोग पवित्र शास्त्र की शिक्षा का विरोध करते है। कि परमेश्वर सिर्फ उन्हें ही नहीं बचाता जो विश्वास करते हैं। परन्तु उसने अनन्त काल से कुछ लोगों को चुना है। दूसरों की अपेक्षा इन्हें समय पर मसीह में विश्वास और सुरक्षा देगा।

जैसा पवित्र शास्त्र कहता, ''मैने तेरा नाम उन मनुष्यों पर प्रकट किया हैं जिन्हें तू ने जगत में से मुझें दिया हैं वह सब तेरी ओर से है।'' यूहन्ना-17:6

''जब गैर यहूदियों ने यह सुना तो वे आनन्दित होने तथा प्रभु के वचन की प्रशंसा करने लगे और जितने अनन्त जीवन के लिये ठहराये गये थे उन्होंने विश्वास किया'' प्रे.13:48

''उसने हमे जगत की उत्पत्ति से पूर्व मसीह में चुन लिया कि हम उसके समक्ष प्रेम में पवित्र और निर्दोष हो'' इफि-1: 4

II

गलत शिक्षा

जो यह शिक्षा देते है। कि परमेश्वर का चुनाव कई प्रकार का है। **पहला**-साधारण और अस्पष्ट चुनाव, **दूसरा**-विशेष और स्पष्ट चुनाव सम्पूर्ण नही, बदलनेवाला, जो अनिवार्य नही और Conditional शर्त पर वाला चुनाव है। अन्यथा पूर्ण, बदलने वाला नही अनिवार्य और सम्पूर्ण हैं।

इस प्रकार गलत शिक्षा जो सिखाती है। एक विश्वास का चुनाव है। दूसरा उद्धार के लिए इस प्रकार उद्धार के अनिवार्य चुनाव के अलावा एक और चुनाव है। जिसके द्वारा बचाने वाला विश्वास प्राप्त होता है,

ये गलत शिक्षा परमेश्वर के वचन से अलग मनुष्य दिमाग की उपज है। जो चुनाव की शिक्षा बदल देती है। और उद्धार की कड़ी को तोड़ती हैं। 'जिन्हें उसने पहले से ठहराया उन्हें बुलाया भी और जिन्हें बुलाया उन्हें धर्मी ठहराया, और जिन्हें धर्मी ठहराया उन्हें महिमा भी दी है' रोमि-8:30

III

गलत शिक्षा

परमेश्वर की भलीं इच्छा और उद्देश्य, जो चुनाव की शिक्षा के बारे में पवित्र शास्त्र में हैं। परमेश्वर का कुछ विशेष लोगों को, अन्यों की अपेक्षा चुनना, जो हर सम्भव स्थिति में कार्य की व्यवस्था और दूसरी चीजों पर आधारित है। जो अपने आप में विश्वास के लिए अयोग्य है। और विश्वास की अपूर्ण आज्ञाकारिता है। जो उद्धार के लिये शर्त है। और यह परमेश्वर की अनुग्रह की इच्छा है, कि वह इसे पूर्ण आज्ञाकारिता बताते हुए इसे अनन्त जीवन के प्रतिफल के योग्य मानता है।

इस घातक गलत शिक्षा में परमेश्वर की भली इच्छा और मसीह की विशेषता उनके प्रभाव से अलग कर दी गयी, और लोग बिना फायदे के न्याय से और वचन की साफ बातों से अलग हो गये-ये शिक्षा प्रेरित की शिक्षा को गलत ठहराते है। ''जिसने हमारा उद्धार किया और पवित्र बुलाहट से बुलाया हमारे कामों के अनुसार नहीं वरन् अपने ही उद्देश्य और अनुग्रह के अनुसार जों मसीह यीशु में अनन्तकाल से हम पर हुआ।'' I तिमु 1:9

IV

गलत शिक्षा

इस शिक्षा में चुनाव में विश्वास, पूर्व अपेक्षित शर्त कि मनुष्यों को प्रकृति के

स्वभाव का सही इस्तेमाल, धर्मी, अन्दाजा न लगाने वाला, नम्र और अनन्तजीवन को प्राप्त करना, ऐसा है जैसा चुनाव इन सभी बातों पर आधारित है।

इन बातों की उपस्थिति में यह शिक्षा धर्मशास्त्र में प्रेरित की शिक्षा पर प्रश्न करते हैं।

''हम सब भी पहले अपने शरीर की लालसाओं में दिन बिताते थे। शारीरिक तथा मानसिक इच्छाओं को पूरा करते थे और अन्य लोगों के समान स्वभाव ही से क्रोध की संतान थे, परन्तु परमेश्वर ने जो दया का धनी है अपने उस महान प्रेम के कारण जिससे उसने हम से प्रेम किया जबकि हम अपने अपराधों के कारण मरे हुए थे, उसने हमें मसीह के साथ जीवित किया, अनुग्रह ही से तुम्हारा उद्धार हुआ है और मसीह यीशु में उसके साथ उठाया और स्वर्गीय स्थानों में बैठाया जिससे कि आने वाले युगों में वह अपनी उस कृपा से जो मसीह यीशु में हम पर है, अपने अनुग्रह का असीम धन दिखाएं, क्योंकि विश्वास के द्वारा अनुग्रह ही से तुम्हारा उद्धार हुआ है और यह तुम्हारी ओर से नहीं वरन् परमेश्वर का दान है, वह कार्यों के कारण नहीं जिससे कि कोई घमण्ड करे।'' इफि-2:3-9

V

गलत शिक्षा

कुछ विशेष लोगो का उद्धार के लिये चुनाव जो अपूर्ण और अनिवार्य नही है। विश्वास, पश्चाताप, पवित्रता, परमेश्वर का भय पर आधारित है। जो अभी प्रारम्भ हुआ है, था, कुछ समय से है, परन्तु सम्पूर्ण और अनिवार्य चुनाव भी विश्वास, विश्वास की सुरक्षा, पश्चाताप, पवित्रता और परमेश्वर के भय पर आधाति है। यह अनुग्रह के योग्य है। जो चुने गये वो उनकी अपेक्षा जो चुने नहीं है, ज्यादा योग्य है। इस प्रकार विश्वास, आज्ञाकारिता पवित्रता, अच्छा जीवन, और सुरक्षा, कभी न बदलने वाले चुनाव का परिणाम नहीं है। वरन ये बातें पहले से उनमें है जिनका चुनाव होना था, इन्हें उनमें पहले पाया गया था।

यह गलत शिक्षा पूरे पवित्र शास्त्र का विरोध करती है।

''यद्यपि अब तक न तो जुड़वा जन्में थे और न कुछ बुरा या भला किया था इस अभिप्राय से कि परमेश्वर द्वारा चुनने का उद्देश्य कर्म के कारण नहीं वरन बुलाने के कारण स्थिर रहे, ...'' रोमि-9:11.12, ''वे सभी जो अनन्तजीवन के ठहराये गये थे उन्होंने विश्वास किया''-प्रे-13:48, ''तुमने मुझे नहीं वरन् मैंने तुम्हें चुना है'' ''यूह-15:16 ''यदि यह अनुग्रह से हुआ तो फिर कर्मो के आधार पर कदापि नहीं.....'' रोमि 11:6 ''प्रेम इसमें नहीं कि हमने परमेश्वर से प्रेम किया, परन्तु इसमें है, कि उसने हमसे प्रेम किया और हमारे पापों के प्रायश्चित के लिए अपने पुत्र को भेजा।'' I यूह 4:10''

VI

गलत शिक्षा

गलत शिक्षा सिखाती है, कि सभी चुनाव उद्धार के लिये, न बदलने वाले नही है। परन्तु कुछ लोग जो चुने गये है। अनन्त काल के लिये नाश हो सकते है। और परमेश्वर इसे रोकना नहीं चाहता इस शिक्षा से वे परमेश्वर को बदलनेवाला और विश्वासियों के चुनाव की तसल्ली को, गलत ठहराते है। और पवित्र शास्त्र का विरोध करते हैं।

''क्योंकि झूठे नबी और झूठे मसीह उठ खड़े होंगें तथा बड़े-बड़े चिन्ह और अद्भुद काम दिखाएगें यहाँ तक की यदि सम्भव हो तो चुने हुओं को भी भरमा दे'' मत-24:24 ''जिसने मुझे भेजा है उसकी इच्छा है कि सब कुछ जो उसमें मुझे दिया है उसमें से कुछ भी न खोऊँ।'' यूह 6:39, ''जिन्हें उसने पहिले से ठहराया, उन्हें बुलाया भी और जिन्हें बुलाया उन्हें धर्मी भी ठहराया और जिन्हें धर्मी ठहराया उन्हें महिमा भी दी।'' रोमि-3:30

VII

गलत शिक्षा सिखाती है, इस जीवन मे कोई फल नही, जागरूकता नही, ठोस चुनाव के महिमा का आश्वासन नहीं, सिवाय इसके कि यह सब कुछ बदलने वाली बातों पर आधारित है। सिर्फ इतना ही गलत नहीं है कि अनिश्चित आश्वासन की बात सिखाती है। लेकिन सतों के अनुभव को भी झूठ ठहराती है। जो प्रेरितों के साथ आनन्द में अपने चुनाव के आश्वासन और पहचान में परमेश्वर की स्तुती करतें है। जैसे मसीह ने कहा ''इस बात से आनन्दित होओं कि तुम्हारे नाम स्वर्ग में लिखे हुए है।'' लूका 10:20 जो शैतान की परीक्षा के तीरों को रोकता है। और चुनाव की जागरुकता देता है। ''परमेश्वर के चुनों हुओं पर कौन दोष लगायेगा।'' रोमि -8:33

VIII

गलत शिक्षा सिखाती है कि यह परमेश्वर की उचित इच्छा नहीं है, कि परमेश्वर ने कुछ लोगों आदम के पाप और पाप की दशा नाश में होने के छोड़ देने का निर्णय लिया, और किसी को विश्वास और उद्धार के लिये जरूरी अनुग्रह प्रदान किया। इसके विरोध में परमेश्वर का वचन स्थिर है।

''वह जिस पर चाहता है दया करता है और जिसे चाहता है कठोर कर देता है'' रोमि 9:18 ''तुम्हें यह प्रदान किया गया है कि स्वर्ग के राज्यों के भेदों को जानो परन्तु उन्हें नही'' -मती-13:11, ''हे पिता स्वर्ग और पृथ्वी के प्रभु मैं मेरी स्तुति करता हूँ कि तू ने ये बातें ज्ञानियों और बुद्धिमानों से छिपाकर रखी और बच्चों पर प्रकट की है। हाँ पिता क्योंकि तुझे यही अच्छा लगा'' मत्ती-11:25-26,

VII

गलत शिक्षा सिखाती है, यह सिर्फ परमेश्वर की भलीं इच्छा नहीं हैं वह कुछ लोगो सुसमाचार पहुचाता हैं दूसरों को नहीं वरन, कुछ लोग अच्छे और योग्य है। उनकी अपेक्षा जिन्हें सुसमाचार नहीं दिया गया।

मूसा इस शिक्षा का विरोध करते जब उन्होने इस्त्राएल के लोगों को सम्बोधित किया ''देखो स्वर्ग और सर्वोच्च स्वर्ग तथा पृथ्वी और जो कुछ उसमें है वह सब तेरे परमेश्र, यहोवा ही का है। फिर भी यहोवा ने तेरे पूर्वजों को चाहकर उनसे प्रेम किया तथा उनके बाद सब जातियों से बढ़कर उनके वंशजों को अर्थात् तुमको चुना जैसा आज भी है।'' व्य-10:14:15,

''हे खुराजीन तुझ पर हाय हे बैतसदा तुझ पर हाय क्योंकि जो आश्चर्यकर्म तुममें किये गये यदि वे सूर और सैदा में किये जाते तो वे बहुत पहले टाट ओढ़कर और राख पर बैठकर पश्चाताप कर लेते''। मत:11:21,

●

सिद्धान्त (शिक्षा) का दूसरा मुख्य विषय

मसीह की मृत्यु और इसके द्वारा मनुष्य का छुटकारा

लेख-1

दण्ड – जो परमेश्वर का न्याय मांगता है।

परमेश्वर पूर्णता दयालु ही नहीं पूर्णता न्याय करने वाला भी है। जैसा उसने अपने आप को शास्त्र में प्रगट किया। जो पाप हमने उसकी असीमित महीमा के विरोध में किये है। उसका न्याय, अस्थायी और अनन्त, आत्मा और शरीर पर दण्ड मांगता है। हम इस दण्ड से तब तक नही बच सकते जब तक उसका न्याय पूरा सन्तुष्ट न हो।

लेख-2

मसीह के द्वारा उसका न्याय संतुष्ट हुआ

जबकि हम उसके न्याय को पूरा नहीं कर सकते, न ही अपने आपको उसके क्रोध से बचा सकते हैं। परमेश्वर ने अपनी असीमित दया के अनुसार हमारे लिए अपने प्रिय इकलौते पुत्र को दे दिया, जो हमारे लिए पाप बना और पाप के लिए हमारी जगह क्रूस पर श्रापित हुआ, कि वह हमारे लिए परमेश्वर के न्याय को सन्तुष्ट कर सके।

लेख-3

मसीह की मृत्यु का असीमित मूल्य (महत्व)

परमेश्वर के पुत्र की मृत्यु ही पूरी तरह सम्पूर्ण बलिदान है, और पाप के दण्ड को पूरा करती है। जो असीमित और इस योग्य है कि सारे संसार के पापों का प्रायश्चित कर सके।

लेख-4

असीमित मूल्य का कारण

उसकी मृत्यु इसीलिए महान मूल्य की और योग्य है, कि जिसने दु:ख उठाया- उसके लिए जरूरी था, कि वह हमारा उद्धारकर्ता हो, सिर्फ इतना ही नही कि वह सच्चा, सिद्ध, पवित्र मनुष्य हो, लेकिन परमेश्वर का इकलौता पुत्र हो और जिसका अनन्तकालीन, असीमित महत्व हो, पिता और पवित्र आत्मा के साथ यीशु में ये सब हैं। दूसरा कारण कि उसकी मृत्यु में परमेश्वर का क्रोध और श्राप पूरा हुआ, जिसे हमने अपने पापों के कारण अपने ऊपर लाया था।

लेख-5

सुसमाचार सभी को सुनाने की अनिवार्यता

सुसमाचार की यह प्रतिज्ञा है, कि जो क्रूस पर लटकाये गये यीशु पर विश्वास करेगा वह नाश नहीं होगा वरन् अनन्त जीवन पाएगा, पश्चाताप और विश्वास की आज्ञा के साथ ये वायदा बिना किसी भेदभाव के सभी देशों, जातियों को परमेश्वर की इच्छा में ये सुसमाचार सुनाना है।

लेख-6

अविश्वास के लिए मनुष्य जिम्मेदार

जिन्हे परमेश्वर का सुसमाचार सुनाया जाता है। वे सुनकर पश्चाताप और विश्वास नहीं करते, अपने अविश्वास में नाश होगें, इसलिए नही की मसीह का क्रूस पर बलिदान सक्षम नही, वरन् इसलिए कि उन्होंने विश्वास नहीं किया।

लेख-7

विश्वास परमेश्वर का दान

जो लोग सच्चाई से विश्वास करके मसीह की मृत्यु के द्वारा पाप से और नाश होने से छुड़ाए और बचाए गये है। यह परमेश्वर का अनुग्रह है। जो उन्हें मसीह में अनन्त काल से दिया गया है। यह अधिकार वह किसी को नहीं देता।

लेख-8

यीशु की मृत्यु में बचाने (उद्धार) की क्षमता

यह पूर्णता परमेश्वर की अनुग्रहकारी इच्छा और इरादा था कि पिता अपने पुत्र की मूल्यवान मृत्यु के द्वारा अपने चुने हुओं में बचाने के कार्य को प्रभावी कर सके, जिसके द्वारा उनमें विश्वास देकर उन्हें उद्धार में ला सके।

दूसरे शब्दों में यह परमेश्वर की इच्छा थी मसीह के क्रूस के लहू के द्वारा (जो नई वाचा है) हर जाति, देश, भाषा के लोगों को जिन्हें उसने अनन्तकाल से उद्वार के लिए चुना है, बचा सके। जो पिता ने पुत्र को दिये कि वह उन्हें विश्वास दे, अपने लहु से उनके सभी पापों को चाहे वो विश्वास से पहले के हो या बाद के धोकर उन्हें अन्त कर सुरक्षित रखतें हुए तेजस्वी लोग, बिना दाग के बनाकर अपने आपके लिए प्रस्तुत करे।

लेख-9

परमेश्वर की योजना का पूरा होना

संसार की उत्पत्ति से लेकर आज तक और भविष्य में भी परमेश्वर की योजना,

उसका अनन्त प्रेम, अपने चुने हुओं के प्रति प्रभावशाली रूप से पूरा हो रहा है। नरक के द्वार व्यर्थ इसके विरुद्ध में रूकावट करने की कोशिश में है। परिणाम स्वरूप चुने हुये अपने समय में इकट्ठा होते हैं। मसीह के लहू पर स्थापित की गई कलीसिया हमेशा है। कलीसिया जिसमें प्रेम है, निरन्तर आराधना है, यहाँ और अनन्तकाल में, उद्धारकर्ता की स्तुति हो जिसने अपने जीवन को कलीसिया के लिए बलिदान कर दिया, एक दुल्हे के समान अपनी दुल्हन के लिए ।

गलत शिक्षाओं को अस्वीकाना और उनका प्रतिउत्तर

I

गलत शिक्षा सिखाती है- पिता परमेश्वर अपने पुत्र की क्रूस की मृत्यु को किसी निश्चित योजना के तहत, किसी को नाम के अनुसार बचाने के लिये नहीं दी, इसलिए यीशु की मृत्यु की महत्वता, योग्यता परिपूर्ण और सिद्ध है, तो भी जबकि किसी का उद्धार वास्तविक नहीं है। पहले से ठहराया उद्धार यथार्थ सत्य नहीं है।,

ऐसा सोचना परमेश्वर पिता की बुद्धिमता और यीशु के महत्व का अपमान है और पवित्र शास्त्र का विरोध है :-उद्धारकर्ता यीशु कहते है। ''मैं अपनी भेड़ों को जानता हूँ उनके लिए अपना प्राण देता हूँ।'' यूह-10:15,27, ''यदि वह अपने आपको दोष बलि करके चढ़ाए तो वह अपना वंश देखेगा, वह बहुत दिन तक जीवित रहेगा और यहोवा की भली इच्छा उसके हाथ से पूरी होगी''-यशा -53:10''

अन्त में यह गलत शिक्षा हमारे विश्वास को कम कर के आंकती है। जो हम कलीसिया के विषय में अंगीकार करते है।

II

गलत शिक्षा सिखाती है, यीशु मसीह की मृत्यु का उद्देश्य उसके लहू के द्वारा नई वाचा स्थापित करना मैलिक सत्य नही है। वरन परमेश्वर पिता का एक बार फिर मनुष्य के साथ वाचा में प्रवेशकरना है। चाहे वह अनुग्रह से या फिर कार्यो के द्वारा

यह पवित्र शास्त्र का विराध है जो सिखाती है:-

''इसलिए यीशु एक उत्तम वाचा का जामिन ठहरा।'' इब्रा 7:22

''मनुष्य की मृत्यु के बाद ही वसीयतनामा पक्का होता है।'' इब्रा-9:17

III

गलत शिक्षा सिखाती है-यीशु ने अपने मृत्यु के द्वारा जो सन्तुष्टि दी-उसके द्वारा

किसी को उद्धार नहीं मिलता न ही विश्वास प्रभावी ढंग से उद्धार पूरा करता है। वरन इसके द्वारा पिता को अधिकार मिला, कि वह नई तरह से लोगो से सम्बन्ध बना सके और उन पर नई बातें थोप सके। मृत्यु से, न्याय की सन्तुष्टि, मनुष्य की स्वतन्त्र इच्छा पर आधारित है। ये सम्भव है कि सभी उसे पूरा करे या फिर कोई भी पूरा न करे।

वे यीशु की मृत्यु को बहुत कम करके आंकते हैं, इसके द्वारा नरक से छुटकारे और इसके फायदे को नहीं मानते।

IV

गलत शिक्षा सिखाती है-कि यीशु मसीह की मृत्यु के द्वारा परमेश्वर ने जो अनुग्रह की नई वाचा मनुष्य के साथ बनायी, उससे ऐसा नही है कि हम परमेश्वर के सामने धर्मी ठहराए जाकर विश्वास के द्वारा बचाए गये है। लेकिन परमेश्वर ने इसके द्वारा व्यवस्था के प्रति पूरी आज्ञा कारिता को हटा लिया है, और यीशु पर विश्वास और अपूर्ण अज्ञाकारिता को परिपूर्ण आज्ञाकारिता माना है, और इसे अपने अनुग्रह में अनन्तजीवन पाने योग्य ठहराया है -

ऐसी शिक्षा पवित्र शास्त्र के विरो ध में हैं। ''वे उसके अनुग्रह से ही छुटकारे के द्वारा जो मसीह यीशु में सेंत मेत धर्मी ठहराये जाते है। उसी को परमेश्वर ने उसी लहू में विश्वास के द्वारा प्रायश्चित ठहराकर खुल्लम खुल्ला प्रदर्शित किया'', रोमि-3:24-25 परमेश्वर के विरोध के साथ वे नई शिक्षा में, परमेश्वर के सामने मनुष्य के धर्मी हो जाने के विषय में गलत शिक्षा सिखाते है। जो पूरी कलीसिया के मत के खिलाफ हैं।

V

गलत शिक्षा सिखाती है-कि सभी लोग अनुग्रह की वाचा मे मेल मिलाप में स्वीकारे गये है। इसलिए मौलिक पाप के कारण कोई भी दोषी नही ठहरता और सभी मौलिक पाप के अपराध से मुक्त है।

ऐसी शिक्षा वचन से मेल नही खाती, जो सिखाती है, कि स्वभाव से हम सभी क्रोध की सन्तान हैं।

VI

गलत शिक्षा सिखाती है-अपनाने और लागू करने के विषय में परमेश्वर की इच्छा है, परमेश्वर समानता से सभी लोगों को यीशु की मृत्यु का फायदा पहुँचाना चाहता है। परन्तु, कुछ दूसरों की अपेक्षा पाप की क्षमा प्राप्त करके अनन्त जीवन पाते हैं। वह उनकी अपनी स्वतन्त्र इच्छा है। (अनुग्रह सबको समानता में दिया गया है) और

परमेश्वर की दया जो प्रभावी काम करती है, पर आधारित नहीं है। वे स्वंय अपने आप के लिए अनुग्रह पाते है। इस शिक्षा को सिखाते हुए लोगों Pelagianism का जहर देने की कोशिश करते है।

VII

गलत शिक्षा सिखाती है-यीशु मर नहीं सकता, न ही उसे मरने की आवश्यकता है, न ही ऐसे लोगों के लिए प्राण देगा जो परमेश्वर के अति प्रिय और अनन्त जीवन के लिए चुने गये है। ऐसे लोगों को यीशु की मृत्यु की जरूरत नहीं, यह शिक्षा प्रेरितों का विरोध करती हैं।

''परमेश्वर के चुने हुओं दोष कौन लगायेगा? परमेश्वर वह जो तुमको धर्मी ठहराने वाला है'' रोमि-8:33-34, ''मैं भेड़ों के लिए अपने प्राण देता '' यूह-10:15, ''मेरी आज्ञा यह है कि जैसा मैने तुमसे प्रेम रखा वैसा ही तुम भी एक दूसरे से प्रेम रखों इससे बड़ा प्रेम किसी का नहीं कि कोई अपने मित्रों के लिए अपने प्राण दे'' यहून्ना 5:12-13, ''मसीह ने मुझसे प्रेम किया और मेरे लिये अपने आप को दे दिया''-गला-2:20

●

सिद्धान्त (शिक्षा) का तीसरा और चौथा मुख्य विषय मनुष्य का पतन, परमेश्वर की ओर मुड़ना, जैसा यह दिखता है।

लेख-1

मनुष्य के स्वभाव पर पतन का प्रभाव

शुरूआत में मनुष्य परमेश्वर की समानता में बनाया गया, उसे अपने सृष्टिकर्ता और आत्मिक बातों का ज्ञान था, उसके हृदय और इच्छा में धार्मिकता थी, और उसकी भावनाओं में पवित्रता थी, मनुष्य पूरी तरह पवित्र था। लेकिन शैतान के उकसाने पर उसने अपनी स्वन्तत्र इच्छा से, अपने आपको इन सभी गुणों से गिरा/अलग कर लिया। और इनकी जगह वह अन्धकार, घोर अन्धापन, नाशत्व, बिगड़ापन, न्याय, हृदय की कठोरता जीवन में, और पूरी तरह से अपनी भावनाओं में अपवित्रता ले आया।

लेख-2

भृष्ट्रता (पाप) का फैलना

पतन के पश्चात मनुष्य ने अपने स्वभाव की सन्तान पैदा की एक पतित पुरूष पतित सन्तान लाया, परमेश्वर के न्याय से, आदम से उसके पूरे वंशज में नैतिक पतन (पाप) फैल गया, सिर्फ यीशु मसीह पाप से अलग था, इसलिए नहीं कि उसने अनुकरण नहीं किया, परन्तु उसने बदले हुए स्वभाव को आगे बढ़ाया।

लेख-3

संपूर्ण अयोग्यता

इस प्रकार सभी लोग पाप से गर्भ मे पड़ें और क्रोध की सन्तान हुए, कुछ भी भला करने की योग्यता उनमें नही थी, बुराई की तरफ झुकाव, पाप में मरे हुए, पाप के दासत्व में जकड़े थे। बिना पवित्र आत्मा के नया जीवन के अनुग्रह के, न ही उनमें इच्छा, न ही वे परमेश्वर के पास आ सकते थे, कि अपने बिगड़े स्वभाव को सुधार पाते। इस योग्य भी नही थे, कि वे अपने आपको फिर से सुधार पाते।

लेख-4

प्रकृति का प्रकाश अपर्याप्तता

मनुष्य के पतन के बाद प्रकृति का प्रकाश, मनुष्य के जीवन में जिसके द्वारा वह

परमेश्वर के बारे में, प्राकृतिक चीजों के बारे और नैतिक और अनैतिक के अन्तर के बारे में कुछ राय रखता था, और इस बात का प्रयास करता है, कि अच्छा व्यवहार रखें।

लेकिन प्रकृति का प्रकाश मनुष्य के लिये पर्याप्त नहीं था, कि वह परमेश्वर के उद्धार के ज्ञान और उसमें परिवर्तन पा सके, सत्यता तो यह है, कि उसने इसका स्वभाव और समाज के प्रति सही इस्तेमाल नहीं किया, इसके विपरीत उसने ज्योति को और बिगाड़ दिया और अधार्मिकता से इसे दबा दिया, ऐसा करने में उसने अपने आपकों परमेश्वर के सामने कोई बहाना नही दिया।

लेख-5

व्यवस्था की अपर्याप्तता

जो प्रकृति के प्रकाश के बारे में सत्य है। वही मूसा के माध्यम से परमेश्वर के द्वारा दी गई 10 आज्ञाओ के बारे में सत्य है। मनुष्य उद्धार के अनुग्रह को दस आज्ञाओं के द्वारा पा नही सकता, क्योंकि यह मनुष्य को पाप की गम्भीरता और इसके दोष के विषय मनुष्य दोषी सिद्ध करती है। लेकिन इससे बचने का कोई उपाय नहीं बताती, शरीर में कमजोर पापी को पाप के श्राप में छोड़ देती है।

लेख-6

सुसमाचार की उद्धार करने की सामर्थ

जो प्रकृति का प्रकाश और व्यवस्था नही कर सकती, परमेश्वर पवित्र अत्मा के द्वारा वचन से और मेल मिलाप की सेवा के द्वारा करते है। यही मसीह का सुसमाचार है। जिसके द्वारा उसने परमेश्वर को खुश-प्रसन्न किया, कि वह नये नियम और पुराने नियम के विश्वासियों को बचाएं।

लेख-7

सुसमाचार प्रगट करने में परमेश्वर की स्वतन्त्रता

पुराने नियम में, परमेश्वर ने अपनी इच्छा के रहस्य को सीमित लोगो पर प्रगट किया, नये नियम में (बिना किसी भेदभाव के) बहुत लोगों पर प्रगट किया। इस फर्क का कतई मतलब नहीं कि एक समय, जाति, देश के लोग दूसरे से अच्छे थे, अथवा प्रकृति के प्रकाश का बेहतर इस्तेमाल किया, परन्तु यह परमेश्वर की स्वतन्त्र भली इच्छा और प्रेम था। इसलिए जिन्होंने भरपूरी से अनुग्रह पाया है, इसके बावजूद कि इस पर उनका कोई हक नही था। उन्हें नम्रता और धन्यवाद के साथ इसे स्वीकारना है। और प्रेरितों के

साथ इसे ऊँचा उठाना है। गम्भीरता से परमेश्वर के सही न्याय को दूसरों पर जिन्होंने अनुग्रह नहीं पाया है, पर सुसमाचार प्रगट करना है।

लेख-8

सुसमाचार की गम्भीर बुलाहट

सुसमाचार के द्वारा जिन्हें बुलाया, गम्भीरता से बुलाया गया है। गम्भीर और सच्चा परमेश्वर अपने वचन में जो उसे अच्छा लगता है, बताते है, कि उसने जिन्हें बुलाया है, वे उसके पास आएंगे। गम्भीरता से उसका वायदा भी है, कि वह उन्हें आत्मा की शान्ति और अनन्त जीवन देगा, जो उसके पास आते हैं और विश्वास करते हैं।

लेख-9

सुसमाचार अस्वीकार करने के लिए मनुष्य जिम्मेदार

सुसमाचार की सेवा के द्वारा, जिन्हें बुलाया गया, परन्तु उन्होंने परिवर्तन (उद्धार) नहीं पाया इसके लिए न सुसमाचार, न मसीह जिसने सुसमाचार प्रस्तुत किया, न परमेश्वर जिसने सुसमाचार के द्वारा बुलाया और दूसरे दान भी दिये, को दोष दिया जा सकता लेकिन दोष उनका है, जो बुलाए गये पर आए नहीं ।

कुछ अपने झूठे आत्मविश्वास में जीवन के वचन पर ध्यान नहीं देते, दूसरे ध्यान देते है, परन्तु उसे हृदय से स्वीकारते नहीं, अस्थायी विश्वास के आनन्द के बाद वे वापस चले जाते है। दूसरे वचन के बीज को संसार के दुख, और जीवन के काटों से दबा देते हैं, और कोई फल नही लाते। हमारा उद्धारकर्ता बीज बोने वाले के दृष्टान्त में यही सिखाते है। Mt-13

लेख-10

परिवर्तन-परमेश्वर का कार्य

जो लोग सुसमाचार की सेवा के द्वारा, बुलाए गये आकर आत्मिक परिर्वतन में आते है। इसका श्रेय मनुष्य को नहीं जाता, यद्यपि ऐसे मनुष्य अपनी स्वतन्त्र इच्छा का इस्तेमाल करते हैं, उनके साथ जिन्हें समानता में अनुग्रह प्रदान किया गया, लेकिन इन्होंने इसे अपनाया, इसका श्रेय मनुष्य को नहीं है। (जैसा की Pelagius की गलत शिक्षा सिखाती है) आत्मिक परिवर्तन का सारा श्रेय परमेश्वर को जाता है, जिसने अनन्त काल से अपनों को मसीह में चुना, समय पर प्रभावी ढंग से बुलाया, विश्वास और पश्चाताप दिया और अन्धकार के राज्य से छुड़ाकर, उनको अपने बेटे के राज्य में लेकर आया, ताकि वे उसके अदभुद कार्यों का वर्णन कर सके, जो उन्हें अन्धकार से प्रकाश में लाया, और

अपने आप पर घमण्ड न करें वरन प्रभु में घमण्ड करे, जिसकी गवाही बार-बार पवित्र शास्त्र में प्रेरित देते है।

लेख-11

परिर्वतन में पवित्र आत्मा का कार्य

जब परमेश्वर अपनी भली इच्छा को, अपने चुने हुओं में सच्चे परिवर्तन के लिए पूरी करते है। परमेश्वर इस बात का ध्यान रखता है, सुसमाचार सिर्फ बाहर से ही उन तक नहीं पहुँचाता, वरन् पवित्र आत्मा की सामर्थ से उनके मन को प्रकाशित करता है, ताकि वे सही प्रकार से परमेश्वर की आत्मा की बातों को समझ सके, इसी पवित्र आत्मा के द्वारा मनुष्य की गहराई में पहुँचकर उनके हृदय को खोलता है नम्र करता है, और हृदय का खतना करता है, जो खतरा रहित है।

वह नये गुण उनमें भर देता है, इच्छा को जागृत कर देता है, बुराई को भली, अनिच्छा को इच्छा, आज्ञा न मानने वाले को आज्ञाकारिता की, सामर्थ से भर देता है। ताकि अच्छे वृक्ष के समान वे अच्छे कार्यो के फल पैदा कर सके।

लेख-12

पुनर्जीवन एक अलौलिक कार्य

पुनर्जीवन एक नई सृष्टि, मृत्यु सें जी उठना, वचन के अनुसार जीवित होना है, जो परमेश्वर हमारी स्वंय की मदद के बगैर हमारे जीवन में करता है। ये सिर्फ बाहरी शिक्षा और नैतिक उत्साह और ऐसे किसी माध्यम से परमेश्वर ने अपना कार्य कर दिया, और अब ये मनुष्य के हाथ में किया पुनर्जीवन और परिवर्तन अपनाए या नही ऐसा नहीं है, परन्तु यह एक अलौकिक, अद्भुद, सामर्थी और आनन्द देने वाले महान, रहस्य से भरा, जिसकी व्याख्या न की जा सके, किसी भी तरह से सामर्थ में कम नही है ऐसा वचन सिखाता है। परिणाम स्वरूप परमेश्वर जिनके जीवन में, महान कार्य करता है, निश्चित, बिना नाकाम हुआ प्रभावी नया जीवन प्राप्त कर जीवित विश्वास करते हैं। तब इच्छा नई होती है, जो न सिर्फ परमेश्वर से क्रियान्वित और उत्साहित होती, वरन् परमेश्वर के द्वारा क्रियान्वित होती है। इसीलिए मनुष्य जिसने अनुग्रह प्राप्त किया वह विश्वास और पश्चाताप करता है।

लेख-13

न समझ में आने वाला पुनर्जीवन

इस जीवन में, मनुष्य पूर्ण रूप इस कार्य को समझ नहीं सकता, लेकिन परमेश्वर के अनुग्रह द्वारा, हृदय से विश्वास करता है, और उद्धारकर्ता से प्रेम करता है। इसी को जानता और अनुभव करता है, और इसमें सन्तुष्ट होता है।

लेख-14

वो मार्ग जिससे परमेश्वर विश्वास देता है।

इसलिए विश्वास परमेश्वर का वह उपहार है, इसलिए नहीं कि परमेश्वर ने इसे दिया कि मनुष्य चुनाव करे, वरन् यह इस प्रकार उपहार है, कि यह मनुष्य सौपा गया, भर दिया और उसमें डाल दिया गया। न ही ऐसा उपहार है, कि परमेश्वर ने जो विश्वास के योग्य है उन्हें दिया, फिर स्वीकृति के लिये इंतजार किया, कि मनुष्य अपनी इच्छा से विश्वास करे। वरन् एक ऐसा उपहार जो दोनों प्रकार से इच्छा और क्रियान्वित होता है, और सभी लोगों में सभी बातों विश्वास की इच्छा, और विश्वास में विश्वास प्रदान करता है।

लेख-15

परमेश्वर के अनुग्रह का प्रति उत्तर

परमेश्वर ये अनुग्रह किसी को कर्ज के रूप में नहीं देता, परमेश्वर ये कर्ज नही देता क्योंकि मनुष्य के पास कुछ भी नहीं, जिसे वह वापस दे सके। परमेश्वर ये उन्हें देता है, जिनके पास देने के लिए कुछ नहीं, परन्तु पाप और झूठ दिया जा सकता है। इस प्रकार जो व्यक्ति इसे प्राप्त करता है, परमेश्वर को अनन्त कालीन धन्यवाद देता है। लेकिन जो इसे प्राप्त नहीं करता, इन आत्मिक बातों को नहीं समझता और अपनी पाप की स्थिति में सन्तुष्ट रहता है। और अपने आपमें मूखर्ता पूर्ण घमण्ड करता है, उसके लिए जो उसके पास नही हैं।

प्रेरितों के समान, उन लोगों से, जो अपने विश्वास का अंगीकार और अपने जीवन में सुधार लाते है, उनसे अनुग्रह में बोलते है, क्योंकि हृदय की बातें हमारे लिए अज्ञान है। परन्तु जो अभी तक बुलाए नहीं गये है, हमें परमेश्वर से प्रार्थना करनी है, जो है नहीं, उन्हें ऐसे बुलाते हैं जैसे वे हैं। किसी भी प्रकार से हमें घमण्ड नहीं करना हैं, कि हम उनसे बेहतर है यद्यपि हम अपने आपको उनसें अलग करते हैं।

लेख-16

पुर्नजीवन का प्रभाव

जैसे पतन के बाद मनुष्य, मनुष्य ही रहा, बुद्धि और इच्छा रही, पाप जो सारी मनुष्य जाति में फैल गया, जिसने मनुष्य को आत्मिक रीति से मार डाला, लेकिन मनुष्य जाति के स्वभाव को नहीं बदला, मनुष्य-मनुष्य ही रहा। इसी प्रकार पुनर्जीवन का अनुग्रह मनुष्य को पत्थर समझ कर कार्य नहीं करता, न ही इच्छा और इसके गुण और अनाज्ञाकारिता

की इच्छा को सामर्थ से समाप्त करता है। वरन् सामर्थ के साथ आत्मिक जागृति, चगाई और परिवर्तन प्रदान करता है। परिणाम स्वरूप जो आत्मा के प्रति सच्चे आज्ञाकारी होते हैं, उनमें विद्रोह, शरीर की इच्छा के स्थान पर, आत्मा नियंत्रण करता है ।

इसमें ही सच्चा आत्मिक सुधार और इच्छा की स्वतन्त्रता बनी रहती है। यदि अदभुद सुष्टि-कर्ता हमारे जीवन में कार्य न करता तो, मनुष्य अपनी इच्छा से पतन के बाद उठने की आशा नहीं कर सकता था। जिसके द्वारा उसने अपने आपको नाश में डाला, जबकि वह सांसारिक अच्छे कार्य भी करता।

लेख-17

परमेश्वर का पुर्नजीवन में साधनों का इस्तेमाल

परमेश्वर का सामर्थी, कार्य जिसके द्वारा वह हमें स्वभाविक जीवन देता और संभालता है। संसाधनों का इस्तेमाल करता है, जिससे परमेश्वर अपनी असीमित बुद्धि और भलाई के द्वारा अपनी सामर्थ प्रकट करता है। पहले बताए गये अद्भुद कार्य के द्वारा वह पुनर्जीवन देता है, जिसमें वह सुसमाचार का इस्तेमाल करता है, जिसे परमेश्वर ने अपनी महान बुद्धि के द्वारा पुनर्जीवन का बीज और आत्मा का भोजन ठहराया।

इसलिए प्रेरित और बाद के शिक्षको ने परमेश्वर के इस अनुग्रह को सिखाया, ताकि उसको महिमा दी जाए और हमारा घमण्ड दीनता में बदल जाए, लेकिन चेतावनी के साथ सुसमाचार के माध्यम को अनदेखा नहीं किया, वचन की सेवा में अनुशासन, और सस्कार को बनाये रखा। आज भी प्रश्न ही नहीं बनता कि जो शिक्षा देते है। कि परमेश्वर की परीक्षा करे, उन्हें अलग करके जिसे परमेश्वर ने अपनी भली इच्छा से एक में जोड़ा है। चेतावनी के साथ प्रचार के द्वारा परमेश्वर ने हमें अनुग्रह प्रदान किया:- जितना हम अपनी जिम्मेदारी पूरी करते हैं, उतना ज्यादा परमेश्वर के कार्य के फायदों को हम देखते हैं- संसाधन और उद्धार के फल और उनके प्रभाव सिर्फ परमेश्वर के है, सारी महिमा सदा उसी की है।

गलत शिक्षाओं का विरोध

इन शिक्षाओं को समझाने के साथ Synod गलत शिक्षाओं का विरोध करती है और अस्वीकार करती है।

I

गलत शिक्षा कि मौलिक पाप पर्याप्त नहीं है, कि वह पूरी मानव जाति पर दोष सिद्ध करे और अस्थायी और स्थायी दण्ड प्रदान करें। वे प्रेरित का विरोध करते है। जिन्होने कहा- ''इसलिए जैसा एक मनुष्य के द्वारा पाप जगत में आया और पाप के द्वारा मृत्यु आई और इसी रीति से मृत्यु सब मनुष्यों में फैल गयी इसलिए कि सबने पाप किया,'' रोमि

5:12 ''क्योकि एक अपराध के कारण न्याय आरम्भ हुआ जिसका प्रतिफल दण्ड हुआ'' रोमि-5:16, ''क्योंकि पाप की मजदूरी मृत्यु है'' रोमि-6:23

II

गलत शिक्षा सिखाती है, कि आत्मिक वरदान, अच्छी बातें और गुण जैसे कि अच्छाई, पवित्रता, धार्मिकता, मनुष्य में नहीं रखी गयी जब परमेश्वर ने उसकी सृष्टि की, इसलिए न ही वे पतन के बाद अलग हो सकती है।

ये विरोध करती है प्रेरितो का, जो परमेश्वर की समानता-धार्मिकता और पवित्रता के सन्दर्भ में सिखाते है। वह मनुष्य में अवश्य थी इफि-4:24

III

गलत शिक्षा सिखाती है, आत्मिक मृत्यु के समय मनुष्य इच्छा से, आत्मिक वरदान अलग नहीं हुए, क्योंकि इच्छा भ्रष्ट नहीं हुयी, सिर्फ दिमाग के अन्धकारमें और भावनाओं के उदण्ड में लुप्त हो गई। एक बार ये बाधाऐं अलग कर दी जाए, तो इच्छा अपनी योग्यता क्रियान्वित कर सकती हैं, तात्पर्य कि वह अपने आप अच्छा चुन सकती है या न चुने, जो उसके सामने आते है।

ये गलत विचार स्वतन्त्र इच्छा को ऊँचा उठाती है। और वचन, यिर्मयाह को झूठलाती है। और प्रेरितों को भी- ''मन तो सब वस्तुओं से अधिक धोखा देने वाला होता है'' यिर्म-17:9 ''उन्ही में हम सब भी पहिले अपने शरीर तथा मानसिक इच्छाओं को पूरा करते थे'' इफि-2:3

IV

गलत शिक्षा सिखाती है, कि पतित व्यक्ति (जिसनें पुर्नजीवन नही पाया) अपने पापों में पूर्णता मरा नहीं है, न ही आत्मिक अच्छाई से पूर्णता वंचित है। वरन इस योग्य है कि धार्मिकता का भूखा प्यासा हो सकता है, और टूटा और पश्चातापी हृदय प्रस्तुत कर सकता है जिसे परमेश्वर प्रसन्न होता है।

ये शिक्षा पवित्रशास्त्र का सीधा विरोध करती जो सिखाता है-

''तुम तो उन अपराधों और पापों के कारण मरे हुए थे-इफि-2:1, 4,5, 5, ''उनके मन के विचार में जो कुछ उत्पन्न होता सो निरन्तर बुरा ही होता है'' उत-6:5, 8:21, इसके अतिरिक्त, जो दु:खों से छुटकारे और जीवन के भूख प्यास रखते है और परमेश्वर को टूटा हृदय प्रस्तुत करते हैं वह पुनर्जीवित किये गये लोगों के गुण है, जो धन्य है। भज-51:17, मत्ती 5:6

V

गलत शिक्षा सिखाती है, कि भ्रष्ट और स्वाभाविक मनुष्य साधारण अनुग्रह का इस्तेमाल और पतन के बाद बचे हुओं गुणों के द्वारा, महान उद्धार का अनुग्रह और उद्धार, अन्तत: परमेश्वर को प्राप्त कर सकता है। परमेश्वर सभी पर यीशु मसीह प्रगट करने की इच्छा रखता है। वह सभी को समानता में पर्याप्त संसाधन, यीशु को समझने के लिए देता है। ताकि वे विश्वास और पश्चाताप कर सके।

पवित्र शास्त्र हमेशा ही इस बात की गवाही देता है कि यह गलत है।

''वह याकूब को अपना वचन और इस्रायल को अपनी विधियाँ ओर नियम बताता है किसी ओर जाति से उसने ऐसा बर्ताव नहीं किया'' भज-147:19,20, ''उसने बीते युगों मे सभी जातियों को अपने मार्गो पर चलने दिया।'' प्रे-14:16, 16:6,7,

VI

गलत शिक्षा सिखाती है, मनुष्य के सच्चे परिवर्तन (उद्धार) में नये गुण, नया स्वभाव और दान परमेश्वर के द्वारा उसकी इच्छा में न ही डाले जाते हैं, न ही भरे जा सकते है। विश्वास जिसके द्वारा हम परिवर्तित होते है, और विश्वासी नाम पाते है परमेश्वर द्वारा दिया गया दान, व गुण नहीं है। वरन् मनुष्य स्वंय का कार्य है। इसलिये इसे उपहार नहीं कहा जा सकता, सिवाए इसके कि यह विश्वास पाने की सामर्थ है।

ये विचार कि परमेश्वर हमारे हृदय में विश्वास के नये गुण और आज्ञाकारिता, प्रेम का अनुभव नहीं डालता पवित्र शास्त्र का विरोध है।

''मैं अपनी व्यवस्था उनके मनों में डालूगा और उसे उनके हृदयों पर लिखूंगा'' यिर्म-31:33 ''क्योंकि मैं प्यासी भूमि पर जल उडेलूंगा तथा सूखी भूमि पर धाराए बहाऊगां, मैं तेरे वंश पर अपना आत्मा और तेरे वंशजों पर अपनी आशीष उड़ेलूंगा''-यशा-44:3, रोमि-5:5, यिर्म-31:18

VII

गलत शिक्षा सिखाती है-अनुग्रह द्वारा हमारे परिवर्तन में परमेश्वर मधुरता से हमें समझाता (उत्साहित) करता है। इसके सिवा कुछ नहीं, परमेश्वर मनुष्य के परिवर्तन में जो कार्य करता है, वह महत्वपूर्ण और मनुष्य के स्वभाव के अनुरूप है। जो परमेश्वर के उत्साह(समझाने) से होता, कुछ भी इस अनुग्रह को रोकता नहीं, जिससे स्वभाविक मनुष्य आत्मिक हो जाता है। सत्यतता से, परमेश्वर इसमें नैतिक उत्साह के अतिरिक्त इच्छा में कुछ नहीं करता, परमेश्वर का प्रभावी कार्य, जो शैतान के ऊपर विजय पाता है, इसमें सिर्फ इतना है, कि परमश्वेर अनन्त काल के फायदे का वादा करता हैं। जबकि शैतान का वादा अस्थायी होता है।

ये शिक्षा पूर्णत (Pelagian) है और पूरे पवित्र शास्त्र का विरोध करती है। पवित्र शास्त्र सिखाता है, कि उत्साह (समझाने) के सिवा, परमेश्वर बहुत प्रभावशाली ढंग से पवित्र आत्मा के द्वारा मनुष्य के परिवर्तित होने में कार्य करता है।

''और फिर मैं तुम्हें एक नया हृदय दूँगा और तुम्हारे भीतर एक नयी आत्मा उत्पन्न करूँगा और तुम्हारी देह में से पत्थर का हृदय निकालकर तुम्हें मांस का हृदय दूँगा'' यहेजकेल-36:26

VIII

गलत शिक्षा सिखाती है, मनुष्य के पुनर्जीवन में, परमेश्वर अपनी सर्वसामर्थी शक्ति, जिससे वह सामर्थ से, बिना नाकाम हुए, मनुष्य को विश्वास और परिवर्तन प्रदान करे, इस्तेमाल नहीं करता। वरन् परमेश्वर मनुष्य के परिवर्तन के लिए सभी अनुग्रह के कार्य को पूरा कर लेता है, मनुष्य परमेश्वर की आत्मा का विरोध करता है। और अपने पुनर्जन्म को रोकता है इसलिए पुनर्जन्म हो या न हो मनुष्य की अपनी सामर्थ में होता है।

यह परमेश्वर के अनुग्रह के प्रभावी कार्य को हमारे परिवर्तन से अलग करती है। परमेश्वर के कार्य को मनुष्य का कार्य बताती है। प्रेरितों की शिक्षा का विरोध करती है : ''और उसका सामर्थ्य हम विश्वास करने वालों के प्रति कितना अहम है। ये सब उसकी शक्ति के कार्य के अनुसार है।'' इफिसियों 1:19

''.....परमेश्वर तुम्हें अपनी बुलाहट के योग्य समझे तथा भलाई की हर एक इच्छा को और विश्वास के हर एक कार्य को सामर्थ्य सहित पूरा करे'' 2 यिस्सलुनीकियों 1:11 ''उसकी इश्वरीय सामर्थ ने वह सब कुछ जो जीवन और शक्ति से सम्बन्ध रखता है हमें प्रदान किया है।'' II पत-1:3

IX

गलत शिक्षा सिखाती है, कि अनुग्रह और स्वतन्त्र इच्छा एक साथ मिलकर परिवर्तन करती है, जिसमें अनुग्रह पहला नहीं है, उसका मतलब परमेश्वर प्रभावी ढंग से मनुष्य की इच्छा का मदद नहीं करता, कि वह परिवर्तन पाये, उससे पहले मनुष्य की इच्छा स्वयं को उत्साहित करती है। प्रेरितों क वचन के अनुसार शुरूआती कलीसिया इसको गलत सिद्ध कर चुकी है।

''न तो चाहने वाले पर न दौड़ धूप करने वाले पर निर्भर है। परन्तु परमेशवर की दया पर'' रोमि-9:16, ''कौन तुझे दूसरे से उत्तम समझता है। और तेरे पास क्या है जो तुझे नही मिला'' I कुरि-4:7

''क्योंकि स्वयं परमेश्वर अपनी सुइच्छा के लिए तुम्हारी इच्छा और कार्यों को प्रोत्साहित करने के लिए तुम में सक्रिय है।'' फिल-2:13

●

सिद्धान्त (शिक्षा) का पाँचवा मुख्य विषय
संतो की दृढ़ता/धैर्य

लेख-1
नया जन्म पूर्णता पाप से मुक्त नहीं होता

परमेश्वर, जिन्हें अपने उद्देश्य के लिए अपने पुत्र यीशु मसीह की संगति में बुलाता है, पवित्र आत्मा के द्वारा उन्हें पुनर्जीवन देता है, और उन्हें पाप के दासत्व से मुक्त करता है। यद्यपि इस जीवन में शरीर और पाप से वे पूर्णता मुक्त नहीं होते हैं।

लेख-2
कमजोरी के पापों के प्रति विश्वासी का रवैया

रोजाना कमजोरी के पाप परमेश्वर के भले लोगों को कंलकित करते है। जिससे वे अपने आपको परमेश्वर के सामने दीन करे, और सहारे के लिये क्रूस पर चढ़ाए यीशु के पास आये, सामर्थ देने वाली आत्मा और भले कार्य के द्वारा पाप/शरीर के पापों को नाश करते हुए, सिद्धता की ओर बढ़े, जब तक वे शरीर की मृत्यु से छुटकारा पाकर परमेश्वर के मेम्ने के साथ स्वर्ग मे राज्य न करे।

लेख-3
विश्वासियों को परमेश्वर दृढ़ता प्रदान करता है

संसार और शैतान की परीक्षा के कारण विश्वासियों में बचे पाप बने रहते है। जो परिवर्तित हो चुके है, अपनी सामर्थ से अनुग्रह में बने नहीं रह सकते, परन्तु परमेश्वर, विश्वासयोग्यता, दया से उन्हें, अनुग्रह में सामर्थ प्रदान करता है। और प्रभावी ढंग के साथ अन्त तक सुरक्षित रखता है।

लेख-4
विश्वासियों का गम्भीर पाप में पड़ने का खतरा

यद्यपि परमेश्वर की सामर्थ विश्वासियों को सामर्थ देते हुए, दृढ़ता से अनुग्रह मे बनाए रखती है। फिर भी जो परिवर्तित/उद्धार पाये है, हम परमेश्वर के द्वारा क्रियान्वित और उत्साहित नहीं होते, फिर कुछ विशेष कार्यों में अपनी गलती से परमेश्वर के अनुग्रह से अलग नहीं होते, तब भी अपनी शरीर की लालसा से उसमें फंस जाते है। इसलिए उन्हें हमेशा सावधान रहते हुए प्रार्थना करनी है, कि वे परीक्षा में न पड़ें, यदि वे ऐसा नहीं करते तो शरीर, संसार और शैतान के हाथों में पड़कर गम्भीर पापों में फसं सकते है। और परमेश्वर की इच्छा से कभी-कभी अलग हो सकते है। ऐसे उदाहरण दाऊद और पतरस के, पवित्र शास्त्र में पाये जाते है।

लेख-5

ऐसे गम्भीर पापों का प्रभाव

ऐसे राक्षसी पापों के द्वारा वे परमेश्वर की गहरा दु:ख पहुचाते ही मृत्यु के हकदार होते है, पवित्र आत्मा को आत्मा को शोकित करते है। विश्वास को त्यागते, मानसिकता को जख्मी करते है। और कभी तो अनुग्रह को ही भुला देते है। परन्तु जब सच्चे पश्चाताप के द्वारा वापस मुडते है। परमेश्वर पिता अपना तेज उन पर चमकाते है।

लेख-6

परमेश्वर का बचाने वाला दखल

परमेश्वर जो दया का धनी है, अपने कभी न बदलने वाले उद्देश्य और चुनाव के कारण अपनों से पूर्णता पवित्र आत्मा अलग नहीं करता, जबकि वे पाप में पतित होते है। और परमेश्वर उन्हें इतना भी गिरने नहीं देता, कि वे गोद लेने और धर्मी ठहराए जाने वाले अनुग्रह को नाश करके ऐसा पाप करे जो (पाप पवित्र आत्मा कें खिलाफ) मृत्यु ले आए और पूर्णता परमेश्वर के हाथों से निकलकर अनन्तकाल के लिए नाश हो जाए।

लेख-7

पश्चाताप का नवीनीकरण

पहले स्थान पर परमेश्वर ऐसे सन्तों को बचाता है, जब वे उसके नाश न होने वालो बीज, अनुग्रह जिससे उनका पुनर्जन्म हुआ है, से गिरते है।

दूसरा-परमेश्वर अपनी आत्मा और वचन के द्वारा प्रभावी ढंग से उन्हें पश्चाताप कराता है। ताकि वे हृदय से जो पाप उन्होंने किया है, उसके लिए दु:खी हो और विश्वास और पश्चातापी हृदय से, बिचइए (यीशु) के लहू के द्वारा क्षमा प्राप्त करें, मेल कराने वाले परमेश्वर के अनुग्रह को अनुभव करे, विश्वास से उसकी दया की महिमा करे, और आगे से डरते और काँपते हुए, अपने उद्धार के कार्यों को पूरा करे।

लेख-8

सुरक्षा/बचाने की निश्चयता

अपनी विशेषता और सामर्थ से नही, परन्तु परमेश्वर की दया से, वे ने तो विश्वास और अनुग्रह से वचिंत होते हैं, न ही अपने पापों में बने रहकर नाश होते है। मनुष्य के अनुसार सिर्फ यह आसानी से नहीं होगा वरन बिना सन्देह के ऐसा ही होगा। परन्तु परमेश्वर के अनुसार किसी भी सम्भवता से ऐसा नही हो सकता, उसकी योजना बदल नहीं सकती, उसके वायदे नाकाम नहीं हो सकते, उसकी भली इच्छा से बुलाया जाना बदल नहीं सकता, यीशु की विशेषता उसका हमारे लिए प्रार्थना करना और सुरक्षित रखना, बेअसर नहीं हो सकता, और पवित्र आत्मा की मोहर अस्वीकृत और मिटाई नहीं जा सकती।

लेख-9

सुरक्षित रहने का आश्वासन

जिन्हें उद्धार के लिए चुना गया और सच्चे विश्वासियों को सुरक्षित रखने के बारे में विश्वासी अपने आप इस आश्वासन को अपने विश्वास के स्तर के अनुसार आश्वस्त हो सकते हैं। जिसके द्वारा वे विश्वास करते हैं, कि वह हमेशा कलीसिया के सच्चे और जीवित सदस्य है। और उनके पास पापों की क्षमा और अनन्त जीवन है।

लेख-10

आश्वासन का आधार

यह आश्वासन वचन से बाहर, किसी व्यक्तिगत प्रकाशन से नहीं मिलता, वरन् परमेश्वर के वायदों पर विश्वास से, जिसे परमेश्वर ने हमारी तसल्ली के लिए अपने वचन में बहुतायत से प्रगट किया है, ''पवित्र आत्मा स्वयं हमारी आत्मा के साथ मिल कर साक्षी देती है कि हम परमेश्वर की संतान और उत्तराधिकारी हैं।'' रोमि-8:16,17 और चेतना की गंभीर और पवित्र खोज, और अच्छे कार्यों से यह आश्वासन प्राप्त होता है, यदि परमेश्वर के चुने हुए इस संसार में इस बात से आश्वस्त नहीं होते हैं, कि विजय उनकी है, और वे अनन्त महिमा के भागीदार हैं तो वे सबसे दु:खी लोग होंगे।

लेख-11

इस आश्वासन के प्रति सन्देह

यद्यपि पवित्र शास्त्र सिखाता है, परीक्षा और शरीर की इच्छाओं के सन्देह के समय विश्वासियों को सन्तुष्ट और आश्वस्त रहना है, परन्तु वे विश्वास के आश्वासन और धैर्य की सत्यता का पूर्णता अनुभव नही कर पातें। परन्तु हर सहारे का परमेश्वर कहता है- ''तुम किसी ऐसी परीक्षा में नहीं पड़े जो मनुष्य के सहने से बाहर है..... परन्तु परीक्षा के साथ बचने का उपाय भी करेगा।'' Cor-10:13 और पवित्र अत्मा के द्वारा उनका आश्वासन पुनर्जाग्रत करता है।

लेख-12

आश्वासन, सदाचारिता का प्रेरक है

परमेश्वर की दृढ़ता का आश्वासन, सच्चे विश्वासी में, घमण्ड और आत्म आश्वस्त नहीं देता, वरन् दीनता, सन्तान के समान आदर का भाव, सच्ची सदाचारिता, कठिन परिस्थिति में धैर्य, प्रार्थना, हमेशा क्रूस उठाने और सच्चाई का अंगीकार करने और परमेश्वर

पर आधारित आनन्द का सच्चा आधार है, इन बातों पर मनन करना, गम्भीर और लगातार धन्यवादी बने रहने और अच्छे कार्य करने में प्रेरणादायक है, जैसा पवित्र शास्त्र में संतों के उदाहरण से सीखते है।

लेख-13

आश्वासन असावधानी को प्रेरित नहीं करता

परमेश्वर द्वारा नया किया गया दृढता का आत्मविश्वास, किसी भी तरह अनैतिकता और सदाचारिता से मुहँ मोड़ना नहीं सिखाता है, उन्हें जो पतन के बाद वापस अपने पैरो पर खड़े हुए है। वरन् ये सिखाते है, गम्भीरता से परमेश्वर के मार्गो पर चले, जो उसने पहले से हमारे लिए तैयार किये है। इस मार्ग पर चलने के द्वारा परमेश्वर के दृढता प्रदान करने वालें आश्वासन में बने रहे। परमेश्वर की ओर सदाचार से देखना, जीवन से उत्तम है, लेकिन इससे मुंह मोड़ना मृत्यु से कड़वा है। ऐसा न हो कि परमेश्वर की भलाई को गाली (घूर) देकर, कही परमेश्वर अपना मुँह उनसे फेर ले, क्योंकि वे फिर पवित्रआत्मा को शोकित करके पाप में गिर जाते है।

लेख-14

परमेश्वर का दृढता/धैर्य प्रदान करने में, संसाधनों का इस्तेमाल

परमेश्वर को ये अच्छा लगता है, कि सुसमाचार प्रचार के द्वारा, सुसमाचार के सुनने और पढ़ने और इस पर मनन करने वचन को प्राथमिकता, इसकी चेतावनी और वायदे और संस्कार पूरा करने, लेने के द्वारा परमेश्वर अपने अनुग्रह के कार्य को पूरा करता है।

लेख-15

परमेश्वर की दृढ़ता प्रदान करने की शिक्षा के प्रति विभिन्न विरोधाभास वाले प्रति उत्तर

सच्चे विश्वासी की दृढ़ता और इसके आश्वासन की शिक्षा, ऐसी शिक्षा है, जिसे परमेश्वर ने अपनी महिमा और अपने लोगो की सात्वना के लिए पवित्र शास्त्र में प्रगट किया है। जिसे वह विश्वासियों के हृदय में स्थापित करता है, जिसे शरीर नहीं समझ सकता, शैतान नफरत करता है, और संसार गलत मानता है यह गलत शिक्षा का आक्रमण है और अज्ञानता और दिखावा है।

परन्तु यीशु की दुल्हन, कलीसिया इस शिक्षा से प्रेम करती है, और इसका रक्षा करती है, यह एक बहूमूल्य खजाने के समान है। और परमेश्वर, जिसके विरोध में कोई योजना कार्य नहीं कर सकती, न कोई शक्ति ठहर सकती है। परमेश्वर इस बात को पक्का करते हैं कि कलीसिया इसमें निरन्तर बनी रहे। सारा आदर सारी महिमा पिता, पुत्र और पवित्र आत्मा को मिले।

गलत शिक्षा का विरोध

संतों की दृढता की शिक्षा के साथ Synod गलत शिक्षा को अस्वीकार करती है।

I

गलत शिक्षा सिखाती है। कि विश्वासीयों की दृढता, चुनाव व उपहार में नहीं जो यीशु मसीह की मृत्यु के द्वारा मिलता है। परन्तु नई वाचा की शर्त है। जिस लोग पहले कहते थे, अनिवार्य चुनाव और बचाव/न्याय मनुष्य की स्वतन्त्रत इच्छा द्वारा पूरे होते है।

परमेश्वर का वचन सिखाता है चुनाव के बाद दृढता मिलती है जो यीशु मसीह की मृत्यु, जी उठने और प्रार्थना के द्वारा हमें परमेश्वर प्रदान करता है ''जो चुने हुए थे, और शेष कठोर कर दिये गये''-रोमि-11:7,

''वह जिसने अपने पुत्र को भी नही रख छोड़ा परन्तु उसे हम सब के लिए दे दिया तो वह उसके साथ हमें सब कुछ उदारता से क्यों न देगा, परमेश्वर के चुने हुओं पर कौन दोष लगाएगा। परमेश्वर ही है जो धर्मी ठहराता है वह कौन है जो दोष लगाएगा? मसीह यीशु ही है जो मरा हा वरन वह मृतकों में से जिलाया गया जो परमेश्वर के दाहिनी ओर है और हमारे लिए निवेदन भी करता है कौन हम को मसीह के प्रेम से अलग करेगाा? क्या क्लेश, या संकट, या सताव या अंकाल या नंगाई, या जोखिम या तलवार?'' रोमि-8:32-35

II

गलत शिक्षा सिखाती है, परमेश्वर विश्वासियों को दृढ़ता के लिए पर्याप्त सामर्थ देता है और इस सामर्थ को उनमे सुरक्षित रखता है। वे सभी बातें और माध्यम जो अनिवार्य है, जो विश्वास को दृढ़ता प्रदान करते हैं, परमेश्वर खुशी से विश्वास सुरक्षित रखने के लिए इस्तेमाल करता है, परन्तु तब यह मनुष्य की इच्छा पर निर्भर करता है कि वह दृढ़ता प्राप्त करे या न करें।

यह शिक्षा Pelagian की है, यद्यपि यह मनुष्य को आज़ाद करती है, लेकिन यह उनके सम्मान, धर्म का दुरूपयोग हैं। यह सुसमाचार कि शिक्षा के विरूद्ध में है। सुसमाचार विश्वासियों के घमण्ड को दूर करके सारी महिमा परमेश्वर के अनुग्रह को प्रदान करता है। यह प्रेरितों के शिक्षा का भी विरोध है ''जो तुम्हें अन्त तक दृढ़ भी करेगा कि हमारे प्रभु यीशु मसीह के दिन में निर्दोष ठहरो'' I कुरि-1:8

III

गलत शिक्षा जो सिखाती है, जिन्होंने सच्चाई से विश्वास किया है और नया जन्म

प्राप्त किया है, सिर्फ धर्मी ठहराहे जाने वाले विश्वास, अनुग्रह और उद्धार खोते ही नहीं वरन् सत्यता यह है, कि कई बार इसे खोकर अनन्तकाल के विनाश में चले जाते है। यह शिक्षा पवित्र शास्त्र की शिक्षा, धार्मिकता और नया जीवन देने वाला अनुग्रह और मसीह की निरन्तर सुरक्षा का विरोध करती है। और यीशु के वचनों का भी विरोध करती है। रोमि-5:8, I यूह-3:9, यूह-10:28-29

IV

गलत शिक्षा सिखाती है, जिन्होंने सच्चा विश्वास किया और नया जन्म प्राप्त किया है। पवित्र आत्मा के विरोध में पाप कर सकते हैं, जो पाप मृत्यु ले आता है। इसी विषय के लिए प्रेरित यूहन्ना कहते जो ऐसा पाप करते हैं, जो मृत्यु ले आता उनके लिए कोई प्रार्थना नहीं है। यूह 5:16:17, उसके तुरन्त बाद कहते है। 5:18 में ''हम जानते हैं कि जो कोई परमेश्वर से उत्पन्न हुआ है, वह पाप नहीं करता, परन्तु वह जो परमेश्वर से उत्पन्न हुआ उसकी रक्षा करता है और वह दुष्ट उसे छूने नहीं पाता''

V

गलत शिक्षा सिखाती है बिना विशेष प्रकाशन के कोई भी इस जीवन में भविष्य की सुरक्षा की दृढता नहीं पा सकता। इस शिक्षा के द्वारा इस जीवन में सच्चे विश्वासियों से उनकी शान्ति छीन ली जाती है और Romanisists की सन्देह वाली शिक्षा फिर से कलीसिया में स्थान पाती है। पवित्र शास्त्र में बहुत जगह यह शिक्षा साफ है, कि आश्वासन विशेष और अप्रकृतिक प्रकाशन से नहीं वरन परमेशवर की विशेष चिन्ह जो परमेश्वर की सन्तान में होते है और परमेश्वर के विश्वास योग्य वायदे से है। प्रेरित पौलुस इस बारे में लिखते है, ''न कोई सजी हुयी वस्तु हमें परमेश्वर के प्रेम से जो हमारे प्रभु यीशु मसीह में अलग कर सकेंगी।'' रोमि-8:39

''जो उसकी आज्ञाओं का पालन करता है वह परमेश्वर मे बना रहता है और वह उसमे और इसी से अर्थात उस आत्मा से जिसे उसने हमे दिया है हम जानते है कि वह हममें बना रहता है'' I यहून्ना-3:24

VI

गलत शिक्षा सिखाती है, कि सुरक्षा, दृढ़ता और उद्धार की शिक्षा अपने स्वभाव और गुणों में शरीर (Flesh) में एक निदांजनक (नशा) है। और सदाचारिता, अच्छी नैतिकता, प्रार्थना और पवित्र कार्यो के लिए नुकसानदायक है। इसलिए इस पर सन्देह करना सही है।

ऐसे लोग परमेश्वर के अनुग्रह के प्रभावी कार्य और जीवन में कार्यरत पवित्र आत्मा के कार्यो से अनजान है। और प्रेरित यहून्ना की शिक्षा पवित्र शास्त्र में झूठलाते (विरोध करते) हैं।

''प्रियो हम परमेश्वर की सन्तान हैं और अब तक यह प्रकट नहीं हुआ कि हम क्या होंगे पर हम यह जानते हैं कि जब वह प्रकट होगा तो हम उसके सदृश्य होंगे क्योंकि हम उसकों ठीक वैसा ही देखगें जैसा वह है। प्रत्येक जो उस पर ऐसी आशा रखता है वह अपने आपको वैसा ही पवित्र करता है जैसा कि वह पवित्र है।'' I यूहन्ना 3:23

यहाँ तक कि वे पुराने और नये नियम मे संतो के उदाहरण को अस्वीकारते है, जिन्होने सुरक्षा की दृढ़ता और उद्धार पर विश्वास करते हुए भी निरन्तर प्रार्थना और सदचारिता का जीवन बिताया।

VII

गलत शिक्षा सिखाती है जो लोग थोडे समय के लिए विश्वास करते है उनका विश्वास उद्धार और धर्म ठहराये जाने वाले विश्वास से अलग नहीं है, सिर्फ इनमें समय का फर्क है। यीशु मसीह स्वयं Mt-13:20 और लूका 8:13 में इस अन्तर को साफ समझातें है। थोडे समय के विश्वासी और सच्चे विश्वासी में, पहला, बीज को पथरीली भूमि पर स्वीकारता है, सच्चा विश्वासी अच्छी भूमि पर, पहले में जड़ नहीं फूटती दूसरा अच्छी जड़ पाता है पहला कोई फल नही लाता दूसरा लगातार, धैर्य से कई अनुपात में फल ले आता है।

VIII

गलत शिक्षा सिखाती है, कि ऐसा हो सकता है, एक व्यक्ति अपने पहले जीवन को खोकर, एक बार फिर से (कई बार ऐसा होता) पुनर्जन्म प्राप्त करें।

यह शिक्षा परमेश्वर के नाश न होने वाले बीज के स्वभाव जिससे हमारा पुनर्जन्म हुआ है, नकारती है।

यह प्रेरित पतरस की गवाही के विरोध में है :

''क्योंकि तुमने नाशवान नही, वरन् अविनाशी बीज से अर्थात परमेश्वर के जीवित तथा अटल वचन द्वारा नया जन्म प्राप्त किया है। I पत-1:23

IX

गलत शिक्षा सिखाती है कि यीशु मसीह ने विश्वासीयों की समाप्त न होने वाली सुरक्षा की दृढता के लिए कहीं भी प्रार्थना नहीं की, वे यीशु मसीह का विरोध करते है जिसने कहा ''परन्तु मैं ने तेरे लिए प्रार्थना की है कि तेरा विश्वास चला न जाए''-लूका-22:32 और यूहन्ना के सुसमाचार में यूहन्ना कहते है Jn-17, यीशु ने सिर्फ प्रेरितों के लिए ही नहीं, वरन् जो उनके संदेश के द्वारा विश्वास करेंगे, के लिये भी प्रार्थना की।

''हे पवित्र पिता अपने उस नाम से जो तूने मुझे दिया इनकी रक्षा कर'' V

11, मैं ''तुझसे यह विनती नही करता कि तू उन्हें संसार में से उठा ले परन्तु यह कि तू उन्हें उस दुष्ट से बचाए रख'' यहून्ना-17:11, 15

निष्कर्ष

झूठे आरोप का खण्डन

उन पाँच लेखों जिन पर नीदरलैण्ड में मतभेद है यह उन विषयों में सीधी, सरलता से समझ आनेवाली शिक्षा की व्याख्या है। साथ ही उन गलत शिक्षाओं का खण्डन है, जिन्होंने कुछ समय के लिए (डच) कलीसिया में गड़बड़ी पैदा की।

Synod-इस व्याख्या और खण्डन को परमेश्वर के वचन से सही बताते हुए, संशोधित (Reformed) परिवर्तित कलीसियाओं के अंगीकार से सहमत है।

इसलिये यह साफ है, जो इसे नहीं स्वीकारते अथवा नकारते है। लोगो के सामने इसे मानने के लिए कोई सच्चाई, निष्पक्षता और इसके प्रति लगाव स्नेह नही दिखाते:- वो मानते है:- परिवर्तित कलीसियों की पहले से ठहराये जाने और इससे सम्बन्धित शिक्षा- अपने स्वभाव और प्रकार में लोगों के दिमाग, विचार को सदाचारिता और धर्म से अलग करती है। यह शरीर पाप और शैतान की नशे की दवा है और शैतान का मजबूत गढ़ है जहाँ वह लोगों का इन्तजार करता है, बहुतों को जखमी, और निराश और आत्म आश्वासन के तीरों से छलनी करता है।

यह शिक्षा परमेश्वर को पाप का कर्ता, अन्यायी क्रूर शासक, पाखण्डी और refurbished stoiusm, Manichcism, libertinism, और Mohammedanism, बनाती है उदासीन, अस्थिरता रखनेवाला, कटटरपंथी और मर्जी पर चलनेवाला बनाती है।

Predestination यह शिक्षा लोगो का सांसारिक, आत्मआश्वस्त बनाती है, क्योंकि यह उद्धार के प्रति आश्वस्त करती, इसलिए वे गम्भीर, बुरे घृणित पाप कर सकते है।

दूसरी तरफ उद्धार के लिए कोई भी पाप बीच में नहीं आता और न ही काई अच्छे कार्य चाहे वे पवित्रता के सभी कार्यों को पूर्ण सच्चाई से करे।

इस शिक्षा का अर्थ हैं, कि परमेश्वर न अपनी इच्छा से नाम मात्र और अयोग्य पसन्द के द्वारा पहले से ठहराया और बनाया, बिना पाप को ध्यान में रखे संसार के बड़े हिस्से (बहुत लोगो) को अनन्तकाल के लिए दोषी सिद्ध किया, जैसे कि चुनाव विश्वास का कारण और अच्छे काम का श्रोत है। वैसे ही परमेश्वर का अस्वीकरण अविश्वास और दुराचारिता का कारण है। विश्वासियों के छोटे बच्चे अपनी पवितत्रता में माँ के दूध से

अलग कर, क्रूरता से नरक में डाले गये, कि न तो यीशु और न ही उनका बपतिस्मा, न बपतिस्में के समय कलीसीया की प्रार्थना उनके कुछ काम आती है।

और इस प्रकार के दूसरे कलकिंत करने वाले दोषों की गलत शिक्षाओं को, नयी की गयी कलीसिया अस्वीकार करती है, वरन पूरे हृदय से उनका इन्कार आलोचना करती है। इसलिए Dort के Synod-यीशु मसीह के नाम में, उन सभी से जो समर्पण के साथ हमारे उद्धारकर्ता यीशु मसीह का नाम लेती है। कि नयी की गई कलीसिया के विश्वास का निणर्य, गलत दोष (शिक्षा) जो यहाँ-वहाँ से ली गई है, न ही पुराने और नये लोगों के व्यकितग कथन जो ज्यादातर संदर्भ से अलग और गलतरीती से बदल कर गलत अर्थ से प्रस्तुत किये गये है, के आधार पर करे। परन्तु इसका निर्णय-कलीसियाओं की आधारित, अंगीकरण और परम्परागत शिक्षा की वर्तमान व्याख्या जो पूरे Synod के सभी लोगों की आम सहमति से लागू की गई है, के आधार पर करे।

Synod सच्चाई/गम्भीरता से गलत शिक्षकों को चेतावनी देता है, कि वे जो गलत (गवाही) शिक्षा बहुत सी कलीसियों और उनके विश्वास के अंगीकार के विरोध में देकर कमज़ोर की मानसिकता परेशान करता है, और सच्ची कलीसिया के विरोध में बहुतों के हृदय (दिमाग) को पूर्वाग्रह से ग्रसित करता, परमेश्वर का न्याय निर्णय उनकी इन्तजार देखता है।

अब ये Synod अपने साथी, मसीह के सुसमाचार के सेवको से निवेदन करता है, कि इस शिक्षा को, परमेश्वर के भय और आदर के साथ शैक्षिक संस्थानों और लिखित में लागू करे, परमेश्वर के नाम की महिमा, पवित्रता के जीवन और चिन्तित आत्माओं के आराम, शान्ति के लिए, और विश्वास के अनुरूप, पवित्र शास्त्र के अनुसार सोचें और बात करें। और ऐसी बातों/शिक्षा से अलग रहे जो पवित्रशास्त्र की सच्चाई से हटकर अनुचित ढंग से झूठ गढ़कर इस बात की कोशिश करती है, कि नवीन कलीसियाओं की शिक्षाओं को दूर कर दे और गलत दोष/शिक्षा इसके विरोध में लाए/लगाए।

परमेश्वर का पुत्र यीशु मसीह जो परमेश्वर के दाहिने बैठता है और मनुष्य को वरदान देता है। हमें सच्चाई से पवित्र करे, जो गलती करते है, उन्हें सच्चाई से अवगत कराये। उनके मुंह बन्द करे जो, सच्ची शिक्षाओं पर गलत दोष मढ़ते हैं। और विश्वास योग्य सेवकों को वचन और समझ और पहचान की आत्मा प्रदान करें। और जो सब वे कहे उससे परमेश्वर की महिमा हो और सुननेवाले तरक्की/उन्नति करें।

Heldelberg Catechism, Belgic Confession और Canons of Dort की समानता

यह अंगीकार की समानता Heidelberg Catechism की सारणी पर, इस उद्देश्य से आधारित है, कि सिद्धान्तों से सम्बन्धित कथन, अन्य अंगीकारों में आसानी से ढूंढे जा सके, तथापि सावधानी बरतनी है क्योंकि हर एक अंगीकार का विशेष कार्य है, क्योंकि यह कलीसियाओं की विभिन्न समयों की विभिन्न जरुरतों के अनुसार तैयार किये गये हैं। हर एक अंगीकार की आत्मनिर्भरता और सच्चाई को सुरक्षित रखते हुए अंगीकारों की समानता का इस्तेमाल किया जाना चाहिए।

Heidelberg Catechism		Belgic Confession	Canons of Dort
(Lord's Day)	(Question & Answer)	(Article)	(RE = Rejection of Errors)
I	I	–	I, 12–14; RE I, 6, 7; III/IV, 11; V, 8–12; RE V, 5
	2	–	I, I–4
II	3	–	III/IV, 5, 6
	4	–	–
	5	14, 15	III/IV, 3–6; V, 2, 3
III	6	14	III/IV, 1
	7	14, 15	I, 1; III/IV, 1–4
	8	14, 15, 24	III/IV, 3, 4
IV	9	14, 15, 16	I, 1; III/IV, 1
	10	15, 37	I, 4; II, 1; III/IV, 1
	11	16, 17, 20	I, 1–4; II, 1, 2
V	12	20	II, 1
	13	14	II, 2; III/IV, 1–4
	14	–	–
	15	19	II, 1–4
VI	16	18, 19, 20, 21	II, 1–4
	17	19	II, 1–4
	18	10, 18, 19, 20, 21	II, 1–4
	19	2, 3, 4, 5, 6, 7	I, 3; II, 5; III/IV, 6–8
VII	20	22	I, 1–5; II, 5–7; III/IV, 6
	21	23, 24	III/IV, 9–14; RE III/IV, 6
	22	7	I, 3; II, 5; III/IV, 6–8
	23	9	–
VIII	24	8, 9	–
	25	8, 9	–
IX	26	12, 13	–
X	27	13	–
	28	12, 13	–
XI	29	21, 22	II, 3
	30	21, 22, 24	II, 5, RE II, 3–6
XII	31	21, 26	–
	32	–	V, 1, 2
XIII	33	10, 18, 19	–
	34	–	–
XIV	35	18, 19, 26	–
	36	18, 19	–
XV	37	20, 21	II, 2–4
	38	21	–
	39	20, 21	II, 2–4
XVI	40	20, 21	II, 3, 4; RE II, 7
	41	–	–
	42	–	–
	43	–	II, 8
	44	21	II, 4
XVII	45	20	RE, V, 1
XVIII	46	26	–
	47	19, 26	–
	48	19, 26	–
	49	26	–
XIX	50	26	–
	51	–	V, 1–15
	52	37	–
XX	53	11, 24	III/IV, 11, 12 RE III/IV, 5–8; V, 6, 7
XXI	54	16, 27, 28, 29	I, 1–18; II, 1–9; V, 9
	55	28, 30, 31	–
	56	22, 23	II, 7, 8; V, 5

XXII	57	37	–
	58	37	–
XXIII	59	21, 22, 23	II, 7, 8
	60	21, 22, 23	II, 7, 8
	61	21, 22, 23	II, 7, 8; RE, II, 4
XXIV	62	23	II, I; III/IV, 3–6; RE III/IV, 4, 5
	63	24	–
	64	24	III/IV, II; V, 12, 13; RE V, 6
XXV	65	24, 33	III/IV, 17; RE III/IV, 7–9; V, 14
	66	33	–
	67	33	–
	68	33	–
XXVI	69	15, 34	–
	70	15, 34	–
	71	15, 34	–
XXVII	72	34	–
	73	34	–
	74	15, 34	1, 17
XXVIII	75	35	–
	76	35	–
	77	–	–
XXIX	78	35	–
	79	35	–
XXX	80	35	–
	81	35	–
	82	35	–
XXXI	83	29, 30, 32	–
	84	29, 32	–
	85	29, 32	–
XXXII	86	24	III/IV, 11, 12; V, 10, 12
	87	24	–
XXXIII	88	24	III/IV, 11, 12; V, 5, 7
	89	24	III/IV, 11, 12; V, 5, 7
	90	24	III/IV, 11, 12; V, 5, 7
	81	24, 25	–
XXXIV	92	–	–
	93	–	–

	94	1	–
	95	1	–
XXXV	96	32	–
	97	–	–
	98	7	III/IV, 17; V, 14
XXXVI	99	–	–
	100	–	–
XXXVII	101	36	–
	102	–	–
XXXVIII	103	–	V, 14
XXXIX	104	36	–
XL	105	36	–
	106	–	–
	107	–	–
XLI	108	–	–
	109	–	–
XLII	110	–	–
	111	–	–
XLIII	112	–	–
XLIV	113	–	–
	114	24, 29	V, 4
	115	25	III/IV, 17
XLV	116	–	–
	117	–	–
	118	–	–
	119	–	–
XLVI	120	12, 13, 36	–
	121	13	–
XLVII	122	2, 7	–
XLVIII	123	36, 37	–
XLIV	124	12, 24	III/IV, 11, 16
L	125	13	–
LI	126	15, 21, 22, 23	II, 7
LI	126	15, 21, 22, 23	II, 7
LII	127	26	V, 6, 8
	128	26	–
	129	–	–

Blank

THE WESTMINSTER STANDARDS

विश्वास का अंगीकार (**The Westminister Confession of faith**)

विस्तृत प्रश्नावली (**The Larger Catechism**)

संक्षिप्त प्रश्नावली (**The Shorter Catechism**)

Blank

विश्वास का अंगीकार

अध्याय-1

पवित्र शास्त्र

1. यद्यपि प्रकृति का प्रकाश(ज्ञान), सृष्टि और परमेश्वर की इस पर कृपा दृष्टि, परमेश्वर की भलाई, बुद्धि और सामर्थ को प्रगट करती है। ताकि मनुष्य के पास कोई बहाना न हो फिर भी ये सब परमेश्वर के पूर्ण ज्ञान, उसकी इच्छा, जो उद्धार के लिए ज़रूरी है। पर्याप्त नहीं है। इसलिए परमेश्वर का उचित भला लगा, कि अलग-अलग समय पर अलग-अलग तरीके से अपने आप को प्रगट करें और अपनी इच्छा अपनी कलीसिया पर प्रगट करे, और बाद में बेहतर प्रकारों से, सच्चाई को सुरक्षित रखते हुए इसका प्रचार प्रसार करें, और चर्च को शरीर/पाप की भ्रष्टता पर, स्थापित और शैतान और संसार की दुर्भावना पर कलीसिया को सहारा प्रदान करे। और इसे वचन में लिखें जो पवित्र शास्त्र को अत्यन्त महत्वपूर्ण बनाता है। इस प्रकार से परमेश्वर की अपनी इच्छा को प्रगट करने का तरीका उसके लोगो के लिए अब समाप्त हो गया है।
2. पवित्र शास्त्र अथवा लिखा हुआ परमेश्वर का वचन अब पवित्र शास्त्र के पुराने और नये नियम में पाया जाता है। जो अग्रलिखित है।

पुराना नियम

उत्पत्ति	II इतिहास	दानिय्येल
निगर्मन	एज्रा	होशे
लैव्यव्यवस्था	नहेम्याह	योएल
गिनती	एस्तेर	आमोस
व्यवस्थाविवरण	अय्यूब	ओबद्याह
यहोशु	भजन संहिता	योना
न्यायायिओ	नीतिवचन	मीका
रूत	समोपदेशक	नहूम
I शमूएल	श्रेष्ठगीत	हबक्कूक
II शमूएल	यशायाह	सपन्याह
I राजा	यिर्मयाह	हाग्गै
II राजा	विलापगीत	जकर्याह
I इतिहास	यहेजकेल	मलाकी

नया नियम

मत्ती	इफिसियों	इब्रानियों
मरकुस	फिलिप्पियों	याकूब
लूका	कुलिस्सियों	I पतरस
यूहन्ना	I थिस्सलुनीकियों	II पतरस
प्रेरितों के काम	II थिस्सलुनीकियों	I यूहन्ना
रोमियों	I तिमुथियुस	II यूहन्ना
I कुरिन्थियो	II तिमुथियुस	III यूहन्ना
II कुरिन्थियो	तीतुस	यहूदा
गलातियो	फिलेमोन	प्रकाशितवाक्य

ये सभी जो परमेश्वर की प्रेरणा से पवित्र शास्त्र में दिये गये है विश्वास और जीवन के लिए परमेश्वर के नियम है।

3. वे पुस्तक जिन्हें (Apocrypha)कहा जाता हैं, परमेश्वर द्वारा प्रेरित नहीं हैं और पवित्र शास्त्र के सिद्धान्तों का हिस्सा नहीं है, इसलिए परमेश्वर की कलीसिया में उनकी मान्यता नहीं है, न ही किसी प्रकार से उन्हें किसी भी मनुष्य के लेखों में उनकी मान्यता है।

4. पवित्र शास्त्र पर और इसके अधिकार जिस पर विश्वास करते हुए इसकी आज्ञा माननी चाहिए, क्योंकि यह किसी मनुष्य की गवाही और कलीसिया की गवाही पर निर्भर नहीं करता, वरन् पूर्णता से परमेश्वर पर जो इसका लेखक है, और अपने आप में सच्चा है। इसलिए इसे स्वीकार करना है, क्योंकि यह परमेश्वर का वचन है।

5. हम कलीसिया की गवाही के द्वारा पवित्र शास्त्र के प्रति उच्च आदर भाव के लिए उत्साहित, प्रेरित हो सकते है। और स्वर्ग की बातों के बारे में, सिद्धान्तों के गुणो, भव्यता का आकार, सभी भागों की सहमति, परमेश्वर की सारी महिमा, इसे पूर्णता में समझाना, वचन को मनुष्य के उद्धार के लिए एकमात्र मार्ग बनाता है। और इसके अलावा अतुल्य उत्तमता, और सम्पूर्ण, सिद्धता पूर्णता में इस बात का प्रमाण है, कि यह परमेश्वर का वचन है। और उसके ईश्वरीय अधिकार और अटल सत्यता के प्रति हमारी धारणा, विश्वास और आश्वासन का प्रतिरोध नहीं करता, यह पवित्र आत्मा का (अन्दरुनी) कार्य है पवित्र आत्मा परमेश्वर के वचन से और साथ, में हमारे हृदय में गवाही देने का कार्य करता है।

6. परमेश्वर की सम्पूर्ण योजना (सलाह), जो उसकी अपनी महिमा, मनुष्य के उद्धार, विश्वास और जीवन के लिए जरूरी है, पवित्र शास्त्र मे प्रगट कर दी गई है। अथवा पवित्र शास्त्र से जरूरी और भले परिणाम के लिए पवित्र शास्त्र से निष्कर्ष निकाला जा सकता है। जिसमें अब कभी भी कुछ जोड़ा नहीं जा सकता, न ही आत्मा के

प्रकाशन और न ही मनुष्यों की परम्परओं के द्वारा, पवित्रशास्त्र सम्पूर्ण है। परन्तु इस बात को स्वीकार करते है कि परमेश्वर की आत्मा के द्वारा पवित्र शास्त्र में प्रकट की गई बातों का हृदय में प्रकाशन (समझ) जो उद्धार की समझ के लिए जरूरी है, होता है।

और कुछ विशेष स्थितियों में परमेश्वर की आराधना और कलीसिया को चलाने की बाते, जो मनुष्य और समाज, समुदाय में सामान्य है, प्रकृति के प्रकाश के द्वारा और मसीह समझ के द्वारा, वचन के सामान्य नियमों के अनुसार जिन्हें हमेशा पूरा करते हुए, करना है।

7. पवित्र शास्त्र में सभी बातें समान रीति से साफ नहीं है, न ही समान रीति से सबको समझ आती है। परन्तु जो बातें विश्वास और उद्धार के लिए जानना जरूरी है, को साफ प्रकार से पवित्र शास्त्र में, एक अथवा दूसरी जगह प्रस्तुत किया गया है। जिन्हें सिर्फ जानना ही नहीं वरन न जानना भी, जरूरी साधन के इस्तेमाल के लिए, ताकि उनकी पर्याप्त समझ प्राप्त की जा सके।

8. पुराना नियम इब्रानी भाषा में (जो उस समय परमेश्वर के लोगों की मातृभाषा थी) और नया नियम यूनानी भाषा में, (जो लिखने के समय देशों के लिए सामान्य भाषा थी) परमेशवर की आत्मा के द्वारा प्रेरित, प्रोत्साहित और उसकी स्वयं की सुरक्षा के द्वारा प्रत्येक समय (काल), में सुरक्षित रखा गया है, इसलिए प्रमाणित और विश्वनीय है। धर्मों के सभी विवादों में कलीसिया ही उसे पुनविचार के लिए (चुनौती) अथा प्रार्थना कर सकती है।

परन्तु क्योंकि ये भाषाए (इब्रानी, युनानी) परमेश्वर के सभी लोगों को नहीं मालूम/आती, जिन्हें वचन पढ़ने का अधिकार, पवित्र शास्त्र में रूचि है। जिन्हें आज्ञा दी गई है, कि परमेश्वर के भय में इसे पढ़े और समझे, इसलिए इन्हें सभी देशों की भाषा में अनुवाद किया गया, जहाँ से वे (विश्वासी) सम्बन्ध रखते है। ताकि परमेश्वर का वचन भरपूरी से सभी में (विश्वासियों)स्थान पा सके। और वे परमेश्वर की आराध ना ग्रहण योग्य तरीके से कर सकें। और पवित्र शास्त्र के धैर्य ओर सहारा में आशा पा सके।

9. परमेश्वर के वचन को अनुवाद(भाषान्तरण), व्याख्या करने सबसे उचित नियम पवित्र शास्त्र है। इसलिए जब शास्त्र के किसी भाग के सच्चाई, अथवा अर्थ के बारे में कोई प्रश्न हो तो, इसे पवित्र शास्त्र के दूसरे भाग में जहाँ इसे ज्यादा अच्छी तरह समझााया गया ढूंढ़ना (खोजना) जरूरी है।

10. सर्वोच्च न्यायधीश पवित्र आत्मा है जो धर्म की सभी विवादों का फैसला, समिति के आदेश, पुराने लेखकों के विचार, मनुष्य के सिद्धान्त, व्यक्तिगत आत्माओं की परीक्षा, और उनकी बाते जिन पर हमें भरोसा है का निर्धारण करता है जो पवित्र शास्त्र के द्वारा बातें करता है।

अध्याय 2

परमेश्वर और पवित्र त्रिएकता

1. सिर्फ मात्र एक ही, जीवित और सच्चा परमेश्वर है, जो अपने अस्तित्व और सिद्धता में असीमित है। सर्वश्रेष्ठ, शुद्ध आत्मा, अदृश्य, बिना शरीर के, बिना अंग और लालसा के है। वह अपरिवर्तनीय, अति उत्तम, समझ से परे, सर्वसामर्थी, अति बुद्धिमान, अति पवित्र, अति स्वतंत्र, अति सम्पूर्ण है। वह अपनी अपरिवर्तनीय और धर्मी इच्छा के अनुसार सभी कार्य अपनी महिमा के लिए करता है।

   वह बहुत प्रेमी, अनुग्रकारी, दयालु, धैर्यवान, भलाई और सच्चाई से परिपूर्ण, अपराध, पाप और बुराई को क्षमा करने वाला है। जो प्रसन्नता से उसे खोजते हैं वह उन्हें प्रतिफल देने वाला परमेश्वर है। इसके अतिरिक्त सच्चा न्यायी है, और जो पाप के अपराध से लिप्त है उनके लिए भयावह न्यायकर्ता है।

2. परमेश्वर अपने आप में पूर्ण जीवन, महिमा, भलाई, सद्‌गुण, आशीष है और अपने आप में पूर्ण पर्याप्त है, जिसे अपनी बनाई हुई सृष्टि की आवश्यकता नहीं है। न ही उनसे कोई महिमा (अपने लिए) आवश्यक है, परंतु वह अपनी महिमा इनमें और इनके द्वारा प्रगट करता है। सिर्फ वह ही ऐसा झरना है जिसमें जिसके द्वारा और जिसमें सब कुछ है और उन पर अति प्रभुता, अधिकार करता है, कि उनसे, उनके लिए, उन पर अपनी पसन्द से प्रभुत्व रखता है। उसकी दृष्टि से सभी कुछ खुला और प्रगट है। उसका ज्ञान असीमित है, अडिग है और सृष्टि पर आश्रित नहीं है। कुछ भी उसके लिए अनिश्चित और अचानक नही है। वह अपनी इच्छा, अपने कार्य और अपनी सभी आज्ञाओं में पूर्ण पवित्र है।

   उसको (परमेश्वर), सभी स्वर्गदूत, मनुष्य और अन्य सभी सृष्टि से आराधना, सेवा, आज्ञाकारिता का अधिकारी है जिससे वह प्रसन्न होता हैं।

   परमेश्वर की एकता में तीन व्यक्तित्व, जो एक समान तत्व, सामर्थी, अनन्तकालीन है, पिता परमेश्वर, पुत्र परमेश्वर और परमेश्वर पवित्र आत्मा, एक है। पिता किसी का नहीं, न ही इकलौता, न ही अग्रसर है। पुत्र अनन्तकाल से पिता का प्रिय, इकलौता है। पवित्र आत्मा अनन्तकाल से पिता और पुत्र से अग्रसर है।

अध्याय 3

परमेश्वर की अनन्तकालीन-इच्छा (फैसला)

1. परमेश्वर ने आदि से ही अपनी अति बुद्धिमता और अपनी इच्छा की पवित्र योजना में, स्वतंत्रता और अडिग इच्छा के द्वारा सब कुछ ठहराया जो घटित होता है। इसका कदापि यह अर्थ नहीं, कि परमेश्वर पाप का कर्ता है, या मनुष्य में (सृष्टि) में उग्रता प्रदान करता है। न ही कुछ आकस्मिक होता है, दूसरी वजह को हटाना नहीं वरन् स्थापित किया है।

2. यद्यपि परमेश्वर को हर परिस्थिति में जो होता है, या हो सकता है, सब कुछ ज्ञात है। लेकिन उसने कुछ भी इसलिए नहीं ठहराया, कि उसने पहले से ही भविष्य को जाना, देखा है अथवा जानता है, कि विशेष परिस्थिति में क्या घटित होगा।

3. परमेश्वर ने अपनी महिमा को प्रगट करने के लिए यह फैसला किया, कि कुछ मनुष्य और स्वर्गदूतों को उसने पहले से अनन्त जीवन के लिए नियुक्त किया और दूसरों को पहले से अनन्त मृत्यु के लिए ठहराया/नियुक्त किया।

4. ये स्वर्गदूत और मनुष्य जिन्हें पूर्व निर्धारित और पहले से ठहराया गया, निश्चियता और अडिगता में बनाये गये और उनकी संख्या पक्की और निश्चित है जो न तो बढ़ और न घट सकती है।

5. उन मनुष्यों को जिन्हें पहले से जीवन के लिए ठहराया/नियुक्त किया, संसार की उत्पत्ति से पहले, परमेश्वर ने अपनी अनन्त और अपरिवर्तनीय उद्देश्य और अपनी स्वतंत्र और भली इच्छा के द्वारा मुक्त अनुग्रह और प्रेम चुन लिया। पहले से विश्वास देखे बिना, अथवा अच्छे कार्य और उनमें कोई दृढ़ता और अन्य ऐसी कोई बात जो उसकी रचना में, जो शर्त और वजह हो जिससे वे इस चुनाव को प्राप्त करें, के बिना उन्हें चुन लिया। ये उसका मात्र अनुग्रह और प्रेम है। इस सबके लिए उसके महिमायुक्त अनुग्रह की स्तुति हो।

6. जिस प्रकार परमेश्वर ने चुने हुओं को महिमा के लिये पहले से ठहराया, उसी प्रकार परमेश्वर अपनी इच्छा से, अनन्तकालीन और स्वतंत्र उद्देश्य से, सभी साधन पहले से ठहराये जिससे वे जो चुने गये हैं, आदम में पतित हुए, लेकिन यीशु के द्वारा प्रभावी ढंग से पवित्र आत्मा के द्वारा समय पर यीशु मसीह के विश्वास में बुलाए गये, और पवित्र आत्मा द्वारा धर्मी ठहराए, दत्तक लिए गये, पवित्र किये गये और सामर्थ के द्वारा संभाले गये, विश्वास के द्वारा उद्धार के लिए नियुक्त हुए।

   चुने हुओं के अतिरिक्त कोई भी यीशु मसीह के द्वारा छुड़ाए नहीं गये, न ही प्रभावी ढंग से उद्धार के लिये बुलाए गये, धर्मी, दत्तक अथवा पवित्र किये गये, सिर्फ चुने हुओ को छोड़कर।

7. परमेश्वर अपनी स्वतंत्र इच्छा की योजना के अनुसार, शेष मनुष्य में परमेश्वर को भला लगा, कि वह अपनी इच्छा के अनुसार, अपनी महिमा और प्रभुता, अपनी सृष्टि पर, अपनी इच्छा से अपनी दया प्रदान करें अथवा न प्रदान करें, और उन्हें उनके पाप के लिये अनादर और क्रोध के लिए ठहराया/नियुक्त किया ताकि उसके महिमामय न्याय की स्तुति हो।

8. पूर्व निर्धारित की गहरी रहस्यभरी सिद्धान्त को पूरी समझ और सुरक्षा से समझने/देखने की आवश्यकता है। लोग जो परमेश्वर की इच्छा, जो वचन में प्रगट की गई है, उसमें बने रहने और उसकी आज्ञा मानने में उसकी इच्छा को महत्व देते हैं, कि पूर्ण निश्चिता के साथ अपने अनन्त चुनाव के प्रति आश्वस्त हों। इसलिए यह सिद्धान्त शिक्षा-स्तुति, आदर और परमेश्वर की प्रशंसा के योग्य है और जो सुसमाचार मानते हैं, उनके लिए नम्रता, भलाई और भरपूरी की शांति है।

अध्याय 4

सृष्टि

1. परमेश्वर पिता, पुत्र और पवित्र आत्मा को ये अच्छा लगा, कि अपनी अनन्त सामर्थ, बुद्धि और भलाई/सद्‌गुण की महिमा के प्रगटीकरण के लिए, उसने आदि में कुछ नहीं से संसार और जो कुछ इसमें है, जो दिखता और अदृश्य है, छः दिनों में बनाया।
2. परमेश्वर ने सभी जीवों/प्राणियों के बनाने के बाद मनुष्य को पुरुष और स्त्री करके तर्क वितर्क और अविनाशी आत्मा की योग्यता में बनाया और उन्हें ज्ञान, धार्मिकता और सच्ची पवित्रता में अपनी समानता में बनाया, परमेश्वर की व्यवस्था उनके हृदय पर लिखी थीं और उनमें इसे पूरा करने की सामर्थ थी, फिर भी संभावना में कि अपनी इच्छा की स्वतंत्रता जो परिवर्तनीय है, में वे व्यवस्था को तोड़ सकते थे, अपनी स्वतंत्रत इच्छा का दुरुपयोग करके, व्यवस्था उनके हृदय पर लिखी थी इसके अलावा परमेश्वर ने उन्हें आज्ञा दी, कि वे भले और बुरे ज्ञान के वृक्ष से न खाए, जब तक उन्होंने इस आज्ञा को माना वे परमेश्वर की संगति में खुश थे और अन्य जीवों पर प्रभुता की।

अध्याय 5

परमेश्वर की कृपा दृष्टि

1. परमेश्वर, महान सृष्टिकर्ता, अपनी महिमा, बुद्धिमत्ता, सामर्थ, सद्‌गुण, भलाई और दया की महिमा के लिए, सभी प्राणियों को स्थिरता, अगुवाई, संभालता है और सभी प्राणियों (बड़े से छोटे) के कार्यों पर अपनी अति बुद्धिमता और पवित्र कृपादृष्टि से अपने अडिग पूर्व ज्ञान और स्वतंत्र और अपरिवर्तनीय इच्छा से प्रभुता करता है।
2. यद्यपि परमेश्वर के पूर्व ज्ञान के फैसले से, सर्वप्रथम सभी बातें पूर्ण अडिगता और अपरिवर्तनीय रीति से घटित होती, फिर भी उसी कृपादृष्टि से वह उन्हें द्वितीय वजह के अनुसार अनिवार्य, स्वतंत्र अथवा आकस्मिक रीति से घटित करता है।
3. परमेश्वर अपनी साधारण सुरक्षा (कृपादृष्टि) में साधनों का इस्तेमाल करता है। फिर

भी वह उनके बिना, ऊपर और उनके विरोध में अपनी खुशी से, कार्य करने के लिए स्वतंत्र हैं।

4. परमेश्वर की असीमित सामर्थ, अति बुद्धिमता और असीमित भलाई/सद्‌गुण, उसकी कृपा दृष्टि/सुरक्षा में अपने आप प्रगट होती है। यहाँ तक आदम के पतन और स्वर्गदूतों और मनुष्य के पाप में भी नजर आती है, जिसका कदापि अर्थ नहीं कि वह इसकी अनुमति देता है। परंतु उसने इसके साथ अति बुद्धिमता और सामर्थी एकता को जोड़ा है और कई समय/कालों पर अपनी पवित्र उद्‌देश्य के लिए उन पर प्रभुता करते हैं। इसलिये पाप सृष्टि के प्राणियों से आगे बढ़ता है, न कि परमेश्वर से, जो अपने अस्तित्व में अति पवित्र, और धर्मी है, जो किसी भी तरह पाप का कर्ता और इसको मान्यता नहीं देता।
5. अति बुद्धिमान, धर्मी और अनुग्रहकारी परमेश्वर कई बार अपनी संतान को कुछ समय के लिए परीक्षा और उनके हृदय की भ्रष्टता पर छोड़ देता है, कि उनके पहले के पापों का दण्ड दे और उनमें भ्रष्टता और हृदय के धोखे की छिपी हुई ताकत को प्रगट करे, ताकि वे नम्र बने, और वे ज्यादा नज़दीकी और निरन्तरता में सहायता के लिए उस (परमेश्वर) पर निर्भर हो, और वे भविष्य में पाप के विरोध में और हर प्रकार से उचित और पवित्र अन्त के लिए जागरुक हो।
6. दुष्ट और भ्रष्ट लोगों को, जिन्हें परमेश्वर ने एक धर्मी न्यायी के रूप में उनके पहले पापों के प्रति अन्धा और कठोर किया, उन्हें सिर्फ अपने अनुग्रह से वंचित किया, कि कहीं ऐसा न हो कि वे अपनी समझ में प्रकाशित हो और अपने हृदय को तैयार करें, वरन् कई बार उनसे उन वरदानों को भी अलग कर दिया और उन्हें भ्रष्टता, पाप को अवसर देने वाली परिस्थिति के अधीन किया, इसके अतिरिक्त उन्हें उनकी अभिलाषाओं, संसार की परीक्षाओं और शैतान के हाथों में छोड़ दिया, जिससे ऐसा हो कि उन्होंने अपने हृदय को कठोर किया, यहाँ तक उन परिस्थितियों और मौकों (साधनों) में जिसे परमेश्वर दूसरों का हृदय नम्र करने में इस्तेमाल करता है।
7. साधारणतः परमेश्वर की कृपादृष्टि सभी प्राणियों तक पहुँचती है, लेकिन विशेष रूप से यह कलीसिया की देखभाल करती है, और उसकी भलाई के लिए सब अच्छी बातें प्रदान करती है।

अध्याय 6

मनुष्य का पतन, पाप और उनका दण्ड

1. हमारे पहले आदि माता-पिता, शैतान के द्वारा चतुराई से परीक्षा में पड़कर पथ भ्रष्ट होकर, मना किये हुए फल को खाकर उन्होंने पाप किया। परमेश्वर ने अपनी बुद्धि

और पवित्र इच्छा में उन्हें यह पाप करने दिया, ताकि इसके द्वारा वह अपनी महिमा निर्धारित करे।

2. इस पाप के द्वारा, वे अपनी वास्तविक धार्मिकता और परमेश्वर की उपस्थिति/संगति से पतित हो गये और पाप में मर गये और अपने शरीर और आत्मा को पूर्णता दोषी/दूषित कर लिया।

3. वे सभी मनुष्य का स्त्रोत होते हुए, इस पाप का दोष और पाप में मृत्यु और भ्रष्ट स्वभाव, उनसे उनके आने वाली सभी वंशजों/मनुष्य जाति में फैल गया।

4. इस वास्तविक भ्रष्टता के द्वारा, हम पूर्णता अव्यवस्थित, अयोग्य, अच्छाई के विरोध में और बुराई की तरफ अग्रसर हुए और वास्तविक पाप को और बढ़ाते गये।

5. इस जीवन में यह भ्रष्ट स्वभाव, जो नया जीवन प्राप्त करते हैं उनमें भी बना रहता है। यद्यपि वे मसीह के द्वारा क्षमा किये और नियंत्रित होते हैं। फिर भी अपने आप में और सभी कार्यों में सत्यता में पाप में है।

6. सभी पाप दोनों, सर्वप्रथम और वास्तविक पाप परमेश्वर की धार्मिकता की व्यवस्था का उल्लघंन है, इसलिये स्वभाव से वह पापी पर दोष लगाता है, जिससे वह परमेश्वर के क्रोध और व्यवस्था का श्राप अपने ऊपर लाता है और वह सारे आत्मिक, अस्थायी और अनन्तकालीन दु:खों के साथ मृत्यु के आधीन है।

अध्याय 7

मनुष्य के साथ परमेश्वर की वाचा

1. परमेश्वर और प्राणियों के बीच की दूरी बहुत विशाल है। यद्यपि प्राणी उसको सृष्टिकर्ता के रूप में मान्यता देते हुए आज्ञा मानते हैं। फिर भी वे पुरस्कार के रूप में उससे मनवांछित फल (पुरस्कार) नहीं पाते, परंतु परमेश्वर अपनी स्वतंत्र, विनीत भाव से जिसे उसने अपनी भली इच्छा में वाचा के माध्यम से प्रगट किया है प्रदान करता है।

2. पहली वाचा जो परमेश्वर ने मनुष्य के साथ बनायी वह कार्य की वाचा थी, जिसमें आदम को जीवन और सफलता का वादा परिपूर्ण और व्यक्तिगत आज्ञा मानने पर मिला।

3. मनुष्य ने पाप में गिरने के द्वारा, अपने आप को इस वाचा के जीवन से अयोग्य बना डाला, परमेश्वर ने अपनी भली इच्छा में दूसरी वाचा, जिसे अनुग्रह की वाचा कहा जाता है स्थापित की। जिसमें उसने पापियों को जीवन और उद्धार यीशु मसीह में प्रस्तुत किया, कि वे उसमें विश्वास से उद्धार पायें, और जो अनन्त जीवन के लिए ठहराये गये, उन्हें पवित्र आत्मा देने का वादा किया, ताकि उनमें इच्छा उत्पन्न हो और वे विश्वास करने योग्य बन जाए।

4. अनुग्रह की वाचा बार-बार पवित्र शास्त्र में वसीयत/नियम के नाम से, प्रभु यीशु मसीह वसीयत करने वाले की मृत्यु के सन्दर्भ और अनन्त कालीन वारिस के रूप में प्रस्तुत की गई है। सभी उनकी है जो वसीयत में देने वाले की थी।

5. यह वाचा, व्यवस्था और सुसमाचार के समय अलग-अलग प्रकार से क्रियान्वित हुई। व्यवस्था के समय यह वायदे, भविष्य, बलिदान, खतना, मेम्ने का बलिदान और दूसरी प्रकार के धार्मिक अनुष्ठान, यहूदी लोगों के करने के द्वारा क्रियान्वित हुई। यह वाचा आने वाले मसीह की ओर देखते हुए, अपने समय पर प्रर्याप्त और प्रभावी थी। परमेश्वर ने पवित्र आत्मा के द्वारा चुने हुओ से वायदे किये, मसीह में चेतावनी और मजबूत किया जिससे उन्हें पूर्ण पापों का प्रायश्चित और अनन्त उद्धार प्राप्त हुआ, इसे पुरानी वसीयत/पुराना नियम कहा जाता है।

6. सुसमाचार के समय जब यीशु प्रगट हो गया। धार्मिक अनुष्ठान जिससे वाचा प्रदान की जाती है, वचन का प्रचार, बपतिस्मा और प्रभु भोज संस्कार का दिया जाना है, जो संख्या में कम और सादगी से दिया जाता है, जिसकी बाहरी महिमा कम है फिर भी इसमें ज्यादा सम्पूर्णता, प्रमाण और आत्मिक प्रभाव, सभी देश, यहूदी और अन्य जातियों के लिए है। इसे नया नियम/वसीयत कहा जाता है। इसलिए ये दो अनुग्रह की वाचा नहीं है जिनके तत्व में अंतर है। वरन् एक है, जो अलग-अलग समय के अनुसार है।

अध्याय 8

यीशु मसीह की मध्यस्थता

1. परमेश्वर को अपनी अनन्त योजना में यह अच्छा लगा, कि वह अपने इकलौते/प्रिय पुत्र यीशु मसीह को, मनुष्य और परमेश्वर के बीच बिचवईया चुने और ठहराए, और भविष्यद्वक्ता, याजक, राजा, कलीसिया का उद्धारक और मुखिया, सभी चीजों का वारिस, संसार का न्यायी ठहराए, जिसे उसने अनन्तकाल से लोगों को उनका बीज करके दे दिया और उसमें समय पर उन्हें छुटकारा दिया, बुलाया, धर्मी ठहराया, पवित्र किया और महिमा दी।

2. त्रिएक में दूसरा व्यक्ति परमेश्वर का पुत्र जो स्वभाव और अनन्तकाल से सभी तत्वों/गुणों में परमेश्वर के समान है, जब समय पूरा हुआ कि वह मनुष्य का स्वभाव ले, सभी महत्वपूर्ण गुणों और कमजोरी के साथ, फिर भी बिना पाप के, पवित्र आत्मा की सामर्थ से, कुंवारी मरियम में गर्भधारण किया, ताकि दो सम्पूर्ण, परिपूर्ण अलग स्वभाव, परमेश्वरत्व और मनुष्यत्व अभिन्न (जिन्हें अलग न किया जा सके) रीति से एक व्यक्ति में बिना बदले, बिना गड़बड़ और बिना संरचना किए जोड़ दिया, जो पूर्णता परमेश्वर, पूर्णता मनुष्य फिर भी एक मसीह मनुष्य और परमेश्वर के बीच एकमात्र बिचवईया है।

3. अपने मनुष्य स्वभाव में प्रभु यीशु मसीह परमेश्वर के साथ एक था, पवित्र आत्मा के साथ पवित्र और अभीषिक्त किया गया था। जिसमें ज्ञान और बुद्धि का सम्पूर्ण भण्डार है, जिसमें परमेश्वर को भला लगा की पूरी सम्पूर्णता वास करे, जो पवित्र नुकसान रहित, दोष मुक्त और अनुग्रह और सच्चाई से भरपूर रहे, कि वह बिचवइया और जमानत देने वाले की भूमिका के लिए पूर्ण योग्य हो।

   यह पद (जिम्मेदारी) उसने (यीशु) अपने आप नहीं ली, वरन् उसके पिता द्वारा दी गई, जिसने पूरी सामर्थ और अधिकार उसके (यीशु हाथों में दे दिया और आज्ञा दी कि उसे पूरा (क्रियान्वित) करें।

4. इस जिम्मेदारी को प्रभु यीशु ने पूर्ण इच्छा से अपने ऊपर ले ली, कि इसे पूरा करें, वह व्यवस्था के आधीन रहा और उसे परिपूर्णता में पूरा किया, उसने अपनी आत्मा में बहुत दु:ख, यातना सही और अपने शरीर पर असीम दु:ख उठाया, वह क्रूस पर चढ़ाया गया, मारा गया, दफनाया गया और मृत्यु के आधीन रहा, फिर भी उसने कोई पाप न किया। तीसरे दिन वह उसी शरीर में, जिसमें उसने यातना सही, मृतकों में से जी उठा, जिसमें वह स्वर्ग में भेजा गया, जहां वह पिता के दाहिने बैठकर विचवइये की प्रार्थना करता है। वह संसार के अन्त में मनुष्य और स्वर्ग दूतों का न्याय करने वापस आयेगा।

5. अनन्तकालीन आत्मा के द्वारा प्रभु यीशु ने अपनी सिद्ध आज्ञाकारिता और अपने आपको बलिदान करके, परमेश्वर को प्रस्तुत किया, जिससे परमेश्वर के न्याय को संतुष्ट/पूरा किया और परमेश्वर से मनुष्य का मेल मिलाप ही नहीं कराया, वरन् उनको, जिन्हें परमेश्वर ने उसे दिया, स्वर्ग के राज्य का अनन्तकालीन वारिस बनाया।

6. यद्यपि छुटकारे का वास्तविक कार्य यीशु मसीह के द्वारा पूरा नहीं हुआ था, जब तक वह मनुष्य बनकर पृथ्वी पर नहीं आया, फिर भी चुने हुओ को इसके गुण, प्रभाव, और फायदे संसार की उत्पत्ति से सभी कालों में वायदों और बलिदान जिसमें वह प्रगट हुआ प्राप्त थे, और स्त्री के वंशज के द्वारा सांप के सिर के कुचले जाने के वायदे में महत्वपूर्ण है, और संसार की उत्पत्ति से पहले ही मेम्ने का बलिदान हुआ और वह कल आज और हमेशा एक सा है।

7. बिचवइए के कार्य में यीशु मसीह, दोनों स्वभाव के अनुसार कार्य करते हैं। हर एक स्वभाव में जो इसके अनुरूप है, करते हैं। फिर व्यक्तित्व की एकता के कारण जो एक स्वभाव में कभी ठीक है, पवित्र शास्त्र में व्यक्ति की दूसरे स्वभाव के अनुसार ठीक है।

8. वे सभी, जिनके लिए मसीह ने छुटकारे की कीमत चुकाई अथवा खरीदा, वह

निश्चयता, प्रभावी लागू करने और बताने के द्वारा, उनके लिए प्रार्थना करते हुए, उन पर उद्धार के रहस्य को वचन में और वचन के द्वारा प्रगट करते हैं। अपनी आत्मा के द्वारा उन्हें प्रभावी रूप से कायल करते हैं, कि वे विश्वास करें और आज्ञा मानें और आत्मा के द्वारा उनके हृदय नियंत्रित करते हैं। अपनी असीमित सामर्थ और बुद्धि से उनके दुश्मनी पर विजय दिलाते हैं, वह यह सब कुछ अपनी अद्‌भुद और जिसे खोजा न जा सके मार्गों के अनुसार प्रदान करता है।

अध्याय 9

स्वतन्त्र इच्छा

1. परमेश्वर ने मनुष्य को स्वभाविक आजादी की इच्छा प्रदान की, जिसे न तो जबरदस्ती स्वभाव के लिए, सम्पूर्ण अनिवार्य ठहराया, जिससे अच्छा अथवा बुरा निर्धारित किया जाए।

2. मनुष्य को उसकी पवित्रता की स्थिति में स्वतंत्रता दी गयी, कि वह इच्छा की सामर्थ में वह सब कुछ करे जिससे परमेश्वर प्रसन्न होता है। फिर भी इच्छा परिवर्तनीय थी कि वह इसमें नाकाम(गिर) हो सकता था।

3. मनुष्य, पाप में गिरने के द्वारा, उसने अपनी इच्छा की सारी योग्यता खो दी, जिससे वह आत्मिक इच्छा जो उद्धार के लिए आवश्यक है, कर सकता था। एक स्वभाविक मनुष्य के रूप में भलाई से अलग, पाप में मरा हआ इस योग्य नहीं रहा, कि अपनी शक्ति से वह अपने आपको बदल सके अथवा इसके लिये तैयार हो सके।

4. जब परमेश्वर किसी को परिवर्तित करता है, उसे अनुग्रह की स्थिति में परिवर्तित करता है। वह पाप के स्वभाव के बंधन से आजाद करता है। सिर्फ अपने अनुग्रह के द्वारा उसे इस योग्य करता है, कि उसमें इच्छा पैदा हो और वह आत्मिक अच्छाई कर सके, परंतु जो भ्रष्टता उसे बची रहती है, उससे वह सिर्फ अच्छा ही नहीं करता वरन् जो बुरा है वह भी करता है।

5. सिर्फ महिमा की स्थिति में ही, मनुष्य की इच्छा सिद्धता और अपरिवर्तनीय रूप से अच्छा करने के लिये सिद्ध होगी।

अध्याय 10

प्रभावी बुलाहट

1. उन सभी को, जिन्हें उसने पहले से जीवन के लिये नियुक्त किया, अपने ठहराये हुए समय पर वचन और आत्मा के द्वारा पाप की दशा और मृत्यु जो स्वभाव से उनमें थी, अनुग्रह और उद्धार के लिये प्रभावी ढंग से बुलाया। यीशु मसीह के द्वारा उनके दिमाग/बुद्धि को आत्मिक प्रकाशन/ज्योति प्रदान की, ताकि वे परमेश्वर के उद्धार

की समझ प्राप्त करें, उनसे पत्थर के हृदय को अलग करके मांस का हृदय प्रदान किया। उनकी इच्छा को नया किया, अपनी असीमित सामर्थ के द्वारा उन्हें अच्छाई के लिए दृढ़ किया, प्रभावी रूप से यीशु के पास लेकर आये। फिर भी वे पूर्ण स्वतंत्रता से आये, अनुग्रह के द्वारा उनमें इच्छा बनायी गई।

2. प्रभावी बुलाहट परमेश्वर का दान और विशेष अनुग्रह है। ऐसा नहीं कि उसने मनुष्य में पहले से कुछ देखा, जो उनमें निष्क्रिय है, तब उन्हें पवित्र आत्मा से फिर नया किया गया, इसलिए मनुष्य इस योग्य हो जाता है, कि इस बुलाहट का प्रति उत्तर दे सके और इसमें जो अनुग्रह प्रस्तुत किया गया है उसे अपना सके।

3. चुने हुए शिशु जो अपनी बाल्यवस्था में मर जाते हैं, यीशु मसीह, आत्मा द्वारा जो जब जहां जैसे अच्छा लगता कार्य करता है, के द्वारा उन्हें नया जीवन और उद्धार प्रदान करते हैं। उसी प्रकार जैसे अन्य सभी चुने हुए लोग जो अयोग्य हैं, वचन की सेवा के द्वारा बुलाये जाते हैं।

4. दूसरे जो चुने हुए नहीं हैं, वचन की सेवा के द्वारा बुलाये तो जा सकते हैं, और उनमें कुछ आत्मा के सामान्य कार्य भी हो सकते हैं, फिर भी वे सत्यता से यीशु के पास नहीं आते, इसलिये बचाये नहीं जा सकते। जो ऐसा मानते हैं कि अन्य कुछ मनुष्य जो मसीही धर्म नहीं मानते अन्य मार्ग से बच सकते हैं, वे सच्चाई से अपने जीवन को प्रकृति के प्रकाश के अनुसार नहीं जी सकते न ही उस धर्म की व्यवस्था के अनुसार जिसे वे मानते हैं। ऐसे मानना घृणित और घातक हैं।

अध्याय 11

धर्मीकरण/न्यायीकरण

1. जिन्हें परमेश्वर प्रभावी बुलाहट देता है, वह उनका समर्थन/बचाव भी करता है। उनमें धार्मिकता भर कर नहीं वरन् उनके पाप क्षमा करके और उन्हें मानते हुए धर्मी व्यक्ति स्वीकार करता है, इसलिए नहीं कि उनमें कुछ किया या उन्होंने कुछ किया वरन् सिर्फ मसीह के लिये। इसलिये नहीं कि उन्होंने विश्वास किया, विश्वास का कार्य किया, अथवा अन्य सुसमाचार की आज्ञा मानी, ताकि वे धर्मी बन जायें वरन् यीशु मसीह की आज्ञाकारिता और संतुष्टि उनको प्रदान की। वे इसे प्राप्त करते हैं, भरोसा करते हैं, कि ये उनकी धार्मिकता है, ऐसा विश्वास वे अपने आप नहीं कर सकते यह परमेश्वर का दान है।

2. मसीह को स्वीकारना और उस पर भरोसा रखना और उसकी धार्मिकता पर आसरा रखने का विश्वास ही एकमात्र, बचाव का साधन है। फिर भी यही एकमात्र नहीं है, बचाये (न्याय से प्रमाणित) किये गये व्यक्ति में, वरन् दूसरे सभी बचाने वाले अनुग्रह

के साथ यह भी है। यह मृत विश्वास नहीं वरन् प्रेम के द्वारा कार्यरत विश्वास है।

3. यीशु मसीह ने अपनी आज्ञाकारिता और मृत्यु से उन सभी का जो न्याय से प्रमाणित किये गये हैं, कर्ज चुका दिया है और उनके बदले में परमेश्वर के न्याय को पूर्णता, सच्चाई से पूर्ण संतुष्ट किया, जिस प्रकार पिता ने यीशु को उनके लिये दिया, उसने यीशु की आज्ञाकारिता और संतुष्टि को उनके बदले में स्वीकार किया। स्वतंत्रता से, इसलिये नहीं कि उनमें कोई खूबी थी, उनका बचाव/समर्थन मुफ्त अनुग्रह है, उनके लिये, कि परमेश्वर का उचित न्याय और बहुमूल्य अनुग्रह पापियों के बचाव में महिमा पाये।

4. परमेश्वर ने अनन्त काल से चुने हुओ को न्याय से प्रमाणित करने का निर्णय लिया और यीशु मसीह, जब समय पूरा हुआ, उनके पापों के लिए मारे गये और उनके बचाव/समर्थन के लिये जी उठे, फिर भी वे निर्दोष नहीं ठहराये गये, जब तक कि पवित्र आत्मा समय पर प्रभु यीशु मसीह को उनमें क्रियान्वित नहीं करती।

5. जो निर्दोष ठहराये गये, परमेश्वर उनके पापों को निरन्तर क्षमा करते रहते हैं। यद्यपि वे निर्दोष होने की स्थिति से पतित नहीं हो सकते, फिर भी अपने पापों से परमेश्वर के अनुशासन को अपने ऊपर ला सकते हैं, और परमेश्वर अपने मुख का प्रकाश दृष्टि उनसे अलग कर लेता है। जब तक वे नम्र होकर अपने पाप अंगीकार नहीं करते, क्षमा नहीं मांगते और पश्चाताप करके अपने विश्वास को नया नहीं करते।

6. पुराने नियम के समय के विश्वासियों का/बचाव/निर्दोष ठहराना/किया जाना और नये नियम के विश्वासियों का बचाव दोनों एक समान और एक ही है।

अध्याय 12

लेपालकपन

1. वे सभी जो निर्दोष ठहराये गये हैं, परमेश्वर उन्हें अपने पुत्र यीशु में और उसके लिए, उन्हें स्वीकार करने (गोद लेने) के अनुग्रह में सम्मिलित होने की अनुमति प्रदान करता है, जिससे वे परमेश्वर की संतान की स्वतंत्रता और अधिकार, सौभाग्य में शामिल हो जाते हैं। परमेश्वर का नाम अपने पर ले सकते है, दत्तक की आत्मा पाते हैं, अनुग्रह के सिंहासन पर पहुंचने का साहस पाते हैं, और उसे पिताजी/अब्बा बुला सकते हैं। पिता के समान उसकी दया, सुरक्षा, आशीष पाते और वह उन्हें शुद्ध करता है। वे निकाले नहीं जाते वरन् छुटकारे के दिन के लिये उन पर मोहर लग जाती है वे वायदों के वंशज और अनन्तकाल के उद्धार के वारिस बन जाते हैं।

अध्याय 13

पवित्रीकरण

1. वे जिन्हें प्रभावी बुलाहट से बुलाया गया, नया जन्म हुआ, जिन्हें नया हृदय और नयी आत्मा दी गई, यीशु मसीह की मृत्यु और पुनरुत्थान के गुणों के द्वारा, उसके वचन और आत्मा के, उनमें वास करने से उनका पवित्रीकरण भी हुआ। उनमें शरीर के सभी पापों की प्रभुता नाश की गई और कई अभिलाषाएं कमजोर और वश में की जाती है, और वे अधिकार से सभी उद्धार के अनुग्रह में प्रोत्साहित और मजबूत किये जाते हैं, कि वे सच्ची पवित्रता के कार्य कर सकें, जिसके बिना कोई प्रभु को नहीं देख सकता।
2. सम्पूर्ण मनुष्य में पवित्रीकरण हमेशा होता रहता है। इसलिए यह इस जीवन में अपूर्ण है, क्योंकि पाप/भ्रष्टता के शेष अंश अभी जीवन के हर हिस्से में बने रहते हैं, जिससे निरंतर बिना समझौते का युद्ध, शारीरिक अभिलाषा और आत्मा और आत्मा का शरीर के विरोध में चलता रहता है। इस युद्ध/संघर्ष में पाप के अवशेष कुछ समय के लिये प्रबल हो सकते हैं। परंतु यीशु मसीह की पवित्रीकरण की आत्मा के निरंतर सामर्थ प्रदान करते रहने से नया जीवन विजयी होता है और संत/विश्वासी अनुग्रह, सिद्धता की पवित्रता और परमेश्वर के भय में उन्नति करते हैं।

अध्याय 14

उद्धार का विश्वास

1. अनुग्रह का विश्वास, जिससे चुने हुए लोग, उनकी आत्मा के उद्धार पर विश्वास करने योग्य होते हैं। यह मसीह की आत्मा का उनके हृदय में कार्य और वचन की सेवा के द्वारा निर्मित होता है, और संस्कार के लागू करने/लेने और प्रार्थना से यह बढ़ता और मजबूत होता है।
2. इस विश्वास से एक मसीह विश्वास करता है, कि जो कुछ भी वचन में प्रगट हुआ है, वह सत्य है, उसमें परमेश्वर स्वयं के अधिकार से बात करता है, अलग-अलग प्रकार से वचन के हिस्से में जो कुछ है, आज्ञा के प्रति आज्ञाकारिता, चेतावनी से सावधान, इस जीवन और जो आने वाला है के लिए परमेश्वर के वायदे को अपनाना है। लेकिन उद्धार के विश्वास का सिद्धान्त/नियम है कि सिर्फ मसीह को मानना, स्वीकारना और भरोसा रखना, कि अनुग्रह की वाचा के गुण में वही दोष मुक्त, पवित्रीकरण और अनन्त जीवन देता है।
3. यह विश्वास, स्तर में फर्क है, कमजोर और सुदृढ़, कई बार आक्रमण से कमजोर हो सकता है, परंतु यीशु मसीह के द्वारा जो विश्वास देने वाला और अंजाम तक पहुँचाने वाला है, बहुतों में पूर्ण आश्वासन को बढ़ाते हुए विजयी ठहराता है।

अध्याय 15

जीवन के लिये पश्चाताप

1. जीवन के लिए पश्चाताप एक सुसमाचार का अनुग्रह है। इसलिए यह सिद्धांत, हर एक सुसमाचार प्रचारक के द्वारा, यीशु मसीह में विश्वास के साथ प्रचार किया जाना चाहिए।
2. इसमें एक पापी दृष्टि और समझ में सिर्फ खतरे में ही नहीं, वरन् गन्दे और घृणित पाप से, पवित्र स्वभाव और परमेश्वर की धार्मिक व्यवस्था के विरोध में रहता है। परमेश्वर की दया, यीशु मसीह में समझ के द्वारा, वह पश्चातापी और दु:खी होता है और अपने पाप से घृणा करता है, और इनसे मुड़कर परमेश्वर के पास आता है। उद्देश्य लेकर परमेश्वर के मार्ग और आज्ञाओं में उसके साथ चलने का प्रयास करता है।
3. पश्चाताप पाप की संतुष्टि और क्षमा का कारण अपने आप में नहीं है, इस पर हमारा भरोसा नहीं होना चाहिए। यह तो परमेश्वर का यीशु मसीह में अनुग्रह है, फिर भी यह सभी पापियों के लिये अनिवार्य है, बिना पश्चाताप के कोई भी क्षमा नहीं पा सकता।
4. ऐसा कोई छोटा पाप नहीं, जो नरक यातना न दे और ऐसा कोई बड़ा पाप नहीं, जो सच्चे पश्चातापी को नरक यातना दे।
5. मनुष्य को अपने आप में साधारण पश्चाताप से संतुष्ट नहीं होना चाहिए, वरन् यह हर एक मनुष्य की जिम्मेदारी है, कि वह हर एक पाप के लिए पश्चाताप करे। हर मनुष्य अपने पापों को अकेले में परमेश्वर के सामने अंगीकार करने के लिये बाध्य/अनिवार्य है, क्षमा के लिए प्रार्थना करें, उनका त्याग करें, जिससे वह परमेश्वर की दया पाता है। यदि वह अपने भाई अथवा मसीह की कलीसिया को धोखा देता है, तो उसे चाहिए कि वह अकेले में और लोगों के सामने इसको अंगीकार करें और उनको जिन्हें उसने सताया, धोखा दिया है, पश्चाताप करे और मेलमिलाप करे, ऐसे व्यक्ति को प्रेम में स्वीकार कर लेना चाहिए।

अध्याय 16

अच्छे कार्य

1. अच्छे कार्य वही है, जिन्हें परमेश्वर ने पवित्र शास्त्र में करने की आज्ञा दी है। ऐसे कार्य नहीं, जो बिना प्रमाण के, मनुष्य की अंधी इच्छा और अच्छे उद्देश्य की सोच के अनुसार हो।
2. अच्छे कार्य, जो परमेश्वर की आज्ञाओं को मानने(पूरा करने) से होते हैं, वह सच्चे

और जीवित विश्वास का प्रतिफल और प्रमाण है। इसके द्वारा विश्वासी धन्यवाद, सामर्थ और उनका आश्वासन प्रकट करते हैं, इससे अपने भाइयों का सुधार, उन्नति, सुसमाचार के कार्य को ऊँचा उठाते, अपने शत्रु का मुंह बन्द करते, और परमेश्वर को महिमा देते हैं, वे मसीह यीशु में बनाये/रचे गये कि पवित्रता के फल को प्राप्त करें और अन्ततः अनन्त जीवन पाये।

3. अच्छा करने की योग्यता उनकी अपनी योग्यता नहीं है, वरन् यह पूर्णता यीशु की आत्मा की है, कि वे इसके (अच्छे कार्यों) लिए योग्य हों, इसके लिए अनुग्रह जो उन्होंने पा लिया के अलावा पवित्र आत्मा के प्रभाव की आवश्यकता होती है कि, उनकी इच्छा में कार्यरत हो, उसकी भली इच्छा पूरी हो, फिर भी वे अनदेखी नहीं कर सकते, कि वे बाध्य नहीं थे कि वे फर्ज पूरा करें, जब तक आत्मा उन्हें चलाती नहीं, वरन् उन्हें सावधानी पूर्वक परमेश्वर के अनुग्रह में अपने आप में प्रयास करते रहना चाहिए।

4. वे जो अपनी आज्ञाकारिता में बड़ी ऊँचाई प्राप्त करते हैं, जो इस जीवन में सम्भव है, वे कर्तव्य से अधिक और जो परमेश्वर चाहता है, उससे अधिक करने से पीछे/नाकाम रहते हैं। उस कार्य से जिसे फर्ज में करने के लिए बाध्य होते हैं। वह उस स्तर से नीचे ही रहते हैं।

5. हम अपने उत्तम कार्यों के द्वारा, पापों की क्षमा और परमेश्वर से अनन्त जीवन नहीं पा सकते, हममें और जो महिमा आने वाली है, उसमें कोई तालमेल नहीं है। हमारे और परमेश्वर के बीच असीमित दूरी है। अच्छे कार्य से हमें कोई लाभ नहीं मिलता, न ही इससे हम अपने पहले के पाप का कर्ज उतार सकते, वरन् हम वह सब कुछ कर देते हैं, जो कर सकते थे, हमने सिर्फ अपना फर्ज किया और लाभ न देने वाले सेवक हैं, अच्छे कार्य अच्छे हैं, क्योंकि वे उसकी आत्मा द्वारा हुए। जब वे हमारी सोच से हुए वे दोषपूर्ण, कमजोरी और अपरिपूर्णता युक्त हैं, वे परमेश्वर के न्याय की दुःख, यातना को सह नहीं सकते।

6. फिर भी विश्वासी यीशु के द्वारा स्वीकार किये जाते हैं, उसमें (यीशु) उनके अच्छे कार्य भी स्वीकार होते हैं। इसलिए नहीं कि वे इस जीवन में पूर्णता परमेश्वर की दृष्टि मं दोषरहित और दोष मुक्त है। वरन् इसलिये कि वह अपने पुत्र में उन्हें देखता है और जो सच्चा है, उसे खुशी से स्वीकारता और प्रतिफल/सम्मान देता है। यद्यपि उनमें कई दोष और अपूर्णता होती है।

7. वे कार्य जो नया जीवन न पाये लोग करते हैं, यद्यपि हो सकता है वे कार्य हो जिनकी

आज्ञा परमेश्वर ने दी और अपने और दूसरों की भलाई करते हों, फिर भी क्योंकि वे ऐसे हृदय से नहीं होते, जो विश्वास से पवित्र हुआ है, न ही सही तरह से वचन के अनुसार होते हैं, न ही उनका अन्त अच्छा है, न ही परमेश्वर की महिमा के लिए, इसलिये वे पापयुक्त हैं, और परमेश्वर को प्रसन्न नहीं कर सकते, न ही मनुष्य को इस योग्य बनाते हैं, कि वे परमेश्वर से अनुग्रह को प्राप्त करें, फिर भी यदि वे इन्हें अनदेखा करते हैं, वह और ज्यादा पापयुक्त और परमेश्वर को नापसन्द है।

अध्याय 17

संतों की दृढ़ता

1. वे, जिन्हें परमेश्वर ने अपने प्रिय पुत्र में स्वीकार किया है, उन्हें प्रभावी बुलाहट दी आत्मा के द्वारा पवित्र किया, वे न तो पूर्णता, न अन्ततः अनुग्रह की स्थिति से दूर होंगे, वरन् अन्त तक निश्चयता के साथ परमेश्वर उन्हें दृढ़ करेंगे और वे अनन्तकाल के लिए बचाए गए हैं।

2. संतों की दृढ़ता/धैर्य, उनकी अपनी स्वतंत्र इच्छा पर आधारित नहीं है, वरन् अपरिवर्तनीय चुनाव के निर्णय, जो परमेश्वर के स्वतंत्र और अपरिवर्तनीय प्रेम से निकलता है। यीशु मसीह की बिचवइए की प्रार्थना के प्रभाव और गुण से, आत्मा उनमें बनी रहती है, और परमेश्वर का बीज, उनमें स्वयं में और अनुग्रह की वाचा के स्वभाव से, जिससे अडिगता की निश्चयता उत्पन्न होती है।

3. फिर भी वे शैतान और संसार की परीक्षा में पड़कर, पाप/भ्रष्टता का प्रचलन, जो उनमें बचा रहता है, और सुरक्षा के साधनों को अनदेखा करने से, वे दुःखदायी घृणित पाप में फंस जाते हैं, और कुछ समय के लिये उसमें बने रहते हैं, जिससे परमेश्वर का अनादर और पवित्र आत्मा को दुःखी करते हैं, अपनी अनुग्रह और सांत्वना का दमन करते हैं, अपने हृदय को कठोर करते और अपनी आत्मा को जख्मी करते हैं, दूसरे को दुःख और धोखा देते हैं और अपने ऊपर अस्थायी न्याय को लाते हैं।

अध्याय 18

अनुग्रह और उद्धार का आश्वासन

1. यद्यपि पाखण्डी और दूसरे लोग, जिन्होंने नया जीवन नहीं पाया, व्यर्थ में अपने आपको झूठी आशा और सांसारिक धारणा में, कि वह परमेश्वर का है और उद्धार पाया है (उनकी यह आशा समाप्त हो जाती है) समझ कर धोखा देते हैं। परंतु जो सच्चाई से प्रभु यीशु मसीह पर विश्वास और सच्चाई से प्रेम करते, उसकी उपस्थिति में अच्छी चेतना में चलने का प्रयास करते हैं। इस जीवन में निश्चय ही आश्वस्त

होते हैं, कि वे अनुग्रह में है और परमेश्वर की महिमा की आशा में आनन्दित होते हैं, उनकी ये आशा उनका अनादर नहीं करती वरन् हमेशा बनी रहती है।

2. यह निश्चयता अनुमानित और सम्भावित धारणा और टूटने वाली आशा पर आधारित नहीं है। वरन् विश्वास का अडिग आश्वासन, जो उद्धार के वायदे की ईश्वरीय सच्चाई पर आधारित है, जिसका आन्तरिक प्रमाण अनुग्रह है, जिसमें ये वायदे किये गये और ग्रहणकरने वाली आत्मा की गवाही, जो हमारी आत्मा में, इस बात की गवाही देता है, कि हम परमेश्वर की संतान है, यह आत्मा हमारे उत्तराधिकार की सच्चाई है, जिससे हम पर छुटकारे के दिन के लिये मोहर लगायी गयी है।

3. यह अटल आश्वासन, विश्वास के महत्व/गुण का नही है, वरन् एक सच्चे विश्वासी को इन्तजार हो सकता है, और इससे पहले कि वह इसमें शामिल हो, उसे बहुत से मुश्किलों का सामना करना पड़ सकता है, परंतु पवित्र आत्मा से वह इस योग्य होता है कि परमेश्वर ने जो उपहार उसे दिये हैं, समझ सकें, वह उन्हें बिना अप्राकृतिक प्रकाशन के, साधारण साधन के सही इस्तेमाल से प्राप्त (समझ) कर सकता है, इसलिए यह हर एक का फर्ज है, कि वह सावधानी पूर्वक अपनी बुलाहट और चुनाव का निश्चय करे, जिससे वह अपने हृदय में शान्ति, पवित्र आत्मा में आनन्द, प्रेम में परमेश्वर का धन्यवाद, में बढ़ सके, अथवा ये सब उसके हृदय में बढ़ सके, आज्ञाकारिता के फर्ज में शक्ति/सामर्थ और आनन्द बढ़ सके। इस आश्वासन का सही प्रतिफल, अब तक झुके हुए व्यक्ति/बंधे हुए मनुष्य को आजाद करना है।

4. सच्चे विश्वासियों का उद्धार का आश्वासन, कई प्रकार से हिल, कम और रुक सकता है। इसकी सुरक्षा को अनदेखा करने से, किसी विशेष पाप में पड़ने से, जो चेतना को जख्मी और आत्मा को दु:खी करता है। कुछ अकस्मात और तीव्र परीक्षा में पड़ने से परमेश्वर अपने मुख का प्रकाश अलग कर लेता है, और दु:ख इस बात का वे अंधेरे में चलते हैं और उनके पास प्रकाश नहीं है। फिर भी वे पूर्णत: परमेश्वर के बीज के अभावग्रस्त नहीं होते और जीवन के विश्वास में बने रहते हैं, यीशु मसीह और भाइयों का प्रेम, हृदय की सच्चाई, फर्ज की जागरुकता, जिससे आत्मा के कार्य के द्वारा यह आश्वासन समय पर फिर से जाग्रत हो जाता है, इस दौरान वे पूर्ण निराशा के समय सहारा पाते हैं।

अध्याय 19

परमेश्वर की व्यवस्था

1. परमेश्वर ने आदम को एक व्यवस्था, कार्य की वाचा के रूप में दी, जिसमें उसने उसको (आदम)और पूरे वंशज को निरन्तर (स्थायी) आज्ञाकारिता के लिए कहा,

और इसे पूरा करने पर जीवन का वादा किया, इसके तोड़ने पर मृत्यु की चेतावनी दी और आज्ञा पूरा करने के लिए सामर्थ और योग्यता प्रदान की।

2. पतन के पश्चात् भी, यह व्यवस्था धार्मिकता लिए सिद्ध नियम बनी रही। सीनै पर्वत पर परमेश्वर ने दस आज्ञाएं दो तख्तियों पर लिखी हुई दी। पहली चार आज्ञाएं हमारे कर्तव्य को परमेश्वर के लिए और दूसरी छ: आज्ञाएं दूसरे लोगों के प्रति हमारे कर्तव्य के बारे में है।

3. इस व्यवस्था, जिसे नैतिक व्यवस्था कहा जाता है, के अलावा परमेश्वर ने इस्रायल के लोगों संस्कार की व्यवस्था, जिसमें कई प्रकार के धार्मिक अनुष्ठान, आराधना के नियम दिये, जिसमें मसीह को पहले से ही समझ, उसके अनुग्रह, कार्य, दु:ख और फायदे लोगों को दिये गये और नैतिक कर्तव्य के विभिन्न निर्देश दिये। वे सभी संस्कार के नियम/व्यवस्था नयी वसीयत/नियम के समय रद्द कर दी गयी है।

4. उनको अनेक न्यायायिक व्यवस्था, नीतियों के रूप में दी, जो उस समय के लोगों के साथ समाप्त हो गई और अब उनके प्रति कोई दायित्व नहीं है, सिर्फ इतना की साधारण न्याय संगत निपटारा आवश्यक है।

5. नैतिक व्यवस्था सभी के लिए हमेशा मान्य है। इसकी आज्ञाकारिता मनुष्य को दोष मुक्त ठहराती है। सिर्फ जो उस सन्दर्भ में ही नहीं परंतु परमेश्वर सृष्टिकर्ता के अधिकार के सन्दर्भ में भी, जिसने इसे दिया। यीशु मसीह सुसमाचार में इस जिम्मेदारी को समाप्त नहीं वरन और मजबूत करते हैं।

6. यद्यपि सच्चे विश्वासी, कार्य की वाचा की व्यवस्था के आधीन नहीं है, कि इससे दोष मुक्त अथवा दोषी ठहरे, फिर भी यह उनके और दूसरों के लिये महत्वपूर्ण है और परमेश्वर की इच्छा, जीवन के नियम और उनके कर्तव्य के बारे में बताती है और उसके अनुसार (जीवन बिताना) मार्गदर्शन करती है, उनके स्वभाव हृदय और जीवन में पाप की गन्दगी, भ्रष्टता का ज्ञान कराती है, कि वे अपने आप की जांच करते हुए पाप से नफरत, अपमान के दृढ़ विश्वास को प्राप्त करें और इस बात को भली भांति जान लें, कि उन्हें मसीह और उसकी परिपूर्णता की आज्ञाकारिता चाहिए।

   इस प्रकार व्यवस्था, नवजीवन के विकास के लिए उनके पापों/भ्रष्टता को रोकती, पाप करने को मना करती और पाप के परिणाम की चेतावनी देती और इस जीवन में इसके दु:ख जो उन्हें मिल सकते बताती है, यद्यपि व्यवस्था में जो श्राप का डर है उससे वे स्वतंत्र होते हैं।

   इसी प्रकार इसमें जो वायदा है, परमेश्वर की आज्ञा मानने में परमेश्वर की स्वीकृति,

इसे पूरा करने पर आशीष जो उन्हें मिलती, दिखाती/बताती है। इसलिए नहीं कि कार्य की वाचा की व्यवस्था से उनका इस पर अधिकार है।

इस प्रकार मनुष्य बुराई छोड़कर भलाई करता है, क्योंकि व्यवस्था उस उत्साहित करती है और बुराई से रोकती है, यह इस बात का प्रमाण नहीं है कि वे व्यवस्था के आधीन है और अनुग्रह के आधीन नहीं है।

7. न ही पहले से बताई गयी व्यवस्था सुसमाचार के अनुग्रह के विपरीत है। वरन् नम्र, इच्छा के अनुसार इसके साथ है। यीशु की आत्मा मनुष्य की इच्छा को नियंत्रित और योग्य बनाती है, कि स्वतंत्रता और खुशी से, परमेश्वर की इच्छा जो व्यवस्था में प्रगट की गयी है जिसे करने को कहा गया, पूरा करे।

अध्याय 20

मसीह आजादी और विवेक की स्वतंत्रता

1. मसीह ने सुसमाचार में, जो स्वतंत्रता विश्वासियों के लिए खरीदी, वह उनकी पाप के दोष, परमेश्वर के दोषी ठहराने वाले क्रोध, नैतिक व्यवस्था के श्राप और उन्हें इस बुरे संसार, शैतान के बन्धन और पाप की प्रभुता, बुराई की यातना, मृत्यु के डंक, कब्र की विजय और अनन्त नाश से स्वतंत्रता है, और उनकी परमेश्वर तक स्वतंत्र पहुँच, परमेश्वर की आज्ञा मानना एक दास के समान नहीं, वरन बच्चे के प्रेम और मन की इच्छा में की स्वतंत्रता है। जो सभी व्यवस्था के आधीन विश्वासियों में भी सामान्य थी। परंतु नयी व्यवस्था के अंतर्गत, मसीही स्वतंत्रता को और बढ़ा दिया गया है। संस्कारी व्यवस्था से उन्हें स्वतंत्रता दी गयी, जिसमें यहूदी कलीसिया बंधी थी, और उन्हें अधिक साहस से परमेश्वर के अनुग्रह के सिंहासन तक पहुँच और परमेश्वर की आत्मा से पूर्ण सम्पर्क की स्वतंत्रता दी गयी, जो व्यवस्था के आधीन विश्वासियों को साधारणतः पूर्ण रीति से प्राप्त नहीं थी।

2. सिर्फ परमेश्वर ही विवेक का स्वामी है, और उसने इसे, मनुष्य के सिद्धांत और आज्ञाओं से स्वतंत्र छोड़ा है, जो किसी भी प्रकार से विश्वास और आराधना के मामले में उसके वचन के खिलाफ और वचन से अलग है। इसलिये इन सिद्धांतों पर विश्वास करना और इन आज्ञाओं को अपने विवेक से मानना, विवेक की सच्ची स्वतंत्रता का धोखा देना है। अन्धा विश्वास और सम्पूर्ण और अन्धी आज्ञाकारिता मांगना विवेक की स्वतंत्रता और तर्क को नाश करना है।

3. वे जो मसीही स्वतंत्रता का मुखौटा पहनकर पाप करते रहते हैं, और बुरी अभिलाषाओं में मग्न रहते हैं। वे मसीही स्वतंत्रता को नष्ट करते हैं। जो कि अपने दुश्मन के हाथों

से छूटकर, हम बिना भय के परमेश्वर (प्रभु) की सेवा उसके सामने पवित्रता और धार्मिकता से अपने पूर्ण जीवन में करते रहना हैं।

4. क्योंकि परमेश्वर ने सामर्थ जो पहले से ठहरायी/दी और स्वतंत्रता जो मसीह ने हमारे लिए खरीदी, परमेश्वर की इच्छा नहीं है, कि वे नष्ट हो, परंतु एक दूसरे को स्थिरता और सुरक्षा दे, वे जो मसीह स्वतंत्रता के मुखौटे पर न्याय संगत सामर्थ का अथवा इसके इस्तेमाल का विरोध करते हैं, चाहे वे नागरिक अथवा कलीसिया के सम्बन्ध में हों, वे परमेश्वर के धार्मिक अनुष्ठान/नियम का विरोध करते हैं। और उनके इस विचारधारा और इन बातों में लगे रहना, जो प्रकृति के नियम और मसीह नियमों/सिद्धांतों (विश्वास, आराधना और बातचीत के मामले में), अथवा सद्गुण की सामर्थ के विरुद्ध, ऐसे गलत विचार और उन्हें करना, चाहे अपने स्वभाव से अथवा उन्हें प्रकाशित करके, मान्यता देते हुए, बाहरी शांति और व्यवस्था के लिए नुकसानदेह है, जिसे मसीह ने कलीसिया में स्थापित किया है। और उन्हें न्यायसंगत इसका हिसाब के लिए बुलाया जाए और कलीसिया की आलोचना के विरुद्ध कार्यवाही की जाये।

अध्याय 21

धार्मिक आराधना और विश्राम दिन

1. प्रकृति का प्रकाश/ज्ञान बताता है, कि परमेश्वर है, जो सबका मालिक, सब पर प्रभुता करता है, जो भला है और सबके लिये भलाई करता है। इसलिए उसका भय, उसको प्रेम, उसकी स्तुति, उस पर भरोसा, उसकी सेवा, उसको पुकारना, पूर्ण हृदय, आत्मा और सामर्थ के साथ करना चाहिए। परंतु उसको (सच्चे परमेश्वर) गृहणयोग्य आराधना उसने स्वयं निर्धारित की है, और उसकी प्रगट की गई इच्छा में सीमित है, कि उसकी आराधना मनुष्य की कल्पना और युक्ति के अनुसार और शैतान की सलाह के अनुसार नहीं होती, न ही अन्य कोई दिखाई देने वाले मूर्ति आकृति अथवा अन्य किसी प्रकार से, जो पवित्र शास्त्र में नहीं बतायी गयी के अनुसार होती है।

2. धार्मिक आराधना परमेश्वर पिता, परमेश्वर पुत्र और पवित्र आत्मा को दी जाती है। स्वर्गदूत, संत और अन्य किसी रचना को नहीं दी जाती, मनुष्य के पतन (पाप करने) के बाद बिना बिचवइये के, बिचवइया भी अन्य कोई नहीं वरन् एकमात्र यीशु के द्वारा ही आराधना प्रस्तुत की जाती है।

3. धन्यवाद के साथ प्रार्थना, धार्मिक आराधना का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है, जो परमेश्वर सभी मनुष्यों से चाहता है, और यह स्वीकार हो, इसके लिए यह पुत्र के नाम, पवित्र आत्मा की सहायता से, उसकी इच्छा के अनुसार, आदर, नम्रता, उत्साह, विश्वास, प्रेम और दृढ़ता के साथ समझ आने वाली भाषा में होनी चाहिए।

4. प्रार्थना न्यायसंगत बातों के लिये और सभी जीवित मनुष्यों के लिये, अथवा जो आने वाले समय में होंगे की जाती है। प्रार्थना मृतकों के लिए नहीं, न ही उनके लिए जिनके विषय में ज्ञात हो कि उन्होंने पाप किया है, पाप मृत्यु के लिये, नहीं की जाती है।

5. परमेश्वर के वचन को उसके भय में पढ़ना, वचन का उचित प्रचार और उसका सुनना, परमेश्वर के प्रति आज्ञाकारिता, समझ, विश्वास और आदर के साथ भजन को हृदय में अनुग्रह के साथ गाया जाना, और संस्कार का उचित प्रबन्धन (दिया जाना) और स्वीकार किया जाना, जो मसीह ने निर्धारित किया, ये सभी परमेश्वर की साधारण धार्मिक आराधना के हिस्से है। धार्मिक शपथ, प्रतिज्ञा, सच्चा उपवास और विशेष अवसर पर धन्यवाद, जो कई समय और मौसम में, पवित्र और धार्मिक प्रकार से आराधना के लिये इस्तेमाल किये जाते हैं।

6. न प्रार्थना, न धार्मिक आराधना का अन्य कोई हिस्सा-अब सुसमाचार के अंतर्गत, स्थान जहाँ पर यह की जाती है, के आधार ज्यादा ग्रहण योग्य नहीं होती, न ही उस तरफ जिधर यह निर्देशित होती है, के आधार पर। परंतु परमेश्वर की आराधना हर जगह आत्मा और सच्चाई से की जा सकती है। व्यक्तिगत परिवार में रोजाना, हर एक गुप्त में स्वयं और ज्यादा गम्भीरता, सच्चाई से सामूहिक सभाओं में, जो असावधानी और जानबूझकर अनदेखा और छोड़ी नहीं जा सकती, जबकि परमेश्वर अपने वचन और कृपा दृष्टि से इस आराधना के लिये बुलाता है।

7. प्रकृति का नियम है कि साधारणत: जो समय परमेश्वर का है, उसकी आराधना के लिये अलग करना है, उसके वचन में सकारात्मक, नैतिक और चिरस्थायी आज्ञाए सभी काल के मनुष्यों को इकट्ठा करती है। उसने विशेषकर एक दिन सात दिनों में से विश्राम के लिये, नियुक्त किया है, कि उसे परमेश्वर के लिए पवित्र माना जाये, जिसे संसार के शुरुआत से यीशु मसीह के पुनरुत्थान तक, सप्ताह का अन्तिम दिन विश्राम दिन माना गया, यीशु मसीह के पुनरुत्थान से यह सप्ताह के पहले दिन में बदल गया, जिसे पवित्र शास्त्र में प्रभु का दिन कहा गया और संसार के अंत तक यह हमेशा, मसीहियों का विश्राम दिन है।

8. यह विश्राम दिन, प्रभु के लिए पवित्र माना/रखा जाये, जब मनुष्य अपने हृदय को तैयार करते हुए, अपने कार्य का पहले से प्रबन्ध कर ले, विश्राम दिन को सिर्फ पूरे दिन अपने काम, वचन और विचार, सांसारिक कार्य और मनोरंजन से पवित्र आराम के लिए ही पालन न करे, वरन् पूरे समय को सामूहिक और एकांत में उसकी आराधना और दया के अनिवार्य कर्तव्य में लगाएं।

अध्याय 22

न्यायसंगत (उचित) शपथ और प्रतिज्ञा

1. न्यायसंगत शपथ धार्मिक आराधना का एक हिस्सा है, जिसमें उचित अवसर पर मनुष्य शपथ लेते हुए, परमेश्वर को साक्षी बनाता है, जो वह मांगता/अथवा जिसका वादा करता है, कि सच्चाई अथवा झूठ के अनुसार उसने जो शपथ खायी है परमेश्वर उसका न्याय करे।

2. परमेश्वर का नाम ही है, जिसकी मनुष्य शपथ लेता है। यह पवित्र, भय और आदर के साथ इस्तेमाल होना चाहिए। इसलिए व्यर्थ और जल्दबाजी में महिमायुक्त और भय युक्त नाम की शपथ खाना, अथवा अन्य किसी बात में शपथ लेना, पाप और घृणित है। फिर भी शपथ का महत्व परमेश्वर के वचन से, नये और पुराने नियम/वसीयत के समय में होती है। इस प्रकार न्यायसंगत शपथ, न्याय संगत अधिकार से ली जाती है। ऐसे मामले में शपथ ली जा सकती है।

3. जो भी शपथ लेता है, उसे इसकी महत्वत्ता और गम्भीरता के सही तरीके पर विचार करना चाहिए और इसमें से कुछ अलग न करते हुए, परंतु उसे पूर्णता सत्य में उत्साहित करना है। कोई मनुष्य अपने आप को शपथ से किसी भी बात के लिए मजबूर नहीं कर सकता, वरन् जो अच्छा और उचित है, और वह विश्वास करता है और वह इसे पूरा कर सकता है, करने का निश्चय करता है।

4. शपथ वचन के सरल और सामान्य ज्ञान में लेनी चाहिए। बिना दोहरे अर्थ और मानसिक आरक्षण के लेनी चाहिए। यह पाप को स्थान नहीं देती, परंतु कुछ भी जो पापयुक्त नहीं है, शपथ ली जा सकती है, यह कुछ करने को प्रेरित करती है। यद्यपि मनुष्य स्वयं को दु:ख देता है। इसे तोड़ा नहीं जा सकता, यद्यपि पाखण्डी और नास्तिक इसे लेते हैं।

5. प्रतिज्ञा वायदा करने वाली शपथ के समान है और इसे धार्मिक सावधानी के साथ लेना चाहिए और विश्वास योग्यता के साथ पूरी करनी चाहिए।

6. प्रतिज्ञा किसी सृष्टि के प्राणी के साथ नहीं वरन् सिर्फ परमेश्वर के साथ करनी है। यह स्वीकार की जाये, इसके लिये इसे स्वेच्छा से, विश्वास में, कर्तव्य के विवेक से, जो दया पायी है, उसके प्रति धन्यवाद से करनी चाहिए अथवा वह पाने के लिये जो हम चाहते हैं, जिससे हम अपने आपको अनिवार्य कर्तव्य में बाँधते हैं, अथवा अन्य बातों में जब तक वे सही बातों में सहायक सिद्ध होते हैं।

7. कोई मनुष्य ऐसी प्रतिज्ञा न करे, जो परमेश्वर के वचन में मना की गयी हो, और जो परमेश्वर की आज्ञा के कर्तव्य में बाधा उत्पन्न करे, अथवा जो उसकी अपनी

सामर्थ में नहीं है। और जिसे पूरा करने के लिये उसके पास परमेश्वर की योग्यता का वादा नहीं है। इस सन्दर्भ में चिरस्थायी एक जीवन के लिए वैराग्य सम्बन्धी प्रतिज्ञा, गरीबी स्वीकारना, और निरन्तर अज्ञाकारिता, सिद्धता और परिपूर्णता से बहुत दूर/पीछे है। वे सब अन्धविश्वास और पापयुक्त जाल है, जिसमें किसी भी मसीही को अपने आपको उलझाना/फंसाना नहीं चाहिए।

अध्याय 23

नागरिकों का न्यायधीश

1. परमेश्वर संसार का सर्वोच्च स्वामी/प्रभु और राजा है, जिसने नागरिकों के न्यायधीशों का अपने नीचे, लोगों के ऊपर, अपनी महिमा और सामूहिक भलाई के लिये नियुक्त किया है और उन्हें तलवार की सामर्थ से सुसज्जित किया है, कि वे सुरक्षा और उत्साहित करे, उन्हें जो अच्छे हैं और बुराई करने वाले को दण्डित करे।

2. मसीहियों के लिये यह न्याय संगत है, कि वे जब बुलाये/चुने जाते हैं तो न्यायधीश के पद को स्वीकार करें और इसके अनुसार कार्य करें-जिसमें वे दया, न्याय और शांति को उस राष्ट्रमण्डल के कानून के अनुसार बनाये रखें और इसके लिए (नये नियम की आधीनता में) न्याय संगत रूप से न्याय और अनिवार्यता में ही युद्ध में संलग्न हो।

3. नागरिकों के न्यायाधीशों को यह नहीं समझना चाहिए, कि वे वचन और संस्कार का प्रबन्ध करें, अथवा उनके पास स्वर्ग के राज्य की चाबी की सामर्थ है, अथवा विश्वास के मामले में दखल देने का अधिकार है। फिर भी एक पिता जो बच्चे को संभालता है, के समान नागरिक के न्यायाधीशों का यह कर्तव्य है कि वे हमारे एकमात्र प्रभु की कलीसियों को सिद्धांतों की विविधता (denomination) के आधार पर भेदभाव न करते हुए सुरक्षा प्रदान करें, कि सभी कलीसिया के लोग आनन्द और स्वतंत्रता के साथ, पूर्ण आजादी में अपने पवित्र संस्कारों और कार्य को बिना भय और डर के पूरा कर सकें।

   यीशु मसीह ने कलीसिया में नियम के अनुसार शासन प्रणाली और अनुशासन नियुक्त किया है इसलिए राष्ट्रमण्डल की कोई भी नियम/कानून इसमें दखलअन्दाजी न करें, न ही मसीही सम्प्रदाय के स्वेच्छित सदस्यों की, उनके विश्वास और उनकी मान्यता में कोई बाधा उत्पन्न करें।

   यह न्यायाधीश का कर्तव्य है, कि वह लोगों और सभी लोगों के भले नाम के लिए, बड़े प्रभावी ढंग से, कि कोई व्यक्ति अपने धर्म के नाम और नास्तिकता के नाम पर दु:ख न उठाए, ऐसी सुरक्षा प्रदान करें, और किसी अन्य व्यक्ति चाहे वह कोई

भी हो उसका अनादर, दुराचार और नुकसान और बुरा न हो। और इस बात की भी व्यवस्था करें, कि सभी धार्मिक और कलीसिया की सभाएं बिना छेड़खानी, दुर्व्यव्यहार और परेशानी के करायी जाएं।

4. यह लोगों का कर्तव्य है कि वे न्यायाधीशों के लिए प्रार्थना करें, उनका सम्मान करें, उनकी प्रशंसा (जिसके वो हकदार हों) करें, उनकी उचित आज्ञाओं को मानें और विवेक के लिए, उनके अधिकारों के आधीन रहे।

   धार्मिक भावना का अभाव अथवा धर्म में अंतर, न्यायाधीशों की उचित और कानूनन अधिकार को समाप्त नहीं करता, न ही लोगों को, उनकी आज्ञा न मानने की स्वतंत्रता देता है, जिससे कलीसिया के लोग भी अलग नहीं है।

   धर्माध्यक्ष के पास ऐसा अधिकार बहुत कम होता है, कि वह उनकी (न्यायाधीशों) और उनके लोगों की प्रभुता पर अधिकार रखें, वह उन्हें उनके नियन्त्रण और जीवन से वंचित करें, यदि वह उन्हें विधर्मी और पाखण्डी किसी भी बहाने से ठहराता/घोषित करता है यह उसका अधिकार नहीं।

अध्याय 24

विवाह और तलाक

1. विवाह एक पुरुष और एक स्त्री के बीच होना चाहिए। यह न्यायोचित नहीं है, कि एक पुरुष एक से ज्यादा पत्नी रखे, न ही कोई स्त्री एक से ज्यादा पति एक ही समय में रखे।

2. शादी पति और पत्नी को एक दूसरे (दोनों तरफ से) की मदद के लिये ठहरायी गयी कि मनुष्य उचित प्रकार से बढ़ सके और कलीसिया, पवित्र बीज (वंशज) में बढ़े और गन्दगी को रोका जा सके।

3. यह सभी लोगों के लिये, जो अपनी इच्छा से अपनी राय देने योग्य हैं, को शादी करनी चाहिए। फिर भी यह हर एक मसीही का कर्तव्य है कि वह प्रभु में (मसीही) से शादी करें। इसलिए जो सत्यता से नये (मसीही)धर्म में विश्वास करते हैं, उन्हें नास्तिक अथवा अन्य मूर्तिपूजक से विवाह नहीं करना चाहिए, न ही जो धर्म परायण (विश्वासी) हैं, अथवा किसी से जो अपने जीवन में बदनाम, कुख्यात, दुष्ट हैं और नाशवान शिक्षा पर विश्वास करते हैं, से शादी करके असमान जुए में न फंसे।

4. विवाह एक ही पूर्वज के संतानों और रिश्तेदारों के बीच मध्य नहीं होना चाहिए, जैसा कि वचन में मना किया गया है। न ही पारिवारिक सम्बन्धियों (भाई, बहन, cousion) की आपस में शादी भी, किसी मनुष्य की व्यवस्था और लोगों की हाँ

से न्यायोचित नहीं ठहरती, जबकि वे लोग एक साथ पुरुष और पत्नी की तरह रहते हैं।

5. शादी के समझौते के बाद शादी से पहले व्यभिचार का पता चलना सही लोगों को उचित वजह प्रदान करती है, कि वे शादी के समझौते को रद्द कर दे। व्यभिचार शादी के बाद की स्थिति में न्याय संगत है, कि जो सही है, वह तलाक ले ले और तलाक के बाद यदि दोषी मर जाता है/जाती है तो दूसरा विवाह कर सकता है।

6. यद्यपि मनुष्य का पाप इस प्रकार का है कि यह उचित है कि इसके विवाद का अधिक अध्ययन हो, कि जिसे परमेश्वर ने जोड़ा है उन्हें अलग करना अनुचित है, फिर भी कुछ नहीं वरन व्यभिचार के आधार पर इच्छा से त्याग/छोड़ देना कलीसिया की तरफ से कोई समाधान नहीं है, न ही न्यायाधीश की तरफ से शादी के बंधन को समाप्त करने के लिए पर्याप्त वजह है। इसे सामूहिक और नियमानुसार प्रगट करना है और जो व्यक्ति इससे सम्बन्ध रखता है, अपनी इच्छा और समझ में अपने हालात में नहीं छोड़ा जाता।

अध्याय 25
कलीसिया

1. विश्वव्याप्त अथवा व्यापक कलीसियों जो अदृश्य है, और सभी चुने हुओं की पूर्ण संख्या में बनती है। जिन्हें एक में इकट्ठा किया गया/किये जाते और किये जाएंगे, मसीह, मुखिया की आधीनता में जिसकी कलीसिया पत्नी व शरीर है मसीह की परिपूर्णता सभी में व्याप्त है।

2. सदृश्य कलीसिया भी, जो सुसमाचार के अंतर्गत विश्वव्याप्त और व्यापक है, (सिर्फ एक देश के रूप में नहीं जैसा व्यवस्था के समय में था) जो संसार के सभी लोग जो इस सच्चे (विश्वास) धर्म को मानते हैं, और उनके बच्चों को मिलाकर बनती है और यह प्रभु यीशु मसीह का राज्य, परमेश्वर का घर और परिवार है, जिसके अलावा कहीं भी उद्धार की संभावना नहीं है।

3. इस विश्वव्याप्त कलीसिया को यीशु मसीह ने सेवा, अपना वचन (भविष्यवाणी) और परमेश्वर की धार्मिक नीतियां दी है, कि जगत के अंत तक इस जीवन में संतों को इकट्ठा और सिद्ध किया जाए और वह यह कार्य अपनी आत्मा की सामर्थ, उपस्थिति और अपने वायदे के अनुसार उनमें (विश्वासी) प्रभावी करता है।

4. विश्वव्याप्त कलीसिया कभी कम, कभी ज्यादा दिखाई देती है, और विशेष

कलीसिया, जो विश्वव्यापक कलीसिया की सदस्य है, कम और ज्यादा शुद्ध है, उस सुसमाचार के सिद्धान्त के अनुसार, जिसे सिखाया जाता और अपनाया जाता है और धार्मिक अनुष्ठान के प्रबंधन के अनुसार, सामूहिक आराधना ज्यादा और कम शुद्धता से उनमें की जाती है।

5. स्वर्ग के नीचे शुद्ध कलीसियाएं, मिश्रण और खामियों के आधीन है। कुछ कलीसियाएं तो इतनी पतित हो गयी हैं, कि वे मसीह की कलीसिया नहीं रही वरन् शैतान की आराधनालय है, फिर भी पृथ्वी पर हमेशा एक कलीसिया रहेगी, जो परमेश्वर की आराधना उसकी इच्छा के अनुसार करती रहेगी।

6. यीशु मसीह के अतिरिक्त कोई भी कलीसिया का मुखिया (सर्वोच्च) नहीं है। इसलिए रोम का धर्माअध्यक्ष किसी भी प्रकार से कलीसिया का मुखिया नहीं है।

अध्याय 26
संतों की सहभागिता (संगति)

1. सभी संत, यीशु मसीह, उनके सिर (मुखिया) से जुड़े हैं, उसकी आत्मा और विश्वास से वे उसके साथ, उसके अनुग्रह, दुःख, मृत्यु, पुनरुत्थान और महिमा में सहभागी होते हैं, और एक दूसरे के साथ प्रेम में एक (जुड़ते) हो जाते हैं। वे एक दूसरे के वरदान में और अनुग्रह में संगति रखते हैं, और सामूहिक और व्यक्तिगत फर्ज पूरा करने के लिए एक दूसरे के प्रति दायित्व को पूरा करते हैं, इससे आन्तरिक और बाहरी मनुष्यत्व दोनों में पारम्परिक भलाई के लिए उनकी मदद होती है।

2. संत अपने कर्तव्य से बाध्य होते हैं, कि परमेश्वर की आराधना में पवित्र सहभागिता और संगति बनाये रखे और इस प्रकार और दूसरी आत्मिक सेवाओं से उनका पारम्परिक आत्मिक विकास होता है, और एक दूसरे की बाहरी बातों में उनकी कई योग्यताओं और जरूरत के अनुसार कार्य भार संभालते हैं। यह संगति जब परमेश्वर अवसर प्रस्तुत करता है तो उन सभी को, सभी जगह पर जो यीशु मसीह का नाम लेते हैं, पहुँचायी जाती है।

3. संगति, जो संत मसीह के साथ रखते है। उन्हें किसी प्रकार से यीशु के ईश्वरत्व में बुद्धिमान, शामिल होने वाले नहीं बनाती, न ही किसी भी तरह मसीह के समान करती है। ऐसा कुछ भी मानना अनादरपूर्ण, बुरा और निन्दा योग्य है। न ही उनकी एक दूसरे के साथ संगति किसी व्यक्ति का शीर्षक, चीजों और सम्पत्ति के स्वामित्व को अलग करती और छीनती है।

अध्याय 27

संस्कार

1. संस्कार अनुग्रह की वाचा, के पवित्र चिन्ह और मोहर (गारन्टी) है। जो परमेश्वर द्वारा स्थापित होते हैं कि मसीह और उसके फायदे को प्रस्तुत करे और हमारी रुचि उसमें पक्की करते हैं, और हममें जो कलीसिया के हैं, और बचे हुए संसार में दिखाई देने वाले अन्तर को प्रगट करते हैं और सच्चाई से उन्हें/हमें परमेश्वर के वचन के अनुसार मसीह में परमेश्वर की सेवा में संलग्न करते हैं।
2. हर एक संस्कार का एक आत्मिक सम्बन्ध (अर्थ) होता है, अथवा चिन्ह और उसके अर्थ में संस्कारी एकता होती है और जब यह पूरा होता है, तब एक के नाम और प्रभाव का श्रेय दूसरे को दिया जाता है।
3. वह अनुग्रह जो संस्कार के सही इस्तेमाल में अथवा द्वारा प्रगट होता है, उनकी अपनी सामर्थ से प्रदान नहीं होता, न ही संस्कार का प्रभाव देने वाले की ईश्वर भक्ति/पवित्रता और इच्छा पर आश्रित होता है। परंतु आत्मा के कार्य, वचन, उपदेश, अधिकार, इनके इस्तेमाल और फायदे का वादा, संस्कार उचित प्रकार से लेने वालों पर आश्रित है।
4. सुसमाचार में प्रभु यीशु मसीह के द्वारा सिर्फ दो संस्कार नियुक्त किये गये हैं। जो बपतिस्मा और प्रभु भोज है। इनमें से कोई भी किसी के द्वारा नहीं दिया जा सकता, परंतु वचन के सेवक के द्वारा जिसे न्यायसंगत नियुक्त किया गया हो।
5. पुराने नियम के संस्कार, आत्मिक बातों/अर्थों में नये नियम के संस्कार के गुणों में एक समान थे, उनके चिन्ह, अर्थ और प्रगटीकरण में।

अध्याय 28

बपतिस्मा

1. बपतिस्मा नये नियम का संस्कार है, जो यीशु मसीह द्वारा नियुक्त किया गया, सिर्फ उनके लिए ही नहीं, जो इसे सच्चाई से लेकर दिखाई देने वाली कलीसिया में शामिल होते हैं। वरन् उनके लिये यह अनुग्रह की वाचा का चिन्ह और मोहर भी है, कि ये मसीह में जोड़े गये, नये जीवन पाये, पापों की क्षमा और यीशु मसीह द्वारा परमेश्वर को दिये गये हैं कि वे नये जीवन की चाल चलें। यह संस्कार जो मसीह ने नियुक्त किया, जो उसकी कलीसिया में निरन्तर संसार के अंत तक बना रहेगा।
2. बाहरी तत्व जो इस संस्कार में इस्तेमाल होता है, पानी है जिसमें बपतिस्मा पिता, पुत्र और पवित्र आत्मा के नाम में, न्याय संगत बुलाये गये सुसमाचार के सेवक द्वारा दिया जाता है।
3. व्यक्ति को पानी में डुबकी लगाना अनिवार्य नहीं है, वरन् पानी व्यक्ति पर डालकर अथवा छिड़क कर सही प्रकार से बपतिस्मा दिया जाता है।
4. सिर्फ वे ही नहीं, जो अपने मुँह से विश्वास में मसीह की आज्ञाकारिता अंगीकार करते हैं, वरन् विश्वास करने वाले माता पिता के बच्चों को भी बपतिस्मा दिया जाता है।
5. यद्यपि इस संस्कार का तिरस्कार अथवा अनदेखी करना एक बड़ा पाप है। फिर भी अनुग्रह और उद्धार इससे अविभाजित हो न सके ऐसे जुड़े नहीं हैं, कि कोई भी व्यक्ति इनके बिना उद्धार अथवा नया जीवन नहीं पा सकता, अथवा जो बपतिस्मा लिए हुए हैं। बिना सन्देह के नया जीवन प्राप्त करते है ऐसा नहीं है।
6. बपतिस्मों का प्रभाव उसी समय लागू हो, जब इसे दिया जाता है ऐसा जरूरी नहीं है। फिर भी सही प्रकार से इस धार्मिक अनुष्ठान के इस्तेमाल पर, वायदा किया हुआ अनुग्रह प्रस्तुत किया जाता है, वरन् वास्तव में प्रगट किया जाता है और पवित्र आत्मा के द्वारा (बड़े अथवा बच्चों) दिया जाता है। यह अनुग्रह परमेश्वर की स्वतंत्र और स्वेच्छा की इच्छा के अनुसार उसके नियुक्त समय पर उन्हें मिलता है।
7. बपतिस्मे का संस्कार किसी भी व्यक्ति को सिर्फ एक बार दिया जाता है।

अध्याय 29

प्रभु भोज

1. हमारा प्रभु यीशु जिस रात पकड़वाया गया, उसने अपने शरीर और लहू के संस्कार को स्थापित किया, जिसे प्रभु भोज कहा गया, कि यह संसार के अंत तक कलीसिया में लगातार उसकी मृत्यु में, उसके स्वयं के बलिदान को याद करते हुए मनाया जाना है, जो इस बात का प्रतीक है, उसके सारे फायदे, सच्चे विश्वासियों के लिए, यीशु में आत्मिक पोषण और उन्नति के लिए और उन सभी कार्यों में लगे रहने के लिए हैं, जो उसके (यीशु) हैं, कि वे यीशु के साथ और एक दूसरे के साथ संगति में बंध जाए, उसके शरीर के सदस्यों के समान।
2. इस संस्कार में मसीह ने अपने आपको पिता को अपर्ण नहीं किया, न ही जीवित और मृतकों के पापों का प्रायश्चित/छुटकारें के लिए वास्तविक बलिदान दिया, वरन् यह उसके अपने आपको, अपने आपसे, एक बार सभी के लिए क्रूस पर बलिदान दिया, की स्मृति/याद करने का साधन (माध्यम) है, और परमेश्वर की सभी सम्भावित स्तुति का आत्मिक बलिदान/चढ़ावा है। इसलिए लोगों का Popish

बलिदान अति घृणित हानिकारक है क्योंकि मसीह का बलिदान ही चुने हुए के पापों का एकमात्र प्रायश्चित है।

3. यीशु मसीह ने इस अधिनियम में अपने सेवकों को नियुक्त किया, कि वे उसके नियुक्ति के वचन लोगों में घोषित करें, रोटी और दाखरस के लिए प्रार्थना कर आशीषित करें, और उन्हें साधारण से पवित्र इस्तेमाल के लिए अलग करें, रोटी लेकर उसे तोड़ें, प्याले को लें। (वे स्वयं भी सम्मिलित हो) और दोनों को, सम्मिलित/(लेने आये) होने वालों को दें, परंतु जो उस समय सभा में उपस्थित न हो, उन्हें न दें।

4. एकान्त में लोगों, अथवा एक याजक से संस्कार स्वीकार करना, या अन्य किसी से, उसी प्रकार कप लोगों को न देना, इसकी आराधना करना और ऊँचा उठाना, प्रशंसा के लिए साथ में ले जाना, धार्मिक इस्तेमाल के लिए सुरक्षित रखना, सभी संस्कार के स्वभाव के और यीशु मसीह की ठहराये गये तरीके के विपरीत है।

5. इस संस्कार में बाहरी तत्व सही प्रकार से यीशु द्वारा ठहराये गये इस्तेमाल के लिए अलग किये जाते हैं। इनका क्रूस पर चढ़ाये गये यीशु से कुछ इस प्रकार का सम्बन्ध होता है, वास्तविक फिर भी सिर्फ संस्कारी, कई बार ये उस नाम से पुकारे जाते हैं जिनका ये प्रतिनिधित्व करते हैं, कि यीशु मसीह के शरीर और लहू को समझा जा सके, यद्यपि अपने तत्व (गुणों) और स्वभाव में ये रोटी और दाखरस ही, पहले के समान रहते हैं।

6. वह शिक्षा (सिद्धान्त) जो मानती है, कि रोटी और दाखरस के तत्व याजक के पवित्र करने, अथवा अन्य किसी प्रकार से, मसीह के शरीर और लहू में बदल जाते हैं। यह सिर्फ पवित्र शास्त्र के लिए ही घृणित नहीं, वरन् साधारण ज्ञान और तर्क के लिए भी निराशाजनक है। यह संस्कार के स्वभाव को अलग करता और कई प्रकार के अन्धविश्वास का कारण और मूर्ति पूजा को स्वीकार करता है।

7. इस संस्कार के बाहरी तत्व को स्वीकार करने वाले, इस संस्कार से विश्वास में आन्तरिक, वास्तव में यद्यपि सांसारिक और शारीरिक नहीं, वरन् आत्मिक रीति से क्रूस पर चढ़ाये गये यीशु की मृत्यु और उसके सभी लाभों को स्वीकारते और उससे तृप्त होते हैं। रोटी और दाखरस के साथ और आधीनता में, प्रभु यीशु का शरीर और रक्त सांसारिक और शारीरिक नहीं होता, फिर भी सत्यता में वरन् आत्मिकता से इस अनुष्ठान (अधिनियम) में विश्वासियों के विश्वास को प्राप्त होता है। जैसे तत्व अपने आप में उनकी बाहरी अनुभूति है।

8. यद्यपि अज्ञानी और दुष्ट/पापी मनुष्य इस संस्कार में बाहरी तत्व (रोटी और दाखरस)

को स्वीकार करते हैं, फिर वे इसमें प्रदर्शित बात को स्वीकार नहीं कर पाते, वरन इसे गलत रीति से लेने के द्वारा, प्रभु के शरीर और रक्त का दोष और अपना स्वयं का अभिशाप अपने ऊपर लाते हैं। इसलिए सभी अज्ञानी और दुष्ट मनुष्य जिस प्रकार वे उसकी संगति के योग्य नहीं है, वैसे ही वे प्रभु की मेज में अयोग्य है, जबकि वे इस पवित्र संस्कार में शामिल और स्वीकार किये जाते हैं तो यह मसीह के विरुद्ध घोर, घृणित, पाप है।

अध्याय 30

कलीसिया में अनुशासन (Of Church Censures)

1. यीशु मसीह कलीसिया का मुखिया और राजा है, जिसने कलीसिया के अधिकारियों के हाथों से कलीसिया की शासन प्रणाली नियुक्त की है, जो नागरिकों के न्यायधीश से अलग है।

2. इन अधिकारियों को स्वर्ग के राज्य की चाबियां सौंपी गई हैं, जिनके द्वारा उनके पास सामर्थ है, कि पाप को याद रखें और क्षमा कर दें, और परमेश्वर के राज्य को पश्चाताप न करने वाले के विरुद्ध बन्द कर दें, बन्धन और दोष लगाकर दोनों प्रकार से; और पश्चातापी पापी के लिए इसे खोल दें, सुसमाचार की सेविकाई और अवसर के अनुसार दोष मुक्त करके।

3. कलीसिया में अनुशासन अनिवार्य है, कि दोषी भाइयों को फिर से वापस लाया और जीता जा सके और दूसरों को उसी प्रकार की बुराई में पड़ने से रोका जाए और खमीर को शुद्ध किया जाए, कहीं ऐसा न हो कि वह पूरे ढेर को प्रभावित (दूषित) कर दे, ऐसा मसीह के सम्मान की महिमा के लिए, और सुसमाचार के पवित्र कार्य के लिए, परमेश्वर के क्रोध जो कलीसिया पर उचित रीति से आ सकता है, से बचने के लिए अनिवार्य है। यदि वे परमेश्वर की वाचा को तोड़ते (दु:खी करते) और उसकी मोहर को नुकसान पहुँचाते हैं, तो बुराई और हठ से दोषी और अधर्मी ठहरते हैं।

4. इसे अच्छी प्रकार से प्राप्त करने के लिए, चर्च के अधिकारियों को, उन्हें प्रभु भोज के संस्कार से कुछ समय के लिए निष्काषित और कलीसिया से उनके पाप के स्वभाव और दोष के अनुसार बहिष्कृत करना चाहिए।

अध्याय 31

कलीसिया की प्रबन्धन समिति

1. कलीसिया के अच्छे शासन और अधिक उन्नति के लिये कलीसिया में ऐसी सभा

होनी चाहिए जिन्हें Synod अथवा समिति कहा जाए। यह समिति किसी कलीसिया के देखभाल (निरीक्षक)करने वाले और अन्य अधिकारियों की होनी चाहिए। वे अपने पद के गुणों और सामर्थ, जो मसीह ने उन्हें उन्नति, विकास के लिये, न कि विनाश के लिये दिये हैं, इस प्रकार समिति नियुक्त करनी चाहिए, और उन्हें जितनी बार उचित लगे विचार विमर्श के लिए इकट्ठा होकर कलीसिया की भलाई के लिए कार्य करने चाहिए।

2. यह समिति के अधिकार में है, कि वह सेवाभाव से विश्वास के विवाद को और विवेक को निर्धारित करे, परमेश्वर की सामूहिक आराधना की उचित व्यवस्था के लिए नियम और नियन्त्रण निर्धारित करे, और कलीसिया का प्रबन्धन करे, गलत प्रबन्धन के विषय में शिकायत स्वीकार करे और अधिकार से उसका निर्धारण करें। यदि परमेश्वर के वचन अनुरूप सामंजस्य, आदर और समर्पण स्वीकार करना है सिर्फ उनका वचन के साथ सहमत होना ही नहीं, वरन् अधिकार जिसके लिए उन्हें बनाया गया है, परमेश्वर के अधिनियम के स्वरूप में जिसे उसने अपने वचन में नियुक्त किया है।

3. सभी समितियां प्रेरितों के समय से ही गलती करने योग्य है और बहुतों ने गलती की है। इसलिए इन समितियों को विश्वास और कार्य का नियम/आधार नहीं बना सकते, वरन् इस विषय में उन्हें सहायक के रूप में इस्तेमाल किया जाता है।

4. समिति को कलीसिया के अतिरिक्त अन्य बातों, विवादों में निष्कर्ष नहीं देना चाहिए और न ही नागरिकों के झमेले में पड़ना चाहिए, जो कि राष्ट्रमण्डल (देश के नियम) का काम है। फिर भी ये (समिति) अप्राकृतिक मामलों में नम्र निवेदन कर सकते अथवा विवेक की संतुष्टि के लिए सलाह दे सकते हैं। यदि नागरिक न्यायाधीश उनसे (समिति)सलाह मांगते हैं।

अध्याय 32

मृत्यु के पश्चात मनुष्य की स्थिति और मृतकों का पुनरुत्थान

1. मृत्यु के पश्चात् मनुष्य का शरीर मिट्टी में मिलकर नष्ट हो जाता है, परंतु उनकी आत्मा, जो न मरती है, न सोती है, जो अविनाशी है, परमेश्वर के पास वापस चली जाती है जिसने उसे दिया था, तब धर्मी की आत्मा पवित्रता में सिद्ध होकर ऊँचे स्वर्ग में जाती है, जहाँ वे परमेश्वर के सम्मुख प्रकाश और महिमा में रहकर अपने शरीर के पूर्ण छुटकारे का इन्तजार करती है, और अधर्मी की आत्मा (मृत्यु के पश्चात्) नरक में जहाँ वे घोर यातना सहती और पूर्ण अन्धकार में रहते हुए, न्याय के दिन

के लिये तड़फती रहती है। शरीर से आत्मा अलग होने के बाद, पवित्र शास्त्र इन दो स्थानों के अलावा अन्य स्थान के बारे में कुछ नहीं बताता।

2. अन्तिम दिन जो जीवित है, वे मृत्यु नहीं देखेंगे, वरन् वे परिवर्तित किए जाएंगे और मृतक उसी शरीर (यद्यपि फर्क गुणों) के साथ जिलाए जाएंगे, जो फिर से अपनी आत्मा के साथ हमेशा के लिए जोड़ दिये जायेंगे।

3. अधर्मियों के शरीर यीशु की सामर्थ से अनादर के लिए जिलाए जायेंगे, धर्मियों के शरीर उसकी आत्मा से, महिमा और उसकी अपनी महिमायुक्त शरीर के साथ सुख/आराम के लिए जिलाए जाएंगे।

अध्याय 33

अन्तिम न्याय

1. यीशु मसीह के द्वारा, जिसे पिता ने न्याय करने का सारा अधिकार दिया है। परमेश्वर ने एक दिन नियुक्त किया, जिस दिन वह धार्मिकता से यीशु मसीह द्वारा संसार का न्याय करेगा। उस दिन वह सिर्फ त्यागे हुए स्वर्गदूत का न्याय ही नहीं करेगा, वरन् वे सभी लोग जो पृथ्वी पर हुए हैं, यीशु मसीह के न्याय के सिंहासन के सामने अपने विचार शब्द, और कार्यों का हिसाब देने के लिए उपस्थित होंगे और जो कुछ उन्होंने अच्छा अथवा बुरा किया है, के अनुसार प्रतिफल प्राप्त करेंगे।

2. परमेश्वर का इस दिन को ठहराने का उद्देश्य है, कि वह चुने हुए के अनन्त उद्धार में अपनी दया की महिमा प्रगट करे और जो अधर्मी और अनाज्ञाकारी हैं, पापियों को नरक यातना देने में अपना न्याय प्रगट करे। तब जो धर्मी है अनन्तकाल का जीवन पाएंगे और भरपूरी का आनन्द और ताजगी जो प्रभु की उपस्थिति में मिलती है पायेंगे, परंतु अधर्मी जो परमेश्वर को नहीं जानते और यीशु के सुसमाचार को नहीं मानते, अनन्तकाल की यातना में भेजे जाएंगे और परमेश्वर की उपस्थिति और उसकी सामर्थ की महिमा से सदा के लिए दूर किये जाएंगे।

3. जैसा कि मसीह ने हमको निश्चयता के साथ न्याय के दिन के विषय में बताया है, कि सभी मनुष्य को पाप करने से रोकें और अपने लोगों को संकट के समय शांति प्रदान करें, इसलिए उसने इस दिन को मनुष्य से अज्ञात रखा है, कि वे सारी सांसारिक सुरक्षा का त्याग करके हमेशा तैयार रहे, क्योंकि वे नहीं जानते कब प्रभु आ जाएगा, और हमेशा तैयार रहें कि कह सके यीशु मसीह आ, जल्दी आ-आमीन।

●

विस्तृत प्रश्नावली

The Larger Catechism

प्रश्न 1 : मनुष्य जीवन का मुख्य और सबसे बड़ा उद्देश्य क्या है?

उत्तर : मनुष्य जीवन का मुख्य और सबसे बड़ा उद्देश्य है, कि वह परमेश्वर की महिमा करे और पूर्णता हमेशा उसमें आनन्द मनाए।

प्रश्न 2 : कैसे पता चलता है कि परमेश्वर है ?

उत्तर : मनुष्य में प्रकृति का प्रकाश/ज्ञान, और परमेश्वर के कार्य साफ रीति से बताते है कि परमेंश्वर है, परन्तु उसका वचन और आत्मा मनुष्यों के उद्धार के लिए, परमेश्वर को पूर्णता और प्रभावी ढ़ग से प्रगट करते है।

प्रश्न–3 : परमेश्वर का वचन क्या है?

उत्तर : पुराने और नये नियम का पवित्र शास्त्र परमेश्वर के वचन है, जो आज्ञाकारिता और विश्वास का एकमात्र नियम है।

प्रश्न–4 : यह कैसे पता चलता है कि पवित्र शास्त्र परमेश्वर के वचन हैं?

उत्तर : अपने गौरव और पवित्रता से, पवित्र शास्त्र स्वंय प्रगट करते है कि वे परमेश्वर के वचन हैं। पवित्र शास्त्र के सभी हिस्सों की सहमति, ओर पूर्णता का आशय, उद्देश्य जिससे पूर्ण महिमा परमेश्वर की है, उनकी पापी को दोषी ठहराने और उन्हें बदलने की सामर्थ, विश्वासियों को तसल्ली और उन्हें उद्धार में मजबूती देने की सामर्थ से पता चलता है, कि ये परमेश्वर के वचन है। परन्तु पवित्र शास्त्र से और इसके द्वारा, परमेश्वर का आत्मा मनुष्य के हृदय में गवाही देता है, और पूर्णता आश्वस्त करता है कि पवित्र शास्त्र पूर्णता परमेश्वर का वचन हैं।

प्रश्न 5 : पवित्र शास्त्र मुख्यत: क्या सिखाता है?

उत्तर : पवित्र शास्त्र मुख्यत: सिखाता है, कि मनुष्य को परमेश्वर बारे में क्या विश्वास करना है, और परमेश्वर मनुष्य से क्या चाहता है।

मनुष्य को परमेश्वर के बारे में क्या विश्वास करना चाहिए

प्रश्न 6 : पवित्र शास्त्र परमेश्वर के बारे में क्या प्रगट करता है?

उत्तर : पवित्र शास्त्र परमेश्वर के बारे में, कि परमेश्वर क्या है, परमेश्वर में व्यक्ति,

उसके संकल्प/निणर्य और उसके निर्णयों का सम्पादन, को प्रगट करता है।

प्रश्न 7 : परमेश्वर क्या है?

उत्तर : परमेश्वर आत्मा है, अपने में और अपने आप के अस्तित्व, महिमा, आशीषों और सिद्धान्तों में असीमित, अपरम्पार है। सम्पूर्ण, अनन्त, अपरिवर्तनीय, समझ से परे, सब जगह उपस्थित, सर्वसामर्थी, सब बातों का जानने वाला, बुद्धिमानी, अति पवित्र, पूर्ण न्यायी, अति करूणामयी ओर अनुग्रकारी, अत्यन्त धैर्यवान और भलाई और सत्यता में अपार है।

प्रश्न 8 : क्या एक के अतिरिक्त और कई परमेश्वर है?

उत्तर : नहीं ! केवल एक ही एकमात्र, जीवित और सच्चा परमेश्वर है।

प्रश्न 9 : परमेश्वरत्व में कितने व्यक्ति हैं?

उत्तर : परमेश्वरत्व में तीन व्यक्ति हैं, पिता, पुत्र और पवित्र आत्मा,और ये तीनों, तत्वों में समान, सामर्थ और महिमा में समान, एक सच्चा अनन्तकालीन परमेश्वर है। यद्यपि अपने व्यक्तिगत गुणों में भिन्न है।

प्रश्न 10 : परमेश्वरत्व में तीनों व्यक्ति के व्यक्तिगत गुण क्या है?

उत्तर : पिता पुत्र को अग्रसर करता है और पुत्र पिता का इकलौता है और पवित्र आत्मा पिता और पुत्र से, अनन्तकाल से अग्रसर है।

प्रश्न 11 : यह कैसे पता चलता है, कि पुत्र और पवित्र आत्मा, पिता के साथ समानता में परमेश्वर है?

उत्तर : पवित्र शास्त्र उनको ऐसे नाम, गुण, कार्य और आराधना देकर जो सिर्फ परमेश्वर के लिए उपयुक्त है, प्रगट करता है, कि पुत्र और पवित्र आत्मा, पिता के साथ समानता में परमेश्वर है।

प्रश्न 12 : परमेश्वर के संकल्प/निर्णय क्या हैं?

उत्तर : परमेश्वर के निर्णय, उसकी भली इच्छा के, स्वतंत्र और पवित्र कार्य है, जिनके द्वारा उसने अनन्तकाल से, अपरिवर्तनीय रीति से जो कुछ घटित होता है, विशेषकर स्वर्गदूतों और मनुष्य के बारे में उसे अपनी महिमा के लिए पहले से ठहराया है।

प्रश्न 13 : परमेश्वर ने विशेषकर स्वर्गदूतों और मनुष्यों के लिए क्या निर्णय लिया है?

उत्तर : परमेश्वर ने अपने अनन्त और अपरिवर्तनीय निर्णय से, अपने प्रेम के कारण, अपने महिमामय अनुग्रह की स्तुति के लिए जो अपने समय पर प्रगट होता है,

उसने कुछ स्र्गदूतों को महिमा के लिए चुना, और मसीह में कुछ मनुष्य को अनन्त जीवन के लिए चुना, और अपनी प्रभुता की सामर्थ और अपनी स्वयं की इच्छा की सलाह/सम्मति अनुसार (जिससे वह किसी पर कृपा करता या नहीं करता, अपनी पसन्द के अनुसार) बचे हुओ को उनके पापों के कारण पहले से अनादर और क्रोध के लिए ठहराया, कि उसके न्याय के महिमा की स्तुति हो।

प्रश्न 14 : परमेश्वर कैसे अपने निर्णय को क्रियान्वित करता है?

उत्तर : परमेश्वर सृष्टि की रचना और इसकी देखभाल के कार्य में, अपने अडिग पूर्वाज्ञान के अनुसार और अपनी इच्छा की स्वतंत्र और अपरिवर्तनीय सलाह के द्वारा अपने निर्णय का सम्पादन करता है।

प्रश्न 15 : सृष्टि का कार्य क्या है?

उत्तर : सृष्टि का कार्य है, कि जिसमें परमेश्वर ने आदि में अपने वचन की सामर्थ से संसार और जो कुछ इसमें है, उसे बिना किसी (शून्य) से छः दिनों में, अपने लिए बनाया और सब बहुत अच्छा था।

प्रश्न 16 : परमेश्वर ने स्वर्गदूतों को कैसे बनाया ?

उत्तर : परमेश्वर ने सभी स्वर्गदूतों को अविनाशी, पवित्र, ज्ञान में उत्तम, अति सामर्थी बनाया, कि वे उसकी आज्ञा मानें और उसके नाम की स्तुति करें, फिर भी वे परिवर्तन के आधीन थे।

प्रश्न 17 : परमेश्वर ने मनुष्य की सृष्टि किस प्रकार की?

उत्तर : परमेश्वर ने सभी प्राणियों को बनाने के पश्चात, मनुष्य को पुरुष और स्त्री के रूप में बनाया, उसने मनुष्य को पृथ्वी की मिट्टी और स्त्री को मनुष्य की पसली से बनाया, उसने उन्हें जीवित, अविनाशी तार्किक आत्मा प्रदान की, ज्ञान, धार्मिकता और पवित्रता में उसने उन्हें अपने स्वरूप में सृजा, परमेश्वर की व्यवस्था उनके हृद पर लिखी थी, उनमें व्यवस्था को पूरा करने, और सृष्टि पर प्रभुता करने की सामर्थ थी, यद्यपि वे इसे तोड़ सकते थे।

प्रश्न 18 : परमेश्वर की कृपादृष्टि के कार्य क्या है?

उत्तर परमेश्वर की कृपा दृष्टि (व्यवस्था) है, कि वह अति पवित्रता, बुद्धि और सामर्थ से सभी प्राणियों को सुरक्षित रखते हुए, उनके सभी कार्यो पर अपनी महिमा के लिए प्रभुता करता है।

प्रश्न-19 : स्वर्गदूतो के लिये परमेश्वर की कृपा दृष्टि (व्यवस्था) क्या है?

उत्तर परमेश्वर ने अपनी व्यवस्था में कुछ स्वर्गदूतों को, पाप और नरक यातना में पड़ने दिया, और अपनी महिमा के लिये, उन्हें और उनकें पाप को निधार्रित किया, और बाकी स्वर्गदूतों को पवित्रता और आनन्द में ठहराया, और उन्हे अपनी महिमा के लिए, अपनी सामर्थ, दया और न्याय के प्रबन्ध के लिये नियुक्त किया।

प्रश्न-20 : परमेश्वर की व्यवस्था (कृपा दृष्टि) मनुष्य के लिये क्या थी, उस स्थिति में जिसमें उन्हें बनाया गया था?

उत्तर जिस स्थिति में मनुष्य को बनाया गया, परमेश्वर ने उसे स्वर्ग (एदेन की वाटिका) में रखा, और इसकी देखभाल के लिये नियुक्त किया, और सब प्राणियों पर उसे अधिकार दिया, उसकी मदद के लिये विवाह ठहराया, और अपने साथ संगति प्रदान की, और उसके लिए विश्राम दिन भी ठहराया, और व्यक्तिगत, परिपूर्ण और निरंतर आज्ञाकारिता की शर्त पर, अपने साथ जीवन की वाचा का वायदा किया, जिसका प्रमाण जीवन का वृक्ष था, और भले, बुरे के ज्ञान के वृक्ष से खाने को मना किया, जिसका दण्ड मृत्यु को ठहराया।

प्रश्न-21 : जहाँ परमेश्वर ने उनकी रचना की और रखा क्या मनुष्य वहाँ बना रहा?

उत्तर हमारे पहले माता-पिता जिन्हें स्वतन्त्र इच्छा दी गई, शैतान की परीक्षा में पड़कर, परमेश्वर की आज्ञा तोड़ कर, मना किये हुए वृक्ष का फल खाया, परिणाम स्वरूप पवित्रता की स्थिति से दूर हो गये। जिसमें उनकी सृष्टि हुयी थी।

प्रश्न 22 : क्या सभी मनुष्य पहले पाप (आज्ञा तोड़ने) में सम्मिलित हैं?

उत्तर : परमेश्वर ने वाचा, आदम के साथ स्थापित की, यह वाचा सिर्फ आदम, अपने आप के लिए ही नहीं, वरन उसके पूरे वंशज और उसकी आने वाली पूरी पीढ़ी के लिये थी, इसलिए आदम में सभी ने पाप किया और आज्ञा तोड़कर उसके पाप में सम्मिलित हुए।

प्रश्न 23 : पाप (पतन) मनुष्य को किस अवस्था में ले आया?

उत्तर- पतन मनुष्य को पाप और दुःख की अवस्था में ले आया।

प्रश्न 24 : पाप क्या है?

उत्तर : पाप परमेश्वर की आज्ञा (व्यवस्था) को तोड़ना अथवा न मानना है, जिसे परमेश्वर ने मनुष्य को एक नियम (आज्ञा) के स्वरूप दिया।

प्रश्न 25 : मनुष्य पतन से जिस पाप की अवस्था में गया वह क्या है?

उत्तर : पाप की अवस्था, जिसमें मनुष्य पतित हुआ, आदम के पहले पाप का दोष है। धार्मिकता जिसमे वह सृजा गया, अपने भ्रष्ट स्वभाव से वह इससे दूर और अयोग्य हो गया। और आत्मिक अच्छाई की अवस्था के विपरीत होकर पूर्णता भ्रष्टता की ओर झुक गया, जिसे साधारणयत: मौलिक पाप कहा जाता है, जिससे सारे वास्तविक पाप अग्रसर होते हैं।

प्रश्न 26 : किस प्रकार मौलिक (असली) पाप हमारे पहले आदि माता-पिता से उनके वंशज में पहुँचता है ?

उत्तर : मौलिक पाप स्वभाविक पीढ़ी के द्वारा, हमारे आदी माता पिता से उनके वंशजों में पहुँचता है। इस प्रकार उनसे जो भी पीढ़ी आगे बढ़ती है। पाप में पैदा होती है।

प्रश्न 27 : पतन मनुष्य के जीवन में कौन से दु:ख लेकर आया?

उत्तर : पतन (पाप) की वजह से मनुष्य की, परमेश्वर के साथ संगति समाप्त हो गयी, ओर परमेश्वर का श्राप और क्रोध मनुष्य पर आ गया। इसलिए हम (मनुष्य) स्वभाव से क्रोध की सन्तान, शैतान के गुलाम है। और इस संसार और आने वाले समय में दण्ड के हकदार है।

प्रश्न 28 : इस संसार में पाप के दण्ड क्या है?

उत्तर : इस संसार में पाप का आन्तरिक दण्ड है, मस्तिष्क का अन्धापन, भ्रष्ट चेतना, बहकाव, हृदय की कठोरता, चेतना में भयानकता और बुरी चाहत है। और बाहरी दण्ड है, परमेश्वर का श्राप हमारी वजह से प्राणियों पर और हर एक बुराई जो हमारे शरीरों, नामों, स्थिति, सम्बन्ध कार्यों पर आती है। अन्तत: मृत्यु।

प्रश्न 29 : आने वाले युग में पाप का दण्ड क्या है?

उत्तर : आने वाले युग में पाप का दण्ड है। परमेश्वर की आनन्दमयी उपस्थिति से अनन्तकाल के लिये अलग होना, और आत्मा और शरीर की नरकीय आग में हमेशा के लिये अति दु:खदायी यातना।

प्रश्न 30 : क्या परमेश्वर ने सभी मनुष्य को पाप की स्थिति में नाश होने के लिये छोड़ दिया है?

उत्तर : परमेश्वर में मनुष्य को पाप और दु:ख की स्थिति में, जिसमें वे पहली वाचा जिसे कार्य की वाचा कहा जाता है, तोड़ कर पतित हुए, नाश होने के लिये छोड़ा नहीं, परन्तु सिर्फ अपने प्रेम और दया के वशीभूत चुने हुओं को इसमें से छुड़ाकर, दूसरी वाचा जिसे अनुग्रह की वाचा कहा जाता है के द्वारा उद्धार की स्थिति में लाता है।

प्रश्न 31 : अनुग्रह की वाचा किसके साथ (बनायी) थी।

उत्तर : अनुग्रह की वाचा, दूसरे आदम मसीह के साथ बनायी थी। और उसमें सभी चुने हुओं के साथ।

प्रश्न 32 : दूसरी वाचा में परमेश्वर का अनुग्रह किस प्रकार प्रगट होता है?

उत्तर : परमेश्वर का अनुग्रह, दूसरी वाचा में इस प्रकार प्रगट होता हैं, कि उसने उपहार स्वरूप, पापियों को एक बिचवईया प्रदान किया, और उसमें जीवन और उद्धार का मार्ग खोला। उनमे विश्वास की चाहत की-सभी चुनों हुओं को पवित्र आत्मा प्रदान की कि वह उनमें विश्वास, और पूर्ण बचाने वाले अनुग्रह को पूरा करे, और उन्हें इस योग्य करे कि वे पवित्र आज्ञाकारिता के द्वारा विश्वास की सच्चाई, और परमेश्वर के प्रति धन्यवाद का प्रमाण प्रस्तुत करे, और जिस प्रकार उन्हें उद्धार के लिये नियुक्त किया गया है, प्रगट करे।

प्रश्न 33 : क्या अनुग्रह की वाचा का प्रबन्धन हमेशा एक ही प्रकार से ही हुआ?

उत्तर : अनुग्रह की वाचा का प्रबन्धन हमेशा एक सा नहीं था, इसका प्रबन्धन पुराने नियम के समय में नये नियम के समय से, अलग था।

प्रश्न 34 : पुराने नियम के समय में अनुग्रह की वाचा का प्रबन्धन किस प्रकार से किया गया?

उत्तर : पुराने नियम के समय, अनुग्रह की वाचा का प्रबन्धन वायदों, भविष्यवाणियाँ बलिदान, खतना, फसह का पर्व, और अन्य पर्व, जो सभी आने वाले मसीह का प्रतिबिम्ब थे, के द्वारा हुआ। उस समय ये चुने हुओं का मसीह पर विश्वास, जिसके द्वारा पूर्ण पापों से छुटकारा और अनन्त उद्धार मिलता है, के लिए पर्याप्त थी।

प्रश्न 35 : किस प्रकार से अनुग्रह की वाचा नये नियम में प्राप्त होती है?

उत्तर : नये नियम के समय में जब मसीह प्रगट हो गया, अनुग्रह की वाचा का प्रबन्धन-वचन के प्रचार और बपातिस्मे और प्रभु भोज के संस्कार के द्वारा

होता है। जिनमें अनुग्रह और उद्धार ज्यादा पूर्णता, प्रमाण और प्रभावी ढंग से सभी देशों के लिए प्रगट होता है।

प्रश्न 36 : अनुग्रह की वाचा का बिचवइया कौन है?

उत्तर अनुग्रह की वाचा का एक मात्र बिचवइया प्रभु यीशु मसीह है, जो परमेश्वर का अनन्तकालीन पुत्र, सभी बातों में एक पिता के बराबर है, समय के पूरा हाने पर मनुष्य बन गया और जो परमेश्वर और मनुष्य था और निरन्तर है, और हमेशा दो भिन्न स्वभाव और एक व्यक्ति है।

प्रश्न 37 : मसीह किस प्रकार परमेश्वर का बेटा होते हुए मनुष्य बन गया?

उत्तर : परमेश्वर का पुत्र, अपने आप शरीर और तार्किक आत्मा लेकर, पवित्र आत्मा से मरियम में गर्भधारण करके, उससे जन्म लिया, फिर भी पाप मुक्त था इस प्रकार मनुष्य बन गया।

प्रश्न 38 : यह क्यों जरूरी था कि बिचवइया परमेश्वर हो ?

उत्तर : यह जरूरी था बिचवईया परमेश्वर हो, ताकि वह परमेश्वर के असीमित क्रोध के आगे, और मृत्यु की सामर्थ के आगे, मनुष्य स्वभाव को स्थिर रख सके, और अपने दु:खों को, आज्ञाकारिता, विचवईये की प्रार्थना को मूल्य दे सकें, और प्रभावी बनायें, और परमेश्वर के न्याय को सन्तुष्ट करें, उसका पक्ष हासिल करें, विशेष लोगों को खरीदे, उन्हें अपनी आत्मा दे, उनके सभी दुश्मनों को नष्ट करें और उन्हें अनन्तकालीन उद्धार प्रदान करें।

प्रश्न 39 : यह क्यों जरूरी था कि बिचवइया एक मनुष्य हो?

उत्तर : यह जरूरी था कि बिचवइया एक मनुष्य हो, ताकि वह हमारे स्वभाव को प्राप्त करे, व्यवस्था को पूरा करे, दु:ख उठाए और हमारे स्वभाव में हमारे लिए प्रार्थना करें। हमारी कमजोरियों को जान सके, कि हम दततक पुत्र स्वीकार किये जाए, और हम तसल्ली प्राप्त करे, और बहादुरी से अनुग्रह के सिंहासन तक पहुँच सके।

प्रश्न 40 : यह जरूरी क्यों था कि बिचवइया एक ही व्यक्ति में परमेश्वर और मनुष्य दोनों हो?

उत्तर : यह जरूरी था कि बिचवइया, जो परमेश्वर और मनुष्य का समझौता कराने वाला है, स्वयं भी परमेश्वर और मनुष्य एक ही हो, ताकि हर एक स्वभाव का कार्य हमारे लिए परमेश्वर को स्वीकार हो। और हम समझ सके कि यह पूर्ण व्यक्ति का कार्य है।

प्रश्न 41 : हमारे बिचवइये को यीशु क्यों कहा गया?

उत्तर : हमारे बिचवइये को यीशु कहा गया, क्योंकि वह अपने लोगों का उनके पाप से उद्धार देता है।

प्रश्न 42 : हमारे बिचवइये को मसीह क्यों कहा गया?

उत्तर : हमारे बिचवइये को मसीह कहा गया, क्योंकि वह माप से बढ़कर पवित्र आत्मा द्वारा अभिषिक्त किया गया, अलग किया गया और पूरा अधिकार और योग्यता से परिपूर्ण हुआ, कि वह अपनी कलीसिया का भविष्यद्वक्ता याजक और राजा बन सके, अपनी अपमान (अवमानना) और महिमा दोनों स्थिति में।

प्रश्न 43 : मसीह किस प्रकार भविष्यद्वक्ता के कार्य का पूरा करते है?

उत्तर : मसीह भविष्यद्वक्ता के कार्यों का कार्यांवित करते हैं। वह अपनी आत्मा और वचन से, हर काल/युग में, प्रबधन के विभिन्न प्रकार को कलीसिया पर प्रगट करते है। कि परमेश्वर की सम्पूर्ण इच्छा, सभी बातों में, उनकी बढ़ोत्तरी और उद्धार के लिए प्रगट हो जाए।

प्रश्न 44 : मसीह किस प्रकार एक याजक के पद के कार्य को करते हैं?

उत्तर : मसीह याजक के कार्य को, अपने आपको, परमेश्वर के लिए दोषमुक्त बलिदान करके प्रस्तुत किया, कि वह उसके लोगों के पापों का प्रायश्चित करें और निरन्तर उनके लिए प्रार्थना करते हुए, पूरा करते हैं।

प्रश्न 45 : मसीह किस प्रकार से एक राजा के कार्य को कार्यान्वित करते हैं?

उत्तर : मसीह, संसार में से अपने लिए लोगों को बुलाते है और उन्हें अधिकार, व्यवस्था, और उनकी निन्दा करते है, जिससे वह उनपर प्रभुता करते है, और अपने चुने हुओं पर उद्धार का अनुग्रह प्रदान करते हैं, उनकी आज्ञाकारिता का प्रतिफल देते है। और उनके पापों को सुधारते है। परीक्षा और दु:खों में उन्हें सुरक्षा और सहायता देते हैं। उनके शत्रु पर विजय दिलाते है। सभी बातों को अपनी महिमा के लिए करते है। और शेष जो परमेश्वर को नहीं जानते और सुसमाचार को नहीं मानते, उनसे बदला लेते है। इस प्रकार मसीह राजा के कार्य को पूरा करते है?

प्रश्न 46 : मसीह की अवमानना (अपमान) की अवस्था क्या थी?

उत्तर : मसीह के अपमान की अवस्था वह थी, जहाँ उसने हमारे लिए अपनी महिमा का त्याग कर, अपने आप एक दास का स्वरूप धारण किया,

गर्भधारण और जन्म, जीवन, मृत्यु और मृत्यु के पश्चात, पुनरुत्थान से पहले की अवस्था।

प्रश्न 47 : मसीह ने किस प्रकार अपने आपको गर्भावस्था और जन्म लेने में दीन किया?

उत्तर : मसीह ने, जो अनन्तकाल से परमेश्वर का पुत्र था, हमेशा परमेश्वर के सीने में था, अपने आपको गर्भावस्था और जन्म लेकर दीन किया, कि जब समय आया वह मनुष्य का पुत्र, स्त्री से बनाया गया और उससे जन्म लिया और विभिन्न परिस्थितियों में, साधारण से ज्यादा शर्मीन्दगी सही, इस प्रकार उसने अपने आपको दीन किया।

प्रश्न 48 : मसीह ने अपने जीवन में कैसे अपने आपको दीन (नीचे) किया ?

उत्तर : मसीह ने अपने आपको, व्यवस्था के आधीन किया, जिसे उसने पूर्णता पूरा किया और संसार के तिरस्कार, शैतान की परीक्षा, शरीर की कमज़ोरी जो मनुष्य के लिए स्वभाविक है, का विरोध सहा और सामना किया। विशेषकर गिरी हुए स्थिति में रहे। इस प्रकार उन्होंने (मसीह ने) जीवन में अपने आपको दीन किया।

प्रश्न 49 : मसीह ने अपनी मृत्यु में किस प्रकार अपने आपको दीन किया?

उत्तर : मसीह, यहूदा द्वारा पकड़वाया, अपने चेलो ने उसे छोड़ दिया, संसार ने उसकी हंसी उड़ाई और छोड़ दिया, पिलातुस ने उसे दोषी ठहराया, यातना देने वालों ने उसे दु:ख पहुँचाया, मृत्यु के खौफ से और अन्धकार की शक्तियों से संघर्ष किया, परमेश्वर के क्रोध को महसूस किया और सहा, अपने जीवन को पाप के लिये बलिदान कर दिया, और क्रूस की दर्दनाक, शर्म और श्रापित मृत्यु को प्राप्त किया। इस प्रकार उसनें मृत्यु में अपने आपको दीन किया।

प्रश्न 50 : मृत्यु के पश्चात मसीह की दीनता किन बातों में निहित है?

उत्तर : मृत्यु के बाद मसीह को दफनाया गया, और वह मृतकों की अवस्था में मृत्यु के अधीन रहा, जिसे कहा गया कि वह नरक में भेजा गया, इस प्रकार मृत्यु के पश्चात भी उसने अपने आपको दीन बनाए रखा।

प्रश्न 51 : मसीह की प्रतिष्ठा (महिमा) की अवस्था कौन सी थी?

उत्तर : मसीह की प्रतिष्ठा की अवस्था पुनरुत्थान, स्वर्ग पर उठाया जाना, पिता के दाहिने बैठना, और दोबारा संसार के न्याय के लिये आना है।

प्रश्न 52 : मसीह किस प्रकार पुनरुत्थान से प्रतिष्ठित (महिमा) किया गया?

उत्तर : मसीह ने पुनरुत्थान के द्वारा महिमा पायी, जिसमें वह मृत्यु में नाश नहीं हुआ, (जिसमें उसे रखा नहीं जा सकता था) जिस शरीर में उसने दु:ख उठाया उसी शरीर के साथ (परन्तु अब शरीर अविनाशी और जीवन की कमजोरियों से मुक्त था) आत्मा को जोड़ा, और अपनी सामर्थ से मृतकों में से तीसरे दिन जी उठा, अपने आपको पिता का पुत्र घोषित किया, पिता के न्याय को सन्तुष्ट किया, मृत्यु को अप्रभावी किया, और उसके पास इसकी सामर्थ थी, और वह जीवित और मृतकों का प्रभु बना, कलीसिया के प्रमुख के रूप में, जो कुछ उसने किया, कलीसिया को धर्मी ठहराने के लिये, अनुग्रह में जीवित किया, शत्रु के विरुद्ध मदद, और अन्तिम/न्याय के दिन उनके पुनरुत्थान का आश्वासन दिया, इस प्रकार अपने पुनरूत्थान से उसने अपनी महिमा की ।

प्रश्न 53 : अपने को ऊपर उठाए जाने में किस प्रकार मसीह को महिमा मिली ?

उत्तर : मसीह ने ऊपर उठाये जाने में अपनी महीमा प्रकट की, जिसमें पुनरुत्थान के बाद प्रेरितों को दिखाई देता रहा, और उनसे बातचीत की। उनसे परमेश्वर के राज्य के विषय में बातें की, और उन्हें आज्ञा दी कि सुसमाचार का प्रचार सभी राज्यों में करें। पुनरुत्थान के चालीस दिन पश्चात वह हमारे स्वभाव में और हमारा प्रतिनिधि बनकर, शत्रुओं पर विजयी होते हुए सबके सामने स्वर्ग पर चला गया। जहाँ वह मनुष्यों के लिए उपहार प्राप्त करता है और हमारी उम्मीदों को अन्त तक बनाए रखते हुए, हमारे लिए स्थान तैयार करता है, जहाँ वह है वहीं रहेगा, तब तक कि वह संसार के न्याय के लिए दोबारा नहीं आते।

प्रश्न 54 : परमेश्वर के दाहिने बैठने में किस प्रकार मसीह को महिमा मिली?

उत्तर : मसीह की, परमेश्वर के दाहिने बैठने में महिमा है, कि परमेश्वर मनुष्य के रूप में उसने परमेश्वर पिता का उच्चतम पक्ष, पूर्ण आनन्द, महिमा और स्वर्ग और पृथ्वी पर, सामर्थ को पाया। और कलीसिया को इकट्ठा और सुरक्षा प्रदान करता है और उसके शत्रुओं को बाँधता है, अपने सेवकों और लोगों को दान और अनुग्रह देता है, और उनके लिए प्रार्थना करता है।

प्रश्न 55 : मसीह कैसे हमारे लिये प्रार्थना करता है?

उत्तर : मसीह हमारे लिये इस प्रकार विनती करता है। वह हमारे स्वभाव में प्रगट होकर, निरन्तर स्वर्ग में पिता के सामने, अपनी आज्ञाकारिता और बलिदान

की योग्यता से, अपनी इच्छा को घोषित करते हुए, जो सभी विश्वासियों पर लागू होती है। उनके विरूद्ध सभी दोष का प्रतिउत्तर देते हैं, और उनके लिए चेतना की शांति प्राप्त करते हैं कि वे रोज की नाकामी को दूर कर, साहस के साथ अनुग्रह के सिंहासन तक पहुँचे और उनकी सेवा और वे (विश्वासी) परमेश्वर को ग्रहण होते है।

प्रश्न 56 : किस प्रकार मसीह, उसके दोबारा संसार के न्याय के लिये आने में महिमा पाता है?

उत्तर : मसीह, जिसका अधर्मी मनुष्य के द्वारा अनुचित न्याय हुआ, और उसे दोषी ठहराया गया। वह अन्तिम दिन में बड़ी सामर्थ, अपनी और अपने पिता की महिमा के प्रगटीकरण और अपने स्वर्गदूतों के साथ, एक बड़ी आवाज और स्वर्गदूतों की और परमेश्वर की तुरही की, आवाज के साथ धार्मिकता से संसार का न्याय करने आएगा, इस प्रकार वह दोबारा संसार के न्याय करने के लिए आने में महिमा पाता है।

प्रश्न 57 : मसीह अपनी बिचवइए के रूप में क्या फायदा प्राप्त करता है?

उत्तर : मसीह अपनी मध्यस्थता से, छुटकारा और अनुग्रह की वाचा के सभी फायदों को हमारे लिए प्राप्त करता है।

प्रश्न 58 : जो फायदे मसीह ने प्राप्त किये, हम उसमे कैसे सम्मिलित होते है?

उत्तर : हम मसीह के प्राप्त किये हुए फायदों में, उन्हे अपने ऊपर लागू करने से जो कि पवित्र आत्मा परमेश्वर का कार्य है, के द्वारा सम्मिलित होते हैं।

प्रश्न 59 : मसीह के द्वारा छुटकारे में कौन सम्मिलित होते हैं?

उत्तर : छुटकारा, निश्चय ही और प्रभावी रूप से उन्हें प्राप्त होता है, जिनके लिए मसीह ने इसकी कीमत चुकायी, जिन्हें उचित समय पर पवित्र आत्मा सुसमाचार के अनुसार, मसीह पर विश्वास करने योग्य बनाता है।

प्रश्न 60 : जिन्होनें सुसमाचार नहीं सुना, और यीशु मसीह को नहीं जानते, न ही उस पर विश्वास करते हैं, क्या वे यदि अपने जीवन को प्रकृति के प्रकाश में बिताते हैं, वे बचाए जाते हैं ?

उत्तर : वे जिन्होंने सुसमाचार नहीं सुना, यीशु मसीह को नहीं जाना, उस पर विश्वास नहीं किया, और प्रकृति के प्रकाश के अनुसार जीवन व्यतीत करते है। धर्म की व्यवस्था जिसका वे अंगीकार करते है, के अनुरूप जीवन जीते है। वे बचाए नहीं जाएगें। कहीं भी उद्धार नहीं है। सिर्फ एकमात्र मसीह ही उद्धारक है, जो कि सिर्फ अपने शरीर (कलीसिया) का उद्धारकर्त्ता है।

प्रश्न 61 : वे सभी जो सुसमाचार सुनते है और कलीसिया में है बचाए गये हैं।

उत्तर : वे सभी जो समाचार सुनते हैं, और दिखाई देने वाली कलीसिया में है, बचाये नहीं गये हैं। परन्तु वे जो अदृश्य कलीसिया के सच्चे सदस्य हैं।

प्रश्न 62 : दिखाई देने वाली कलीसिया क्या है?

उत्तर : सदृश्य कलीसिया एक समाज है, हर युग और संसार के हर एक हिस्से के लोगों से, जो सच्चा धर्म अंगीकार करते हैं और उनकी सन्तानों से बनता है।

प्रश्न 63 : सदृश्य कलीसिया के विशेष सौभाग्य क्या हैं ?

उत्तर : सदृश्य कलीसिया में सौभाग्य प्राप्त होता है, वहाँ परमेश्वर की सुरक्षा, शासन होता है, वहाँ रक्षा और सुरक्षा हमेशा की होती है, शत्रु के विरोध का सामना नहीं होता, और संतों की संगति का आनन्द, उद्धार के साधरण साधन और सुसमाचार की सेवा में मसीह द्वारा अनुग्रह, सबको प्रस्तुत किया जाता है, इस बात के साथ जो कोई उस पर विश्वास करेगा बचाया जाएगा, जो भी उसके पास आएगा किसी को निकाला न जाएगा।

प्रश्न 64 : अदृश्य कलीसिया क्या है?

उत्तर : अदृश्य कलीसिया सभी चुनो हुओं की पूर्ण संख्या है जो हो गये, हैं, और होंगे, मसीह (सर) की आधीनता में एकत्रित होंगे, अदृश्य कलीसिया हैं।

प्रश्न 65 : अदृश्य कालीसिया के सदस्य मसीह द्वारा कौन से लाभ का आनन्द पाते हैं?

उत्तर : अदृश्य कलीसिया के सदस्य मसीह से, उसके साथ एकता और संगति का आनन्द, अनुग्रह और महिमा में प्राप्त करते हैं।

प्रश्न 66 : वह एकता क्या है, जो चुने हुओं की मसीह के साथ है?

उत्तर : चुनो हुओं की एकता, मसीह के साथ परमेश्वर के अनुग्रह का कार्य है, जिसमें वे आत्मिक और विस्मयकारी, फिर भी वास्तविक और अलग न होने वाली रीति से, मसीह के साथ उनके, सर और पति के समान जोड़े जाते हैं, जो कि उनकी प्रभावी बुलाहट से होता है।

प्रश्न 67 : प्रभावी बुलाहट क्या है?

उत्तर : प्रभावी बुलाहट परमेश्वर की सामर्थ और अनुग्रह का कार्य है, जिसमें (उसके चुने हुओ के प्रति विशेष प्रेम से, इसलिए नहीं कि उनमें कुछ योग्यता है) ठहराए समय पर वह, उन्हें अपने वचन और आत्मा के द्वारा आमंत्रित करता और यीशु मसीह के पास लाता है, उनके मस्तिष्क को प्रकाशित करता,

उनकी इच्छा का नया और सामर्थ से दृढ़ करता है। (यद्यपि वे स्वयं पाप में भरे हैं) जिससे उनमें इच्छा होती है, और वे इस योग्य होते हैं, कि स्वतंत्रता से उसकी बुलाहट का उत्तर दें और अनुग्रह को स्वीकार कर अपना ले, जो उन्हें प्रस्तुत किया गया है।

प्रश्न 68 : क्या सिर्फ चुनों हुओ को प्रभावी बुलाहट दी जाती है?

उत्तर : सिर्फ सभी चुनो हुओ को ही प्रभावी बुलाहट दी जाती है। यद्यपि दूसरे भी बाहरी रूप से, वचन की सेवा के द्वारा बुलाए जाते हैं, उनमें भी आत्मा के कुछ सामान्य कार्य होते हैं, वे अपनी इच्छा से, जो अनुग्रह उन्हें प्रस्तुत होता है, उसे अनदेखा और बेकार कर देते हैं, और उचित रीति से, उनके अविश्वास में छोड़ दिये जाते हैं, वे कभी सच्चाई से यीशु मसीह के पास नहीं आते।

प्रश्न 69 : अनुग्रह में संगति क्या है, जो अदृश्य कलीसिया के सदस्य मसीह के साथ रखते हैं?

उत्तर : अनुग्रह में संगति जो अदृश्य कलीसिया के सदस्यों की मसीह के साथ है, कि वे मसीह की मध्यस्थता के गुणों में, उनके धर्मी ठहराए जाने में, दत्तक होने, पवित्रीकरण और अन्य कुछ भी जो इस जीवन में उनकी एकता मसीह के साथ प्रगट करती है, में शामिल होते हैं।

प्रश्न 70 : धर्मी ठहराया जाना क्या है?

उत्तर : धर्मी ठहराया जाना, पापियों के लिए परमेश्वर के मुफ्त अनुग्रह का कार्य है, जिसमें वह उन्हें धर्मी स्वीकार करता है, इसलिए नहीं कि उनमें कुछ भला है, या उन्होंने कुछ अच्छा किया है, वरन् यीशु की सिद्ध आज्ञाकारिता और पूर्ण संतुष्टी परमेश्वर उन्हें प्रदान करता है, जो सिर्फ विश्वास से प्राप्त होती है।

प्रश्न 71 : धर्मी ठहराया जाना किस प्रकार से परमेश्वर के मुफ्त अनुग्रह का कार्य है?

उत्तर : यद्यपि मसीह ने, अपनी आज्ञाकारिता और मृत्यु से, उनके हिस्से से जिन्हें धर्मी ठहराया गया है, परमेश्वर के न्याय को सही प्रकार से पूर्ण संतुष्ट किया है, फिर भी जिस प्रकार परमेश्वर ने इस संतुष्टि को स्वीकार किया, जिसे परमेश्वर ने उनसे मांगा होता, और इस निश्चयता के लिए अपने एकलौते पुत्र को दे दिया और उसकी धार्मिकता उन्हें दे दी और उनसे उनके धर्मी ठहराए जाने के लिए कुछ नहीं माँगा, सिवाए विश्वास के, जो अपने आप में उसका दान है। इस प्रकार उनका धर्मी ठहराया जाना, उनके लिए परमेश्वर का मुफ्त अनुग्रह है।

प्रश्न 72 : धर्मी ठहराने वाला विश्वास क्या है?

उत्तर : धर्मी ठहराने वाला विश्वास बचाने वाला अनुग्रह है, जो पापी के हृदय में परमेश्वर की आत्मा और वचन के द्वारा पैदा होता है, जिससे वह अपने पाप और दुःखों को मानता है, और अपनी और सभी दूसरे प्राणियों की अयोग्यता को मानता है, कि कुछ भी उसे वापस बचा नहीं सकते, और सिर्फ सुसमाचार के वायदे की सच्चाई पर भरोसा ही नहीं करता, वरन् मसीह और उसकी धार्मिकता स्वीकार करता और उस पर भरोसा करता है, जिससे वह पापों की क्षमा पाता है, और परमेश्वर की दृष्टि में उद्धार के लिये धर्मी ठहरता है।

प्रश्न 73 : किस प्रकार विश्वास, एक पापी को परमेश्वर के सामने धर्मी ठहराता है?

उत्तर : विश्वास एक पापी को परमेश्वर की दृष्टि में धर्मी बनाता है। इसलिए नहीं अन्य अनुग्रह हमेशा इसके साथ होते हैं, अथवा अच्छे कार्य जो इसका फल है, न ही इसलिए कि यह अनुग्रह का विश्वास है, अथवा कोई कार्य जो उसकी धार्मिकता के लिये उसे दिये गये, परंतु यह विश्वास एक माध्यम है, जिससे वह मसीह और उसकी धार्मिकता को स्वीकार करके अपने में पहन लेता है।

प्रश्न 74 : लेपालकपन क्या है?

उत्तर : लेपालकपन परमेश्वर के मुफ्त अनुग्रह का कार्य, उसके बेटे में और बेटे के लिये है। जिससे वे सभी जो धर्मी ठहराये जाते हैं, उसके संतानों में शामिल होते हैं, वे परमेश्वर का नाम पाते हैं, उन्हें पुत्र की आत्मा दी जाती है और उन्हें पिता की सुरक्षा में परमेश्वर के पुत्र की आजादी और सौभाग्य प्राप्त होते हैं, वे वायदे के वारिस और महिमा में मसीह के संगी वारिस बनते हैं।

प्रश्न 75 : पवित्रीकरण क्या है?

उत्तर : पवित्रीकरण परमेश्वर के अनुग्रह का कार्य है, जिससे उन्हें जिन्हें परमेश्वर ने जगत की उत्पत्ति से पहले पवित्र होने के लिए चुना है, समय पर आत्मा के सामर्थी कार्य के द्वारा, मसीह की मृत्यु और पुनरुत्थान को उनमें लागू करते हुए, उनके पूरे मनुष्यत्व को नया करके, परमेश्वर की समानता में कर देते हैं, और पश्चाताप से जीवन और अन्य बचाने वाले अनुग्रह उनके हृदय में डालते हैं, और ये अनुग्रह इस तरह से बढ़ता और मजबूत होता है, कि वे पाप के लिये मरते जाते हैं, और जीवन के नयेपन में आगे बढ़ते हैं।

प्रश्न 76 : जीवन के लिए पश्चाताप क्या है?

उत्तर : जीवन के लिए पश्चाताप बचाने वाला अनुग्रह है। जो पापी के हृदय में परमेश्वर की आत्मा और वचन के द्वारा पैदा होता है। जिससे वह सिर्फ इसकी

(पाप) भयानकता ही नहीं, वरन् अपने पाप की गन्दगी और दुर्गंध को समझता है, और परमेश्वर की मसीह में दया को समझते हुए, वह अपने पाप से ऐसा पश्चाताप करता है, कि वह इसके लिये दु:खी और पाप से घृणा करता है, और पाप से परमेश्वर की ओर मुड़ मुड़ता है, और धैर्य से, निरन्तर परमेश्वर के साथ नयी आज्ञाकारिता के मार्ग पर चलता है।

प्रश्न 77 : धर्मी ठहरने और पवित्रीकरण में क्या अंतर है?

उत्तर : यद्यपि पवित्रीकरण और धर्मी ठहरने को अलग नहीं किया जा सकता फिर भी उनमें अन्तर है, धर्मी ठहरने में परमेश्वर मसीह की धार्मिकता मनुष्य का पहनाता है, पवित्रीकरण में उसकी आत्मा अनुग्रह प्रदान करती है, और योग्य बनाती है कि इसका इस्तेमाल हो, पहले में पाप क्षमा किया जाता है। दूसरे में पाप को नियंत्रित किया जाता है। धर्मी ठहराये जाने में, सभी विश्वासियों को समानता में परमेश्वर के क्रोध से छुटकारा मिलता है, और पूर्णता इस जीवन में उन पर दोष नहीं लगाया जाता, पवित्रीकरण सभी विश्वासियों में एक समान नहीं होता, न ही किसी में पूर्ण सिद्ध होता है। वरन् सिद्धता की ओर अग्रसर होता है।

प्रश्न 78 : विश्वासियों के पवित्रीकरण में कहाँ अपूर्णता रह जाती है?

उत्तर : पवित्रीकरण की अपूर्णता विश्वासियों में, उन बचे हुए पापों की वजह से होती है, जो उनके जीवन में बचे रहते हैं, और शरीर की अभिलाषा निरंतर आत्मा के साथ संघर्ष करती है, जिससे वे कई बार परीक्षा में फँस कर पाप कर बैठते हैं, उनकी आत्मिक सेवा में बाधा पड़ती और उनके उत्तम कार्य अपूर्ण और परमेश्वर की दृष्टि में दोषपूर्ण ठहरते हैं।

प्रश्न 79 : क्या सच्चे विश्वासी अपनी अपूर्णता और कई परीक्षाएं और पाप जिसमें विश्वासी गिर जाते हैं, इससे वे अनुग्रह से वंचित हो जाते हैं?

उत्तर : सच्चे विश्वासी परमेश्वर के अपरिवर्तनीय प्रेम के कारण, और उसकी योजना और वाचा जो उन्हें सुरक्षित रखती है, उनकी मसीह के साथ एकता और मसीह की उनके लिए विनती करना, परमेश्वर की आत्मा और फल उनमें बने रहने के कारण वे परमेश्वर के अनुग्रह से वंचित नहीं किये जाते, परंतु परमेश्वर की सामर्थ में विश्वास के द्वारा उद्धार के लिए सुरक्षित रहते हैं।

प्रश्न 80 : क्या सच्चे विश्वासी पूर्ण दृढ़ता के साथ आश्वस्त होते हैं, कि वे अनुग्रह में हैं और उद्धार के लिए सुरक्षित हैं?

उत्तर : मसीह में सच्चे विश्वासी, जो धैर्य से अपने विवेक से उसमें बने रहते हैं, बिना

किसी असाधारण प्रकाशन से, वरन् उस विश्वास से जो परमेश्वर के वायदे की सच्चाई पर है, और आत्मा जो उन्हें इस योग्य करती है, वो अनुग्रह जिसमें जीवन का वायदा है, और उनकी आत्मा में साक्षी देती है, कि वे परमेश्वर की संतान हैं और वे पूर्ण दृढ़ता के साथ आश्वस्त होते हैं, कि वे अनुग्रह में हैं और उद्धार के लिये सुरक्षित हैं।

प्रश्न 81 : क्या सच्चे विश्वासी हमेशा इस बात के प्रति आश्वस्त होते हैं कि वे अनुग्रह में हैं और वे बचाए जाएंगे?

उत्तर : अनुग्रह और उद्धार का आश्वासन, विश्वास का अति आवश्यक हिस्सा नहीं है, सच्चे विश्वासी को, इसे पाने के लिए इन्तजार करना पड़ता है, और इसके आनन्द को जानने के बाद भी यह, पाप, परीक्षा, बुराई की वजह से कमजोर और थोड़े समय के लिए समाप्त हो सकता है, परंतु वे परमेश्वर की आत्मा के द्वारा त्यागे नहीं जाते, जो उन्हें गहरी निराशा में जाने से बचाकर, उनमें यह आश्वासन वापस पैदा करता है।

प्रश्न 82 : महिमा में संगति क्या है, जो अदृश्य कलीसिया के सदस्य की मसीह के साथ होती है?

उत्तर : महिमा में संगति जो अदृश्य कलीसिया के सदस्यों की मसीह के साथ होती है। इस जीवन में, मृत्यु के तत्काल पश्चात, अन्तत: वे पुनरुत्थान और न्याय के दिन पूर्ण सिद्ध होते हैं।

प्रश्न 83 : महिमा में यीशु के साथ संगति क्या है जिसका अदृश्य कलीसिया के सदस्य इस जीवन में आनन्द पाते हैं?

उत्तर : अदृश्य कलीसिया के सदस्यों को मसीह के साथ महिमा का पहला फल इस जीवन में प्राप्त होता है, जबकि वे उसके सदस्य हैं और मसीह उनका सिर है। इसलिये वह महिमा जो उसने पूर्णता पायी है, विश्वासी उस महिमा का हिस्सा है, जिसमें वे परमेश्वर के प्रेम का आनन्द, मन की शांति, पवित्र आत्मा में आनन्द, महिमा की आशा में शामिल है, जो परमेश्वर के बदले का क्रोध, मन की अशांति, न्याय का भय, मृत्यु के बाद की यातना जो अधर्मियों को होती है, के विपरीत है।

प्रश्न 84 : क्या सभी मनुष्य मरेंगे?

उत्तर : मृत्यु पाप की मजदूरी है। यह निश्चित है कि सभी एक बार मरेंगे, क्योंकि सभी ने पाप किया है।

प्रश्न 85 : जबकि मृत्यु पाप की मजदूरी है, क्यों धर्मी मृत्यु से छुटकारा नहीं पाते, जबकि उनके सभी पाप मसीह में क्षमा प्राप्त करते हैं?

उत्तर : धर्मीजन आखिरी दिन मृत्यु से छुटकारा प्राप्त करेंगे, और मृत्यु में भी वे मृत्यु के श्राप और डंक से छुटकारा पाते हैं। यद्यपि वे मरते हैं। वे परमेश्वर के प्रेम से (द्वारा), पूर्णता पाप और दुःख से आजादी पाते हैं, और इस योग्य होते हैं, कि वे मसीह की महिमा में उसके साथ संगति करें।

प्रश्न 86 : मसीह के साथ महिमा में संगति क्या है? जो विश्वासी की मृत्यु के तत्काल पश्चात् मसीह के साथ होती है।

उत्तर : मृत्यु के तत्काल पश्चात्, अदृश्य कलीसिया के सदस्यों की महिमा में मसीह के साथ संगति होती है, जिसमें उनकी आत्मा पवित्रता में सिद्ध होती है, और स्वर्ग में स्वीकार की जाती है। जहाँ वे परमेश्वर का मुख, महिमा के प्रकाश में देखते हैं, और अपने शरीर के पूर्ण छुटकारे का इन्तजार करते हैं, जो मृत्यु में भी यीशु से जुड़ा रहता और कब्र में विश्राम पाता है, और अंतिम दिन वापस अपनी आत्मा से जोड़ा जाएगा, जबकि अधर्मी की आत्मा नरक में डाल दी जाती है, जहाँ वह पीड़ा और अन्धकार में रहती है और उनके शरीरों को कब्र में कैदी की अवस्था में रखा जाता है, पुनरुत्थान और न्याय के दिन तक के लिए।

प्रश्न 87 : हमें पुनरुत्थान के विषय में क्या विश्वास करना चाहिए?

उत्तर : हमें विश्वास करना चाहिए, कि अन्तिम दिन में धर्मी और अधर्मी दोनों का मृतकों से साधारण पुनरुत्थान होगा, जो तब वे जो जीवित हैं, क्षणमात्र में परिवर्तित हो जाऐंगे, और मृतकों का वही शरीर जो कब्र में रखा गया था, उनकी आत्मा से हमेशा के लिए जुड़ (एक) जायेगा, और मसीह की सामर्थ से पुनरुत्थान होगा।

धर्मियों का शरीर मसीह की आत्मा और उसके पुनरुत्थान के गुणों में सामर्थ, आत्मिक, अविनाशी रूप से पुनरुत्थान प्राप्त करेगा, और मसीह की महिमायुक्त शरीर के समान होगा। अधर्मियों का शरीर अनादर के साथ, एक दुःखी न्यायाधीश के रूप में, उसके द्वारा पुनरुत्थान प्राप्त करेगा।

प्रश्न 88 : पुनरुत्थान के तत्काल पश्चात् क्या होगा ?

उत्तर : पुनरुत्थान के तत्काल पश्चात, स्वर्गदूतों और मनुष्यों का साधारण और अन्तिम न्याय होगा, उस दिन और घड़ी (समय) को कोई मनुष्य नहीं जानता, ताकि सभी जागृत और प्रार्थना करते रहें और प्रभु के आगमन के लिए हमेशा तैयार रहें।

प्रश्न 89 : अधर्मियों के साथ न्याय के दिन में क्या होगा ?

उत्तर : न्याय के दिन अधर्मी मसीह के बायीं ओर बैठेंगे और पूर्ण प्रमाण और उनके अपने विवेक में दोषी ठहरने के बाद, उनके विरुद्ध भय योग्य, पर उचित दोष, दण्ड लगाया जायेगा, उसके बाद उन्हें परमेश्वर की उपस्थिति और मसीह, उसके संतो और पवित्र स्वर्गदूतों की महीमायुक्त संगति से निकाल कर, नरक में उनके शरीर और आत्मा को शैतान और उसके दूतों के साथ, हमेशा के लिए डाल दिया जाएगा, जहाँ पर बयां न कर सकने वाली पीड़ा का दण्ड उन्हें मिलेगा।

प्रश्न 90 : धर्मियों के साथ न्याय के दिन क्या होगा?

उत्तर : न्याय के दिन, धर्मी मसीह के साथ बादलों में उठा लिये जाएंगे, वे उसके दाहिने बैठेंगे, जहाँ उनका सम्मान होगा और वे निर्दोष ठहराए जाएंगे, वे मसीह के साथ भ्रष्ट स्वर्गदूतों और मनुष्यों का न्याय करेंगे, और स्वर्ग में उनका स्वागत होगा, जहाँ वे हमेशा के लिए पाप और पीड़ा से छुटकारा पाकर, असीम आनन्द को प्राप्त करेंगे। विशेषकर परमेश्वर पिता, हमारे प्रभु यीशु मसीह और पवित्र आत्मा के सम्मुख, अनन्तकाल के लिए अनगिनत संत और स्वर्गदूतों के साथ उनके शरीर और आत्मा में पूर्ण पवित्रता और खुशियां प्राप्त करेंगे। और यह सिद्ध और पूर्ण संगति है, जो अदृश्य कलीसिया के सदस्य पुनरुत्थान और न्याय के दिन महीमा में मसीह के साथ प्राप्त करेंगे।

इस बात को जानने के बाद कि पवित्र शास्त्र क्या सिखाता है कि हम परमेश्वर पर विश्वास करें, आगे इस बात को भी जानना आवश्यक है कि उसके प्रति मनुष्य के कर्तव्य क्या है?

प्रश्न 91 : मनुष्य का कर्तव्य क्या है जो परमेश्वर मनुष्य से चाहता है?

उत्तर : कर्तव्य जो परमेश्वर मनुष्य से चाहता है, कि वह उसकी प्रगट इच्छा की आज्ञा माने।

प्रश्न 92 : परमेश्वर ने सर्वप्रथम मनुष्य के लिए आज्ञाकारिता के कौन से नियम को प्रगट किया है?

उत्तर : आज्ञाकारिता का नियम, जो परमेश्वर ने आदम के पतन से पहले और उसमें सभी मनुष्यों को दिया, भले और बुरे के ज्ञान के वृक्ष से न खाने के अलावा, नैतिक व्यवस्था थी।

प्रश्न 93 : नैतिक व्यवस्था क्या है?

उत्तर : नैतिक व्यवस्था (नियम) परमेश्वर की इच्छा, मनुष्य को बताना है, जो सभी

को व्यक्तिगत, सिद्ध और निरन्तर निर्देशित और आज्ञा मानने को कहती है। मनुष्य के पूरे मनुष्यत्व आत्मा और शरीर में पवित्रता और धार्मिकता के सभी कर्तव्य को पूरा करना है, जो परमेश्वर और मनुष्य के प्रति है। इसे पूरा करने में जीवन का वायदा और तोड़ने (न मानने) में मौत की चेतावनी है।

प्रश्न 94 : मनुष्य के पतन के बाद नैतिक नियम का क्या महत्व है?

उत्तर : यद्यपि पतन के बाद, कोई भी मनुष्य नैतिक व्यवस्था से धार्मिकता और जीवन नहीं प्राप्त कर सकता, फिर भी इसका बड़ा महत्व है और यह पतित और नया जन्म पाये हुए, सभी मनुष्य के लिये सामान्य है।

प्रश्न 95 : नैतिक व्यवस्था का सभी मनुष्यों के लिये क्या महत्व है?

उत्तर : नैतिक व्यवस्था का महत्व सभी मनुष्य के लिए है, कि यह उनको परमेश्वर का पवित्र स्वभाव और इच्छा प्रगट करती है, और उनकी जिम्मेदारी बताती है, कि वे उसके अनुरूप चले, इसे पूरा करने में यह मनुष्य को उसकी आयोग्यता की समझ देती है और उनके स्वभाव, हृदय और जीवन के पापमय स्थिति को बताती है, कि वे पाप और दु:ख में अपने मन में दीन बने, और मसीह और उसकी आज्ञाकारिता की सिद्धता की आवश्यकता की साफ समझ मनुष्य को देती है।

प्रश्न 96 : नैतिक व्यवस्था का पापी/पतित, मनुष्य के लिये क्या विशेष महत्व है?

उत्तर : नैतिक व्यवस्था पतित मनुष्य को जागृत करती है, कि वे आने वाले क्रोध से बचे और उन्हें मसीह की तरफ प्रेरित करती है, और यदि वे निरंतर पाप में बने रहते हैं, तो उनके लिए कोई बहाना नहीं है, और वे श्राप के आधीन हैं।

प्रश्न 97 : नये जन्म पाये हुए मनुष्य के लिए नैतिक व्यवस्था का क्या महत्व है?

उत्तर : यद्यपि उन्होंने नया जन्म पाया है, मसीह पर विश्वास करते हैं और वे नैतिक व्यवस्था (कार्य की वाचा) के आधीन नहीं, वे नैतिक व्यवस्था से न धर्मी न दोषी ठहरते हैं। फिर भी नैतिक व्यवस्था के साधारण महत्व जो सभी के लिए, इसका विश्वासी के लिए विशेष महत्व है, कि वे कितने मसीह के आधीन हैं जिसने इसे पूरा किया है, और मसीह ने उनके बदले इसके श्राप को उनकी भलाई के लिये सहन किया है, जिससे वे ज्यादा धन्यवादी हो जाएं और उसे बड़ी सावधानी से, अपने आपको साबित करते हुए इसे, आज्ञाकारिता का नियम मानें।

प्रश्न 98 : नैतिक व्यवस्था कहाँ सारांश में समझी जाती है?

उत्तर : नैतिक व्यवस्था सारांश में दस आज्ञाओं में समझी जाती है, जो सीने पर्वत पर परमेश्वर की आवाज द्वारा दी गई, और पत्थर को दो तख्ती पर उसके द्वारा लिखी गई और निर्गमन के 20वें अध्याय में अंकित है। पहली चार आज्ञाएं हमारी जिम्मेदारी परमेश्वर के लिए, और दूसरी छ: हमारी जिम्मेदारी मनुष्य के लिये बताती है।

प्रश्न 99 : दस आज्ञाओं को सही प्रकार से समझने के लिये कौन से नियम ध्यान में रखने आवश्यक हैं?

उत्तर : दस आज्ञाओं को सही प्रकार से समझने के लिये, अग्रलिखित नियम इस प्रकार हैं :

1. व्यवस्था सिद्ध है, और धार्मिकता के लिये सभी मनुष्य पर लागू होती है। इसलिए हमेशा पूर्ण आज्ञाकारिता और हर एक जिम्मेदारी की पूर्ण सिद्धता की मांग करती है, और छोटे-से-छोटे पाप को त्यागने को कहती है।
2. यह आत्मिक है। इसलिए, समझ, इच्छा, चाहत और अन्य सभी आत्मा की सामर्थ और शब्द, कार्य और नजरिए तक पहुँचती हैं।
3. एक ही बात अलग-अलग प्रकार से कई आज्ञाओं में करने और न करने के लिए कही गयी है।
4. जहाँ कर्तव्य आता है, विरोध में पाप मना है, जहाँ पाप करना मना है वहाँ कर्तव्य की आज्ञा है। जहाँ एक वायदा है विपरीत चेतावनी भी है, जहाँ चेतावनी है, विपरीत वायदा किया गया है।
5. जो परमेश्वर ने मना किया है, कभी भी किया नहीं जाना चाहिए। परमेश्वर ने जो आज्ञा दी हमेशा हमारे कर्तव्य हैं, फिर भी हर एक विशेष जिम्मेदारी हमेशा करने के लिए नहीं है।
6. एक पाप और जिम्मेदारी के अंतर्गत, उस प्रकार की सभी बातें मना की गई अथवा करने की आज्ञा दी गई, हर एक कारण, साधन, अवसर और पहचान के साथ उन्हें पूरा करना है।
7. हमको जिसकी आज्ञा दी गई है या मना किया गया है, हमें अपने हालात के अनुसार ध्यान रखना है, कि दूसरों के द्वारा भी ये न की जायें अथवा पूरी हो, उनके स्थिति के जिम्मेदारी के अनुसार।
8. जो दूसरों को आज्ञा दी गई, हमें भी अपने स्थान और बुलाहट के अनुसार उन्हें करना है। ताकि उनकी मदद हो और जो मना किया गया है हमें उसमें दूसरों के साथ सम्मिलित होना चाहिए।

प्रश्न 100 : वह कौन सी विशेष बातें हैं जो हमें 10 आज्ञाओं में ध्यान रखना है?

उत्तर : हमें दस आज्ञाओं में प्रस्तावना और आज्ञाओं के गुणों और कई कारण जो कुछ आज्ञाओं से जुड़े हैं, ध्यान में रखना है और अधिकाई से उन्हें पूरा करना है।

प्रश्न 101 : दस आज्ञाओं की प्रस्तावना (भूमिका) क्या है?

उत्तर : दस आज्ञाओं की प्रस्तावना इन शब्दों में व्यक्त की गई है ''मैं तुम्हारा परमेश्वर यहोवा हूँ, जो तुम्हें मिश्र देश, गुलामी के घर से निकाल लाया हूँ'' इसमें परमेश्वर अपनी प्रभुता प्रगट करते हैं। जो यहोवा, अनन्तकालीन, अपरिवर्तनीय और सर्वसामर्थी परमेश्वर है, वह अपने आप में है और अपने वचन और कार्यों को पूरा करता है, वह वाचा में परमेश्वर है, जैसे पुराने इस्राइल के साथ वैसे ही अपने सभी लोगों के साथ, वह जैसे मिश्र की गुलामी से उन्हें छुड़ा लाया, वैसे ही उसने हमें आत्मिक बन्धुआई से छुड़ाया है, इसलिए वह हमारा इकलौता परमेश्वर है और हमें उसकी सभी आज्ञाएं माननी है।

प्रश्न 102 : चार आज्ञाएं, जो हमारी जिम्मेदारी परमेश्वर के प्रति बताती है का सार क्या है?

उत्तर : चार आज्ञाएं जो हमारी जिममेदारी परमेश्वर के प्रति सिखाती हैं, का सार है कि हमें अपने प्रभु परमेश्वर से पूरे मन पूरी आत्मा और पूरी शक्ति और पूरी बुद्धि से प्रेम करना है।

प्रश्न 103 : पहली आज्ञा कौन सी है?

उत्तर : पहली आज्ञा है कि ''तू मुझे छोड़कर किसी को प्रभु करके न मानना।''

प्रश्न 104 : पहली आज्ञा में कौन सी जिम्मेदारी पूरी करनी है?

उत्तर : पहली आज्ञा में हमारी जिम्मेदारी है, कि हम सिर्फ एक सच्चे परमेश्वर को पहचाने और जाने कि वह हमारा परमेश्वर है, और उसकी आराधना और महीमा, सोचने, मनन करने, याद रखने, आदर, प्रशंसा, चुनाव, प्रेम करने, उसकी इच्छा रखने, उसका भय खाते हुए उस पर विश्वास करते हुए भरोसा, आशा, खुशी और आनन्द से करें। उसके प्रति जलन, उसे पुकारते हुए, उसकी प्रशंसा और धन्यवाद दें और पूर्णता उसकी आज्ञाकारिता और आधीनता में बने रहे, हर बात में सावधानी से उसकी प्रशंसा करें, यदि कुछ गलत करके उसको दु:ख पहुँचाते हैं, तो गलती का दु:ख करें, क्षमा मांगे, और उसके सामने दीन बने रहें।

प्रश्न 105 : पहली आज्ञा में कौन से पाप मना किये गये हैं?

उत्तर : पहली आज्ञा में अग्रलिखित पाप मना है – **नास्तिकता :** परमेश्वर को नकारना और न मानना एक पाप है। **मूर्तिपूजा :** परमेश्वर के अतिरिक्त किसी दूसरे की आराधना करना, कई ईश्वर को मानना, सच्चे परमेश्वर की जगह अन्य को परमेश्वर मानना, उसे परमेश्वर न मानना, कुछ छोड़ना अथवा अनदेखा करना जो उसका अधिकार है। इस आज्ञा में मना है। उसे अनदेखा, भूलना, गलत समझ लेना, गलत निष्कर्ष निकालना, भ्रष्ट और गन्दे विचार उसके बारे में करना, साहसी और जिज्ञासु खोज उसके रहस्य के बारे में, परमेश्वर से घृणा, आत्म प्रेम, आत्म खोज और अन्य अनियमित असंयत स्थिति हमारे दिमाग की, अथवा दूसरी चीजों के प्रति हमारी चाहत और उन्हें पूर्णता अथवा थोड़ी उससे अलग करना, व्यर्थ अविश्वास, गलत सोच, गलत विश्वास, अविश्वास, निराशा और संवेदनरहित न्याय के आधीन गलत साधनों का प्रयोग और उचित साधनों पर भरोसा, नाशवान खुशी और आनन्द, भ्रष्टता, अन्धापन और गुनगुनापन, परमेश्वर की बातों में अचेतन, अपने आपको परमेश्वर से अलग कर लेना, संतो, स्वर्ग दूतों अथवा अन्य किसी प्राणी से प्रार्थना करना और धार्मिक आराधना करना, शौतान से सलाह करना और उसके सुझाव को ध्यान से सुनना, मनुष्य को अपने विश्वास और विवेक का प्रभु बनाना, परमेश्वर और उसकी आज्ञाओं को अनदेखा करना, उसकी आत्मा का विरोध और उसे दु:खी करना, उसमें असंतुष्ट और अधीर होना, उस पर गलत दोष लगाना बुराई की पीड़ा के लिये, और उस भलाई जो हममें है और जिसे हम कर सकते हैं की प्रशंसा, भाग्य, मूर्ति, अपने आपको अथवा किसी अन्य प्राणी को देना मना है।

प्रश्न 106 : पहली आज्ञा में ''मेरे सामने'' शब्दों में हमें विशेषकर क्या सिखाया गया है?

उत्तर : ये शब्द मेरे सामने या मुझे छोड़, पहली आज्ञा में हमें सिखाते हैं, कि परमेश्वर जो सब देखता, सबका ध्यान रखता है, दूसरों को ईश्वर मानने के पाप से अत्यन्त अप्रसन्न होता है। इसलिये इसे मना करता है। उसको ईश्वर न मानना अथवा अन्य का ईश्वर मानना घृणित है। इसलिये यह आज्ञा हमें सिखाती है कि जो कुछ हम उसकी सेवा में करते हैं, उसकी इच्छानुसार करें।

प्रश्न 107 : दूसरी आज्ञा कौन सी है?

उत्तर ''तू अपने लिये कोई मूर्ति खोदकर न बनाना न किसी की प्रतिमा बनाना जो आकाश में व पृथ्वी पर व पृथ्वी के जल में है। तू उनको दण्डवत न करना और न उनकी उपासना करना, क्योंकि मैं तेरा परमेश्वर यहोवा जलन रखने

वाला ईश्वर हूँ और जो मुझसे बैर रखते हैं, उनके बेटों पोतों और परपोतों का भी पितरों का दण्ड दिया करता हूँ और जो मुझसे प्रेम रखते और मेरी आज्ञाओं को मानते हैं, उन हजारों पर करुणा किया करता हूँ।'' दूसरी आज्ञा है।

प्रश्न 108 : दूसरी आज्ञा कौन से कर्तव्य की माँग करती है?

उत्तर : दूसरी आज्ञा में कर्तव्य है, कि परमेश्वर ने अपने वचन में जिस प्रकार कहा है, वैसे ही सभी धार्मिक आराधना और अनुष्ठान, पूर्ण और पवित्र रखते हुए स्वीकार करना और मानना है। विशेषकर मसीह के नाम में प्रार्थना और धन्यवाद और वचन का पढ़ना, प्रचार करना और सुनना, संस्कार का प्रबन्धन और उसे प्राप्त करना, कलीसिया में शासन और अनुशासन, सेवा और देखभाल, धार्मिक उपवास, परमेश्वर के नाम की शपथ और वचन देना, सब कुछ परमेश्वर के वचन अनुसार करना है, और सभी गलत आराधना को अमान्य, गलत मानना और उनका विरोध करना है और हर एक को अपने स्थान और बुलाहट के अनुरूप मूर्तिपूजा और उसके स्मारक को दूर/अलग करना है।

प्रश्न 109 : वे कौन से पाप हैं जो दूसरी आज्ञा में मना किये गये हैं?

उत्तर : दूसरी आज्ञा में पाप मना किये गये है, कि वह धार्मिक आराधना जो परमेश्वर द्वारा नियुक्त नहीं की गई है, उसको सोचना, सलाह देना, आज्ञा देना, इस्तेमाल करना और मान्यता देना, गलत धर्म को सहना जो परमेश्वर अथवा त्रिएक में किसी एक को प्रस्तुत करता है, चाहे हमारे मन में अथवा बाहर किसी प्रतिमा, या किसी भी प्राणी की समानता में और इसकी आराधना करना, गढ़कर किसी भी ईश्वर का प्रतिनिधित्व करना, उनकी आराधना करना, उनकी सेवा करना, सभी अन्धविश्वास की सामग्री, परमेश्वर की आराधना को भ्रष्ट करना, इसमें कुछ जोड़ना या निकालना, चाहे हमने स्वयं उसको रचा है या परम्परा में दूसरों से पाया है, प्राचीनकाल उसे माना गया, रीति रिवाज, मनन, अच्छे उद्देश्य या किसी अन्य रूप, पद का बेचना खरीदना, धर्म का दुरुपयोग, अनदेखा, दोषी, बाधा पहुँचना गलत है और परमेश्वर के ठहराए हुए आराधना और अनुष्ठान का विरोध करना गलत है।

प्रश्न 110 : वे कौन सी बातें हैं जो दूसरी आज्ञा से साथ जुड़ी है जो इसे ज्यादा महत्व देती है?

उत्तर : दूसरी आज्ञा से जुड़े कारण इन शब्दों में अंकित हैं ''क्योंकि मैं तेरा ईश्वर यहोवा जलन रखने वाला ईश्वर हूँ और जो मुझसे बैर रखते हैं उनके बेटों,

पोतों और परपोतों को भी पितरों का दण्ड दिया करता हूँ और जो मुझसे प्रेम करते हैं और मेरी आज्ञाओं को मानते हैं उन हजारों पर करुणा किया करता हूँ।'' परमेश्वर की हमारे ऊपर प्रभुता और स्वामित्व के अलावा, उसकी उत्साहपूर्ण इच्छा अपनी आराधना के लिए है, और उसके बदले का क्रोध सभी अनुचित आराधना के विरुद्ध है, अनुचित आराधना जो कि एक आत्मिक वेश्यावृत्ति के समान है, और इसको तोड़ने वालों से वह असीम घृणा करता है और चेतावनी देता है, कि इसका दण्ड आने वाली कई पीढ़ियों को मिलेगा और जो इसे मानते हैं, उससे प्रेम करते और उसकी आज्ञा मानते हैं, उनकी कई पीढ़ियों तक, करुणा का वादा करता है।

प्रश्न 111 : तीसरी आज्ञा कौन सी है?

उत्तर : ''तू अपने परमेश्वर का नाम व्यर्थ न लेना, क्योंकि जो यहोवा का नाम व्यर्थ ले वह उसको निर्दोष न ठहराएगा।'' तीसरी आज्ञा है।

प्रश्न 112 : तीसरी आज्ञा में क्या आवश्यक (जरूरी) है?

उत्तर : तीसरी आज्ञा की मांग है, कि परमेश्वर का नाम, शीर्षक, गुण, अनुष्ठान, वचन, संस्कार, प्रार्थना, कसम, वायदा, उसके कार्य, या अन्य कुछ जिसके द्वारा वह अपने आप को प्रगट करता है, पवित्रता और आदर से विचार, मनन, शब्द, लेख, पवित्र अंगीकार में इस्तेमाल होने चाहिए, और उत्तर योग्य बातचीत में परमेश्वर की महिमा और हमारी और दूसरों की भलाई के लिये इस्तेमाल होने चाहिए।

प्रश्न 113 : तीसरी आज्ञा में कौन से पाप मना किये गये हैं ?

उत्तर : तीसरी आज्ञा में मना किये पाप हैं, कि परमेश्वर का नाम जैसा कहा गया है न लेना, और इसका–अनजाने, व्यर्थ, अनादर, घृणित, अन्धविश्वास, अधार्मिकता से गलत इस्तेमाल करना मना है, और उसके शीर्षक, गुण, अनुष्ठान और कार्यों को चुगली, झूठ, सभी पापपूर्ण श्राप, कसम, वायदा, अपनी कसम और वायदे को तोड़ना यदि वे ठीक हैं, और उन्हें पूरा किया है, यदि अनुचित है, चिड़चिड़ाना और झगड़ना, परमेश्वर की योजना और प्रयोजन का गलत प्रयोग, परमेश्वर के वचन को बदलना गलत अर्थ और गलत इस्तेमाल से, और घृणित मजाक, जिज्ञासु अथवा बिना लाभ के सवाल, गलत सिद्धातों को मानना, इसका गलत प्रयोग, प्राणी और अन्य कुछ भी परमेश्वर नाम की जगह पापपूर्ण अभिलाषा और कार्य करना, घृणित ठहराना मना है। और किसी भी प्रकार से परमेश्वर की सच्चाई, अनुग्रह और मार्ग का विरोध करना, धर्म का अंगीकार दिखावे के लिए और खेदजनक करना, इसके लिए शर्मसार होना और इस पर

शर्मिन्दा होना अप्रमाणिक, बुद्धिहीन, फलरहित और आहत पहुँचाने वाली चाहत से और इससे पीछे हटना। ये सभी पाप तीसरी आज्ञा में मना किये गये हैं।

प्रश्न 114 : तीसरी आज्ञा के साथ कौन से तर्क (उद्देश्य) जुड़े हैं?

उत्तर : तीसरी आज्ञा से जुड़े हुए उद्देश्य हैं ''क्योंकि जो यहोवा का नाम व्यर्थ ले वह उसको निर्दोष न ठहरायेगा।'' ऐसा इसलिये है, क्योंकि वह हमारा प्रभु परमेश्वर है, इसलिए उसका नाम घृणित न किया जाए और न ही किसी प्रकार से हमारे द्वारा उसके नाम की निन्दा हो, विशेष कर इसलिये क्योंकि वह इस आज्ञा के तोड़ने वालों को निर्दोष ठहराने और बचाने से कोसो दूर है, और वे उसके धार्मिक श्राप से बच नहीं पायेंगे, यद्यपि कई बचाव में मनुष्य पर दण्ड और दोष लग चुका है।

प्रश्न 115 : चौथी आज्ञा कौन सी है?

उत्तर : ''तू विश्राम दिन को पवित्र मानने के लिए स्मरण रखना, छः दिन तो तू परिश्रम करके अपना सब काम काज करना, परंतु सातवा दिन तेरे परमेश्वर यहोवा के लिये विश्राम दिन है। उस दिन न तो तू किसी भांति का काम काज करना और न तेरा बेटा, न तेरी बेटी, न तेरा दास, न तेरा दासी, न तेरे पशु न कोई परदेशी जो तेरे फाटों के भीतर हो। क्योंकि छः दिन में यहोवा ने आकाश और पृथ्वी और समुद्र और जो कुछ उसमें है, सबको बनाया और सातवें दिन विश्राम किया, इस कारण यहोवा ने विश्राम दिन को आशीष दी और उसको पवित्र ठहराया।'' चौथी आज्ञा है।

प्रश्न 116 : चौथी आज्ञा मनुष्य से क्या चाहती है?

उत्तर : चौथी आज्ञा मनुष्य चाहती है, कि परमेश्वर के नियुक्त किये हुए समय को सभी मनुष्य द्वारा शुद्ध रखते हुए, पवित्र रखना है, वचन के अनुसार जो सात दिनों में से एक, जो संसार की शुरुआत से यीशु के पुनरुत्थान तक सातवां दिन था, और तब से सप्ताह का पहला दिन है, और संसार के अंत तक यही रहेगा जो मसीही विश्राम दिन है, और नये नियम में इसे प्रभु का दिन कहा गया है।

प्रश्न 117 : किस प्रकार विश्राम दिन/प्रभु का दिन, पवित्र माना जाता है?

उत्तर : विश्राम/प्रभु का दिन, पूरे दिन पवित्र विश्राम से शुद्ध होता है। सिर्फ उन कार्यों से ही नहीं जो हमेशा पापमय है, परंतु संसार के उन कार्यों से भी जो अन्य दिन उचित कार्य है, विश्राम करना है और आनन्द के साथ पूरा दिन (सिर्फ अनिवार्य और करुणा के कार्य छोड़कर) सामूहिक और व्यक्तिगत रीति से परमेश्वर की आराधना में बिताए, और उसके लिए पहले से हम अपने

हृदय को तैयार करे, और पूर्वानुमान, सावधनी और सयमता के साथ अपने संसारी कार्य को पहले से निपटा ले, या बाद के लिए रख छोड़ें ताकि हम ज्यादा आजादी से विश्राम दिन के कर्तव्य निभा सकें।

प्रश्न 118 : क्यों विश्राम दिन की जिम्मेदारी परिवार के शासक या बड़ो को दी गई है कि इसका ख्याल रखें?

उत्तर : विश्राम दिन को पवित्र रखने की जिम्मेदारी परिवार के शासक व अन्य बड़ों की दी गयी है। क्योंकि वे सिर्फ अपने लिए ही इसे नहीं मानते वरन जो भी उनके अधीन है, उनके द्वारा विश्राम दिन को पवित्र रखना है। क्योंकि अधिकतर उनका झुकाव इस तरफ होता है, कि वे अपने से छोटो और नौकरों से काम कराके, उनके विश्राम दिन की जिम्मेदारी को बाधित करें।

प्रश्न 119 : कौन से पाप चौथी आज्ञा में मना किये गये है?

उत्तर : चौथी आज्ञा में मना किये गये पाप है। कोई भी कार्य असावधानी, अनजाने, और बिना लाभ के करना और उनके बारे में चिन्ता करना मना है, और निर्जीवता से दिन को दूषित करना, और जो अपने आप में पापमय है करना, और गैर जरूरी (अनावश्यक) कार्य और विचार, संसार के काम और नौकरी से सम्बन्धित कार्य करके दिन को घृणित ठहराना मना हैं।

प्रश्न 120 : चौथी आज्ञा में इसे ज्यादा करने के लिए इसमें कौन से उद्देश्य (तर्क) जुड़े हैं?

उत्तर : चौथी आज्ञा में इसें ज्यादा महत्व देने के लिए उद्देश्य जुड़े है। उन्हें इसकी निष्पक्षता से लिया गया है। परमेश्वर सात में से छह दिन हमें अपने कार्यों के लिए देता है। और एक दिन अपने लिए रखता है, वह कहता है ''छः दिन तो तू परिश्रम करके अपना काम काज करना'' परमेश्वर उस एक दिन में विशेष स्वामित्व की चुनौती देता है वह कहता है, ''परन्तु सांतवा दिन तेरे परमेश्वर यहोवा के लिये विश्राम दिन है'' परमेश्वर के स्वयं के उदाहरण से ''जिसने छः दिन में आकाश और पृथ्वी और समुद्र और जो कुछ उनमें है बनाया और सातवें दिन विश्राम किया'', और परमेश्वर ने इस दिन को अशीषित ठहराया। सिर्फ इससे नहीं कि उसने इसे अपनी सेवा के लिये पवित्र किया है, वरन इसमें कि यह हमारे लिए आशीष का माध्यम है, जब हम इस पवित्र रखते है। इस कारण यहोवा ने विश्राम दिन को आशीष दी और इसे पवित्र ठहराया।

प्रश्न 121 : चौथी आज्ञा में ''स्मरण रखना'' शब्द परमेश्वर ने क्यों कहा?

उत्तर : चौथी आज्ञा में ''स्मरण रखना'' शब्द परमेश्वर ने कहा-क्योंकि इसे याद रखने में बड़े फायदे-आशीष है। इससे हमें इसे पूरा करने की तैयारी में मदद मिलती है, और इसे पूरा करने में अच्छा है, कि अन्य सभी आज्ञा भी पूरी की जाए और निरन्तर सृष्टि और छुटकारे के फायदे की धन्यवादी यादगार बनी रहे, जिसमें धर्म का सार है। अन्य वजह यह भी है कि हमारी प्रवृत्ति भूलने की है, इसके लिए प्रकृति का साधारण प्रकाश बहुत कम है। जबकि यह हमारी स्वाभाविक आज़ादी को, जो दूसरे समय पर न्याय संगत है सीमित करती है। और यह सात में से एक दिन होती है। और बहुत से सांसारिक काम बीच में होते है, और हम इस बारे में विचार नहीं कर पाते, न ही इसके लिए तैयार होते, न ही इसे पवित्र करते है। और शैतान अपने माध्यम से इसकी महिमा को कलंकित करते हुए, इसकी याद मिटा कर, सब अधर्म अैर अपवित्रता मनुष्य में लाना चाहता है, इसलिए इसे स्मरण रखने को कहा गया है।

प्रश्न 122 : दूसरी छह आज्ञाओं का जो मनुष्य के प्रति हमारे कर्तव्य बताती है सार क्या है।

उत्तर : छह आज्ञाओं का जो हमारे कर्तव्य मनुष्य के प्रति बताती है, का सार है। तू अपने पड़ोसी से अपने समान प्रेम रख और उनके साथ वैसा व्यवहार कर जैसा तू चाहता है कि वे तेरे साथ करें।

प्रश्न 123 : पांचवी आज्ञा कौन सी है?

उत्तर : तू अपने पिता और अपनी माता का आदर करना, जिससे जो देश तेरा परमेश्वर यहोवा तुझे देता है, उस में तू बहुत दिन तक रहने पाए।

प्रश्न 124 : पांचवी आज्ञा में पिता और माता से क्या तात्पर्य है?

उत्तर : पिता और माता का तात्पर्य पांचवी आज्ञा में, सिर्फ स्वभाविक माता-पिता से ही नहीं है। वरन सभी उम्र और अनुभव में बड़े, विशेषकर वे जिन्हें परमेश्वर द्वारा हमारे ऊपर-अधिकार दिया गया है-परिवार में, कलीसिया और राष्ट्र में इत्यादि में।

प्रश्न 125 : वे जो श्रेष्ठ (वरिष्ठ)है क्यों उन्हें माता और पिता का सम्मान दिया गया है?

उत्तर : श्रेष्ठ (वरिष्ठ) लोगों का माता पिता के समान इसलिए माना गया, कि उन्हें, (वरिष्ठ) अपने से छोटे के प्रति स्वभाविक माता पिता के समान सारे कर्तव्य सिखाए जा सके, वे अपने कई रिश्तों के आधार पर छोटे से प्रेम

और कृपा दिखा सके, छोटे बड़ों के साथ और अपने माता-पिता के समान ही इच्छा, आदर, और आनन्द के साथ अपने कर्तव्य को कर सकें।

प्रश्न 126 : पांचवी आज्ञा का साधारण कार्यक्षेत्र (आशय) क्या है?

उत्तर : पांचवी आज्ञा का कार्यक्षेत्र है, वे जिम्मेदारियाँ जो कई सम्बन्धों में छोटे, बड़े और समान रूप में एक दूसरे से निभाते हैं।

प्रश्न 127 : वह सम्मान क्या है, जो छोटे-बड़ों को देते है?

उत्तर : छोटो का बड़ो के प्रति सम्मान है, कि वे हृदय, वचन, व्यवहार, प्रार्थना और उनके लिए धन्यवाद, उनके गुण और अनुग्रह की नकल, उनकी उचित आज्ञा और सलाह को मानना, उनके सुधार को स्वीकारना, उनके व्यक्तित्व और अधिकार को उनके स्थिति के अनुसार सुरक्षित रखना, सभी बड़े आदर के साथ पूरा करे, और उनकी कमजोरियों को समझना और प्रेम से उसे ढ़कना ताकि वे उन्हें और उनके शासन का सम्मान दे पाये।

प्रश्न 128 : छोटे बड़ों के विरूद्ध क्या पाप करते है?

उत्तर : छोटे बड़ों के विरूद्ध कुछ पाप करते है। जब वे बड़ों के प्रति अपनी जिम्मेदारी को अनदेखा करते हैं, इससे जलन और गलत मानते है। और उनकी उचित सलाह, आज्ञा, सुधार और उनके विरूद्ध विद्रोह करते है, और उन्हें श्राप, उनका मजाक, और नीची और घृणित बातें करके उनके और उनके शासन के प्रति अनादर और निन्दा करते है।

प्रश्न 129 : बड़ों की छोटों के प्रति क्या ज़िम्मेदारी है?

उत्तर : उस अधिकार को जो वे परमेश्वर से पाते हैं, और वह सम्बन्ध जहाँ वे होते है, बड़ों की जिम्मेदारी है। वे छोटे से प्रेम, उनके लिए प्रार्थना करें, उन्हें आशीष, चेतावनी, सलाह दे, उनकी प्रशंसा, समर्थन और उत्साहित करें और उनके अच्छे कार्य में उन्हें पुरुस्कृत करे, और यदि छोटे गलत करते है तो उन्हें गलत कहें, और जो भी शरीर और आत्मा के लिये जरूरी है, उसकी रक्षा करें, और उसे उनके लिए उपलब्ध कराए, और बुद्धिमता, पवित्रता और उदाहरण के द्वारा परमेश्वर को महिमा और अपने सम्मान को बढ़ाएं और जो अधिकार परमेश्वर ने उन्हें दिया है, उसको सुरक्षित रखें।

प्रश्न 130 : बड़ों के पाप क्या है?

उत्तर : अपनी ज़िम्मेदारियों को अनदेखा करने के अतिरिक्त बड़ों के पाप है, अपने आपके लिए असाधारण चाहत, अपनी महिमा, अपना आराम, फायदा और आनन्द की चाहत रखना, और अनुचित, और ऐसी बात की आज्ञा देना जो

छोटे कर नही सकते, गलत कामों में उन्हें सलाह, उत्साह और उनका पक्ष लेना, और जो अच्छा है उसमे उन्हे निरूत्साहित, उनका असमर्थन करना, असावधानी से उन्हें बुराई, परीक्षा और खतरे में ले जाना, उन्हें गुस्सा दिलाना, और अनुचित, नासमझी, कठोर और कर्तव्य के प्रति असावधानी भरे व्यवहार से अपना अनादर और अपने अधिकार को कम करना।

प्रश्न 131 : समकक्ष (एक समान) लोगों के क्या कर्तव्य है?

उत्तर : समकक्ष (समान) लोगों की ज़िम्मेदारी है, कि वे एक दूसरे को आदर और मूल्य दे, दूसरों के सामने एक दूसरे का आदर करे, एक दूसरे के गुणों और आगे बढ़ने में खुश हो, जैसे कि अपने स्वंय के।

प्रश्न 132 : एक समान लोगों के पाप क्या है?

उत्तर : अपने कर्तव्य को अनदेखा करने के अतिरिक्त एक समान लोगों के पाप है। एक दूसरे को कम अहमियत देना, गुणों से ईष्या करना, दूसरे की सफलता से दु:खी होना और दूसरे की श्रेष्ठता पर अवैध अधिकार करना।

प्रश्न 133 : पांचवी आज्ञा को ज्यादा मानने के लिए कौन से उद्देश्य इससे जुड़े हैं?

उत्तर : पांचवी आज्ञा के साथ इन शब्दों में उद्देश्य जुड़े है। ''जिस से जो देश तेरा परमेश्वर तुझे देता है उसमें तु बहुत दिन तक रहने पाए'' जो इस आज्ञा को मानते हुए परमेश्वर की महिमा, अपनी भलाई के लिए करते है। उनके लिए लम्बा जीवन और सफलता का वादा परमेश्वर न किया है।

प्रश्न 134 : छठी आज्ञा कौन सी है?

उत्तर : ''तू खून न करना''- छठी आज्ञा है।

प्रश्न 135 : छठी आज्ञा की कौन सी ज़िम्मेदारियाँ/कर्तव्य है?

उत्तर : छठी आज्ञा के कर्तव्य है, पूर्ण सावधावी और उचित प्रयास से, अपने विचार और उद्देश्य से संघर्ष करते हए, और अपने आवेश पर नियंत्रण रखते हुए, अपने और दूसरों के जीवन को सुरक्षित रखना है। हर एक अवसर, परीक्षा और कार्य को अलग करना है, जो किसी के जीवन को समाप्त कर सकते है, परमेश्वर के साथ धीरज, मन की शान्ति, आत्मा की खुशी, उग्रता से उचित बचाव में जरूरी है, और भलाई के विचार, प्रेम, दया, दीनता, नम्रता, करूणा, शान्ति, सच्ची वाणी और व्यवहार, संयम से मीट का इस्तेमाल, पीना, सोना मेहनत और विश्राम करना है। और सहनशक्ति से मेल-मिलाप के लिए तत्पर, धैर्य रखना और चोट को भुलाना, गलती क्षमा करना, बुराई के बदले भलाई, निराश को तसल्ली देना और निर्दोष को बचाना व समर्थन देना है।

प्रश्न 136 : छठी आज्ञा में कौन से पाप मना किये गये है?

उत्तर : छठी आज्ञा में पाप मना किये गये है। सामूहिक न्याय, उचित युद्ध, और अनिवार्य बचाव के अतिरिक्त, अपना या किसी अन्य का जीवन लेना मना है। और जीवन को सुरक्षित रखने के लिए अनिवार्य और उचित माध्यम का अलग करना या उन्हें अनदेखा करना, और पापमय क्रोध, नफरत, जलन बदले की इच्छा, पूर्ण आवेश, सुरक्षा तोड़ना, मीट व शराब, परिश्रम और विश्राम, मनोंरजन का गलत इस्तेमाल, गुस्सा दिलाने वाले शब्द, दबाव, झगड़ा, मारना, चोट पहुँचाना और अन्य कोई भी बात जो किसी के जीवन को समाप्त कर सकती है। मना है।

प्रश्न 137 : सातवी आज्ञा कौन सी है?

उत्तर : ''तू व्याभिचार न करना'', सातवीं आज्ञा है।

प्रश्न 138 : सातवीं आज्ञा में कौन सी ज़िम्मेदारियाँ है?

उत्तर : सातवीं आज्ञा की जिम्मेदारियाँ है-शरीर, मन, इच्छा, चाहत, वचन और व्यवहार में पवित्रता, अपने आप और दूसरों में इसे सुरक्षित रखना, चेतना और दृष्टि पर नियन्तण रखना, संयम, पवित्र लोगों की संगति, वस्त्र में शालीनता, जिन्हे ब्रह्मचर्य और दाम्पत्य और जो यौन सम्बन्ध नहीं रख सकते उनसे विवाह न करना, हमारी बुलाहट में कड़ा परिश्रम करना, और घृणित कार्यो, अवसरों से अलग रहना और उसके लिए परीक्षा से संघर्ष करना- जिम्मेदारियाँ है।

प्रश्न 139 : सातवीं आज्ञा में कौन से पाप मना किये गये है?

उत्तर : कर्तव्यों को अनदेखा करने के अतिरिक्त पाप जो सातवीं आज्ञा में मना किये गये हैं, व्यभिचार, विवाह से पहले यौन सम्बन्ध, कौटुम्बिक व्यभिचार और सभी अस्वभाविक अभिलाषाएं, सभी भ्रष्ट व गन्दी बाते करना और उन्हें सुनना, विवेकहीन दृष्टि, निर्लज्ज व्यवहार, अश्लील पहनावा, उचित विवाह मना करना और अनुचित को बढ़ावा देना, गन्दे विचारों की अनुमति देना और उन्हें आश्रय देना, शादी न करने की शपथ को बाधित करना, विवाह को बिना वजह टालना, एक ही समय में कई पति अथवा पत्नी रखना, अनुचित तलाक और छोड़ना, आलस्य, बहुत खाना (पेटू), अत्याधिक शराब पीना, अपवित्र लोगों की संगति व उत्तेजित करने वाले गीत सुनना, पुस्तक पड़ना, नाचना व नाटक खेलना और अन्य सभी उत्तेजित करने वाले गन्दे काम स्वयं अथवा दूसरों से करना मना है।

प्रश्न 140 : आठवी आज्ञा कौन सी है?

उत्तर : ''तू चोरी न करना''-आठवी आज्ञा है।

प्रश्न 141 : आठवी आज्ञा में कौन से कर्तव्य की मांग है?

उत्तर : आठवी आज्ञा में कर्तव्य आवश्यक है, मनुष्य और मनुष्य के बीच समझौते और व्यपार में सच्चाई, विश्वास योग्यता,और न्याय आवश्यक है, हर एक को उसका अधिकार मिलना चाहिए। अनुचित रीति से मालिक से उसकी सम्पत्ति हथियाना मना है। अपनी योग्यता और दूसरों की आवश्यकता के अनुसार स्वतन्त्र लेन देन, सांसारिक धन के विषय में हमारे निष्कर्ष, इच्छा और चाहत में संयमता हमारे स्वभाव के पोषण के लिए जो भी जरूरी और आरामदायक है, उसे परिश्रम, सुरक्षा और अध्ययन से पाना, इस्तेमाल करना और फेंकना, जो हमारी स्थिति के योग्य है। उचित बुलाहट और इसमें परिश्रम, अनावश्यक मुकद्मों को छोड़ देना, और निश्चयता और उचित और न्यायसंगत परिश्रम से जैसे अपनी वैसे ही, दूसरों की सम्पत्ति की सुरक्षा और बढ़ोत्तरी करना आठवी आज्ञा के कर्तव्य हैं।

प्रश्न 142 : कौन से पाप आठवी आज्ञा में मना किये गये है?

उत्तर : अपनी ज़िम्मेदारियों को अनदेखा करने के अतिरिक्त, आठवी आज्ञा में मना किये गये पाप है। चोरी, डकैती, मनुष्य को बहकाना, और कुछ भी लेना जो चोरी का है। मनुष्यों के बीच समझौतो और सच्चाई के मामले में धोखधड़ी, गलत तोलना, चिन्ह मिटाना, अन्याय और अविश्वास योग्यता मना है। दबाव, रंगदारी, अधिक ब्याज, घूस कंजूसी, मुकदमा, अनुचित आबादी उजाड़ना मना है। कीमत बढ़ाने के लिए समान दबा लेना, और सभी अनुचित और पापमय रास्तों से अपने पड़ोसी से जो उसका है अलग करना, या अपने को धनी बनाने के लिए उससे लेना मना है, लालच, ऊचे दाम से संसार की वस्तुओं पर प्रभाव डालना मना है। और उन्हें इस्तेमाल, पाने और रखने के लिए अविश्वास, बाधा और अध्ययन को प्रभावित करना, दूसरों की सफलता से ईष्या करना, आलसी, फिजूलखर्ची और बेकार का खेल, ओर अन्य किसी भी प्रकार से हम अनुचित पक्षपात करके अपने बाहरी स्थिति उठाते है। और अपने आप को धोखा देकर, परमेश्वर द्वारा दी गई स्थिति का इस्तेमाल और आराम प्राप्त करते है, मना है।

प्रश्न 143 : नौवी आज्ञा कौन सी है?

उत्तर : ''तू अपने पड़ोसी के विरुद्ध झूठी गवाही न देना''-नौवी आज्ञा है।

प्रश्न 144 : नौवी आज्ञा में कौन से कर्तव्य आवश्यक है?

उत्तर : नौवी आज्ञा में कर्तव्य जो आवश्यक है। अपने पड़ोसी के भले नाम और अपने भलेनाम के लिए मनुष्य का मनुष्य के बीच सच्चाई को सुरक्षित रखना और बढ़ाना है। सच के लिए आगे आना और खड़े होना, उचित और न्याय अथवा अन्य किसी मामलो में हृदय से, सच्चाई से, आजादी से साफ-साफ और पूर्ण सत्य और सत्य ही बोलना है। अपने पड़ोसी की भलाई करनी और उनके भले नाम में प्रेम, चाहत और खुश रहना है, उनकी कमजोरी के लिए दु:खी होना और उसे छुपाना है। उनकी योग्यता और भलाई को मानना, और उनकी निर्दोषता का समर्थन करना है और उनके विषय में अच्छी बात सुनने के लिए तत्पर रहे और गलत बात स्वीकार न करें। कहानी कहने वाले, झूठी प्रशंसा करने वाले, और धोखा देने वालों को हतोत्साहित करें, अपने भले नाम से प्रेम और सुरक्षा और जरूरत पड़ने पर पड़ोसी का बचाव करें। उचित वायदों को पूरा करे, और सभी बातें जो सही, सत्यप्रिय और अच्छी है, उनका अध्ययन और प्रयोग करें।

प्रश्न 145 : कौन से पाप है जो नौवी आज्ञा में मना किये गये है?

उत्तर : नौवी आज्ञा में मना किये पाप है, अदालत अथवा सामूहिक कचहरी में अपने और अपने पड़ोसी के भले नाम के लिए सत्य को हानि पहुँचाना मना है। झूठे प्रमाण देना, झूठी गवाही प्रस्तुत करना, चालाकी दिखाना और बुरी बात के लिए आवेदन करना, सच्चाई को बढ़ा-चढ़ाकर प्रस्तुत करना, अनुचित फैसला करना, बुराई को अच्छा कहना अच्छे को बुरा कहना मना है। बुराई को अच्छाई का परिणाम देना, धर्मी को बुराई के कार्य का प्रतिफल देना। सच को समाप्त करना, उचित मामले में चुप रहना, और शान्त बने रहना, जब बुराई के प्रमाण के लिए पूछा जाता है, मना है। सच्चाई को बिना समय के बोलना और गलत निष्कर्ष निकालना, शक के साथ प्रस्तुत करना, और सच्चाई और न्याय को हानि पहुँचाना मना है। और झूठ, असत्य,धोखाधड़ी, चुगली, कहानी कहना, खुसर-पुसर, नाश कठोरता और दोष लगाना मना है।

उद्देश्य, शब्द और काम को तोड़ना मरोड़ना। झूठी तारीफ, घमण्ड, सोच और अपने बारे में और दूसरे के विषय में, बहुत बढ़चढ़कर अथवा थोड़ा बोलना मना है। छोटी गलती को बढ़ाना, जब पाप स्वतन्त्रता के साथ अंगीकार करने की बात होती है। इसे छिपाना, अनावश्यक रूप से कमजोरी को प्रगट करना, झूठी अफवाहों को हवा देना, गलत बातों को सुनना, और अपने कानों को उचित बात के लिए बन्द करना, बुरा शक, किसी की

प्रशंसा के हक से ईष्या करना और दु:खी होना और उसे खत्म करने के लिए प्रयास करना, उनके अनादर-अपमान में खुश होना, उचित वायदों को तोड़ना, अच्छी सूचना को अनदेखा करना और इसमें लगे रहना, स्वयं इससे अलग न करना ऐसा सब करना बुरा है। जो मना है।

प्रश्न 146 : दसवी आज्ञा कौन सी है?

उत्तर : ''तू किसी के घर का लालच न करना, न तो किसी की स्त्री का लालच करना, न किसी के दास-दासी व बैल, गदहे का, न किसी की किसी वस्तु का लालच करना''-दसवी आज्ञा है।

प्रश्न 147 : दसवी आज्ञा के आवश्यक कर्तव्य क्या है?

उत्तर : दसवी आज्ञा के कर्तव्य है। कि हमें हमारी स्थिति हालात में पूर्ण सन्तुष्ट होना है। और हमारे पड़ोसी के लिए हमारी आत्मा का भलाई का, व्यवहार होना चाहिए, और हमारे सभी आन्तरिक क्रिया और मर्म उन्हें स्पर्श करें, और जो उसका है उसको बढ़ाएं।

प्रश्न 148 : दसवी आज्ञा में कौन से पाप मना किये गये है?

उत्तर : दसवी आज्ञा में मना किये गये पाप है, अपनी स्वयं की स्थिति से असन्तुष्टि, और अपने पड़ोसी और उसकी सम्पदा से ईष्या और दु:ख करना और कुछ भी जो उसका है, उससे अत्यन्त लगाव और चाहत रखनी मना है।

प्रश्न 149 : क्या कोई मनुष्य है जो परिपूर्णता से परमेश्वर की आज्ञाओं को पूरा कर सके?

उत्तर : कोई भी मनुष्य अपने आप में और किसी भी अनुग्रह से जो उसे इस जीवन में प्राप्त होता है, इस योग्य नहीं है कि, वह पूर्णता से परमेश्वर की आज्ञा को पूरा कर सके। वरन् प्रतिदिन विचार, वचन और कार्यों से वह इन्हें तोड़ता है।

प्रश्न 150 : क्या परमेश्वर की सभी व्यवस्थाओं को तोड़ना, अपने आप में और परमेश्वर की दृष्टि में समान रीति से घृणित है?

उत्तर : परमेश्वर की सभी व्यवस्था को तोड़ना समान रीति से घृणित नहीं है, वरन् कुछ पाप अपने आप में और उनकी उग्रता के कारण, परमेश्वर की दृष्टि में दूसरे की अपेक्षा ज्यादा घृणित है।

प्रश्न 151 : वे कौन सी वृद्धि, उग्रता/बातें है, जो कुछ पापों को अन्य की अपेक्षा ज्यादा घृणित बना देते है?

उत्तर : पाप अपनी उग्रता अग्रलिखित बातों से प्राप्त करते है :

1. **जो इसे तोड़कर दूसरों को दु:ख पहुँचाता है**-यदि वे उम्र में बड़े है। ज्यादा अनुभव और अनुग्रह मे आगे है। व्यवसाय में प्रभावशाली, गुण, स्थिति, पद बड़े है, जो दूसरों के पथ प्रर्दशक और जिसके नमूने सम्भवता दूसरे अनुकरण करे।
2. **वे लोग जो दु:ख पाते है**-यदि वे तत्काल परमश्वेर ओर उसके गुणों के विरोधी हो जाते है, और मसीह और उसके अनुग्रह, पवित्र आत्मा, उसकी साक्षी और कार्यों के विरोधी हो जाए, प्रभावशाली मनुष्यों और बड़ों के विरुद्ध हो जाए, संतों के विरुद्ध विशेष कर कमजोर भाइयों और उनकी आत्मा, या अन्य कोई, या सभी, या बहुतों की भलाई के विरुद्ध हो जाए।
3. **अपमान/अपराध के स्वाभाव और गुण/दोष के आधार पर**-यदि यह प्रगट की गई व्यवस्था के वचन के विरूद्ध है। कई आज्ञाए तोड़ी है। जो कई पाप है। सिर्फ हृदय में सोचा ही नहीं, वरन शब्दों और कार्य में तोड़ा भी, दूसरे को धोखा दिया और उसकी क्षतिपूर्ति नहीं करते।

   यदि ये पाप साधन, करूणा, न्याय, प्रकृति का प्रकाश, विवेक की दृढता, कलीसिया के अनुशासन, और राजकीय दण्ड के विरूद्ध है। यदि ये पाप हमारी प्रार्थना, उद्देश्य, वायदा, शपथ, वाचा और परमेश्वर और मनुष्य के विरूद्ध है। यदि इसे जानबूझकर, इच्छा से, दुस्साहस, निर्लज्जता, घमण्ड, बार-बार आनन्द के साथ, निरन्तर किया जाता हैं। अथवा पश्चाताप के बाद फिर किया जाता है।
4. **समय-स्थान और हालात पर आधारित**-यदि प्रभु के दिन या अन्य किसी, उसकी आराधना के समय, या तत्काल पहले या बाद में, या इसे रोकने के लिए दूसरी मदद, अथवा छुटकारे के लिए और विफलता, सामूहिक स्थान या ऐसे लोगों के सामने जो इससे सम्भवता प्रभावित होकर दूषित तो जाए।

प्रश्न 152 : हर पाप का बदला परमेश्वर क्या देता है ?

उत्तर : हर पाप-सबसे छोटा भी, परमेश्वर की प्रभुता, परमेश्वर की पवित्रता और भलाई और परमेश्वर की धार्मिकता के विरूद्ध होने के कारण, परमेश्वर के क्रोध, श्राप को इस जीवन और आने वाले समय में अपने ऊपर लाता है। और उसका कोई भी पश्चाताप नहीं है। बस एक मात्र मसीह का खून।

प्रश्न 153 : परमेश्वर हमसे क्या चाहता है, कि हम उसके क्रोध ओर श्राप से बच जाए, जो हम, व्यवस्था को तोड़कर अपने ऊपर लाते है?

उत्तर : हम, उसके क्रोध और श्राप से बच जाए, जो व्यवस्था तोड़कर हम अपने ऊपर लाए है। परमेश्वर हमसे चाहता है, कि हम परमेश्वर से पश्चाताप करे, और प्रभु यीशु मसीह पर विश्वास लाए और बाहरी साधन का सही इस्तेमाल करें, जिसके द्वारा मसीह हमें उसकी मध्यस्थता के फायदे प्रदान करता है।

प्रश्न 154: बाहरी साधन क्या है। जिससे मसीह अपनी मध्यस्थता के फायदे हमें देता है?

उत्तर : बाहरी और साधारण साधन, जिनसे मसीह अपनी मधयस्थता के फायदे हमें देता है। उसके धार्मिक अनुष्ठान/अध्यादेश है, विशेष कर वचन, संस्कार और प्रार्थना जो, सब चुने हुओं में उनके उद्धार के लिए प्रभावी होते हैं।

प्रश्न 155 : वचन किस प्रकार उद्धार के लिए प्रभावी होता है?

उत्तर : परमेश्वर की आत्मा वचन पड़ता है। परन्तु, पापी को नम्र, पापी समझने और प्रकाशन देने में, परमेश्वर के वचन का प्रचार प्रभावी होता है। जो उन्हे अपने से अलग कर यीशु मसीह में लाता है। और उन्हें मसीह की समानता में बनाता है, और उन्हें मसीह की इच्छा के आधीन करता है, उन्हे परीक्षा और भ्रष्टता के विरूद्ध शक्ति देता है। उन्हें अनुग्रह में बढ़ाता, हृदय में पवित्रता स्थापित करता और विश्वास से तसल्ली, उद्धार के लिए देता है।

प्रश्न 156 : क्या परमेश्वर का वचन सभी को पढ़ना चाहिए?

उत्तर : यद्यपि सभी को इस बात की अनुमति नहीं है, कि वे सबके सामने सभा में परमश्वेर का वचन पढ़े। फिर भी सभी लोगों को, इसे अपने आपके लिए और अपने परिवारों के साथ पढ़ना जरूरी है। जिसके लिए परमेश्वर के वचन को, मौलिक भाषा से सभी भाषा में अनुवादित होने की आवश्यकता है।

प्रश्न 157 : परमेश्वर के वचन को किस प्रकार पढ़ना चाहिए?

उत्तर : पवित्र शास्त्र को बड़े आदर और सम्मान के साथ पढ़ना चाहिए, इस दृढ़ता के साथ, कि वह परमेश्वर का वचन है और वही हम इस योग्य बनाता है, कि हम वचन को समझ सके, उसे जानने, विश्वास और परमेश्वर की इच्छा जो वचन में प्रगट है, की आज्ञा मानने की इच्छा के साथ, और उसके कार्यक्षेत्र का ध्यान के साथ मनन, लागू करने, और प्रार्थना के साथ पढ़ना चाहिए।

प्रश्न 158 : किसके द्वारा परमेश्वर का वचन प्रचार किया जाना चाहिए?

उत्तर : परमेश्वर के वचन का प्रचार, सिर्फ उनके द्वारा जो पर्याप्त इसके योग्य है और उचित रीति से इस कार्य के लिए, मान्यता प्राप्त किये और बुलाए गये हैं, किया जाना चाहिए।

प्रश्न 159 : परमेश्वर के वचन का किस प्रकार प्रचार करना है, उनके द्वारा जो इसके लिए बुलाए गये है?

उत्तर : जिन्हें वचन की सेवा में मेहनत के लिए बुलाया गया है। उन्हें सही उपदेश (सिद्धान्तों) का प्रचार, परिश्रम से समय और असमय करना चाहिए। साफ शब्दों में मनुष्य की बुद्धि के लुभावने शब्दों में नहीं, वरन आत्मा की सामर्थ और प्रकाशन में, विश्वास योग्यता से परमेश्वर की सारी समझ को बताते हुए, अपने आपको, सुनने वालों की जरूरत और योग्यता के स्थान पर रखना, परमेश्वर और लोगों की आत्मा से उत्साहित प्रेम के साथ, सच्चाई से उसकी महिमा और उनका परिवर्तन, बढ़ोत्तरी और उद्धार को बताते हुए प्रचार करना चाहिए।

प्रश्न 160 : जो वचन का प्रचार सुनते हैं, उनसे क्या उम्मीद की जाती है?

उत्तर : जो परमेश्वर के वचन का प्रचार सुनते है, उनसे ये उम्मीद की जाती है, कि वे इसके लिए प्रयास करके, तैयारी और प्रार्थना के साथ आए। वचन से जो वे सुनते है, उसकी जांच करे। सच्चाई को विश्वास, प्रेम, दीनता के साथ, दिमाग की तत्परता से, उसे परमेश्वर का वचन मानते हुए स्वीकार करे, मनन करते हुए इसे सम्मान दे, इसे हृदय में बसा ले और अपने जीवन में इसका फल दिखाए।

प्रश्न 161 : किस प्रकार संस्कार उद्धार के प्रभावी साधन बनते है?

उत्तर : संस्कार उद्धार के लिए प्रभावी माध्यम बनते है। इसलिए नहीं कि उनमें कोई सामर्थ है। अथवा इसका प्रबन्धन करने वाले की इच्छा से गुण निकलते है। परन्तु सिर्फ पवित्र आत्मा के कार्य करने से और मसीह की आशीष से, जिसने उन्हें नियुक्त किया है।

प्रश्न 162 : संस्कार क्या है?

उत्तर : संस्कार, मसीह द्वारा उसकी कलीसिया में प्रारम्भ किया हुआ पवित्र अनुष्ठान है। जो उसकी मध्यस्थता के लाभ, के चिन्ह, प्रमाणिकता को उनके लिए दर्शाता है, कि अनुग्रह की वाचा में विश्वास को मजबूत करे और बढ़ाए और अन्य अनुग्रह उनमें बढ़ाएं, उन्हें आज्ञाकारिता का दायित्व समझाए। उनके प्रेम और संगति को एक दूसरे के साथ खुशी प्रदान करे, और उन्हें जो अनुग्रह से बाहर है से अलग करें।

प्रश्न 163 : संस्कार के कौन से भाग (हिस्से) है?

उत्तर : संस्कार के दो भाग होते है। **पहला**-बाहरी चिन्ह, मसीह की नियुक्ति के अनुसार इस्तेमाल होता है। **दूसरा**-आन्तरिक और आत्मिक अनुग्रह, जो मतलब प्रगट करता है।

प्रश्न 164 : नये नियम में मसीह ने कितने संस्कार अपनी कलीसिया में प्रारम्भ किये है।

उत्तर : नये नियम में, मसीह ने अपनी कलीसिया में बपतिस्मा और प्रभुभोज मात्र दो संस्कार प्रारम्भ किये है।

प्रश्न 165 : बपतिस्मा क्या है

उत्तर : बपतिस्मा, नये नियम का संस्कार है। जिसमें मसीह ने, पानी से पिता और पुत्र और पवित्र आत्मा के नाम से सफाई ठहराई है, जो इस बात का चिन्ह और प्रमाण है, कि उन्हें उसने अपने में जोड़ लिया है। उसके खून से उनके पापों का पश्चाताप हुआ है, और आत्मा के द्वारा उनका नया जन्म हो गया है। उन्हें गोद लिया गया और अनन्त जीवन के लिए उनका पुनरूत्थान हुआ है। इसलिए बपतिस्मा लेने वालों को सदृश्य कलीसिया में प्रवेश मिलता और वे इस बात को सामूहिकता से अंगीकार करते हैं, कि वे पूर्णता प्रभु के है।

प्रश्न 166 : बपस्मिता किन्हें दिया जा सकता है?

उत्तर : बपस्मिता उन्हें नहीं दिया जाता, जो सदृश्य कलीसिया में नहीं है, और वायदे की वाचा से अन्जान है। जब तक वे अपने विश्वास और आज्ञाकारिता को यीशु के लिए अंगीकार नहीं करते। परन्तु, बच्चे जो ऐसे माता-पिता के जो यीशु में विश्वास को अंगीकार करते और उसकी आज्ञा मानते है, दोनो अथवा एक। ऐसे बच्चों को वाचा का हिस्सा मान कर बपतिस्मा दिया जाता है।

प्रश्न 167 : किस प्रकार हम अपने बपतिस्में को और बेहतर करते है?

उत्तर : बपतिस्में को बेहतर करने की जिम्मेदारी जरूरी है फिर इसे अनदेखा किया जाता है। इस जिम्मेदारी को पूरा करना, हमारा पूरे जीवन का काम है। विशेषकर परीक्षा के समय और जब यह दूसरों को दिया जाता है, और हम उपस्थित रहते है। हमें इसके स्वभाव की गम्भीरता और धन्यवाद के साथ और उस निष्कर्ष जिसके लिए मसीह ने इसे नियुक्त किया, सौभाग्य और लाभ और गारन्टी जो इससे मिलती है, और गम्भीर शपथ जो हमने ली है। हमारे इसमें नाकाम होने और बपतिस्में के अनुग्रह के विरुद्ध जानें और उसमें बने रहने से, हमें अपने पापमय अशुद्धि से दीन बनना है। और पापों की क्षमा के आश्वासन और अन्य सभी आशीषों की गारन्टी जो इस संस्कार में मिलती है, उनके आश्वासन में बढ़ना है। और मसीह की मृत्यु और पुनरुत्थान से शक्ति लेते हुए,

जिसमें हमने पाप को नाश और अनुग्रह को पाने के लिए बपतिस्मा लिया, और विश्वास में जीने के लिये, परिश्रम करना, और अपने परिवर्तन को धार्मिकता और पवित्रता में उन लोगों के समान, जिन्होंने अपने नाम मसीह को दे दिये, बनाए रखना। और जिस प्रकार हमने एक ही आत्मा से, एक शरीर में बपतिस्मा लिया है। भाइयों का प्रेम बनाए रखना है।

प्रश्न 168 : प्रभु भोज क्या है?

उत्तर : प्रभु भोज नये नियम का संस्कार है। जिसमें रोटी और दाखरस, देने और लेने से, जैसा यीशु मसीह ने नियुक्त किया है, हम उसकी मृत्यु को याद करते हैं, और वे जो उसके शरीर और खून से तृप्त होते और संगति करते हैं, कि अपनी आत्मिकता का पोषण औरअनुग्रह की बढ़ोत्तरी करें, उनकी संगति मसीह के साथ पक्की होती है, और वे परमेश्वर से जुड़े होने को नया और अपना धन्यवाद उसे प्रगट करते हैं, और एक ही अद्‌भुद शरीर के सदस्यों के समान, एक दूसरे से परिपक्व प्रेम और संगति प्रगट करते हैं।

प्रश्न 169 : मसीह ने किस प्रकार, प्रभु भोज के संस्कार में, रोटी और दाखरस को देने और लेने के लिए नियुक्त किया है?

उत्तर : प्रभु भोज के संस्कार के प्रबन्धन के लिए, मसीह ने वचन के सेवकों को नियुक्त किया है, कि वे वचन, धन्यवाद और प्रार्थना द्वारा रोटी और दाखरस को सामान्य इस्तेमाल से अलग करें, और रोटी लेकर तोड़ें और दोनों रोटी और दाखरस, इसमें शामिल होने वालों को दें। शामिल होने वाले उसी प्रकार धन्यवाद, प्रार्थना से, यीशु मसीह का शरीर, जो तोड़ा गया और उनके लिए दिया गया और उसका खून उनके लिए बहा, धन्यवाद के साथ, याद करते हुए, रोटी को लें और खाएं और दाखरस को पिएं।

प्रश्न 170 : वे जो सच्चाई से प्रभु भोज में शामिल होते हैं, किस प्रकार मसीह के शरीर और लहू से पोषित होते हैं?

उत्तर : मसीह का शरीर और खून, शारीरिक और सांसारिक रीति से प्रभु भोज की रोटी और दाखरस में और इसके साथ और आधीनता में, उपस्थित और प्रस्तुत नहीं होता, फिर भी इसे लेने वाले के, विश्वास से आत्मिक रीति से, यह उपस्थित होता है, और किसी भी तरह तत्व और उनके बाहरी गुणों से सच्चाई और वास्तविकता में कम नहीं होता है, इसलिए जो सच्चाई से प्रभु भोज में शामिल होते हैं, मसीह के शरीर और लहू से, शारीरिक और सांसारिक रीति से नहीं, वरन् आत्मिक रीति से पोषित होते हैं। जब वे विश्वास से क्रूसित मसीह को और उसकी मृत्यु के फायदे को, स्वीकारते और अपनाते हैं, वे

सत्यता और वास्तव में पोषित होते हैं।

प्रश्न 171 : वे जो प्रभु भोज के संस्कार को प्राप्त करते हैं, उन्हें इसे लेने से पहले किस प्रकार अपने आपको, इसे लेने के लिए तैयार करना होता है?

उत्तर : वे जो प्रभु भोज के संस्कार को प्राप्त करते हैं, इसे लेने आने से पहले, उन्हें अपने आपको कि वे यीशु मसीह में हैं, अपने पाप और इच्छाएं, अपने ज्ञान, विश्वास, पश्चाताप की सच्चाई को, परमेश्वर और भाईयों के प्रति प्रेम, सभी मनुष्य के लिए भलाई, उनको क्षमा जिन्होंने उनके विरुद्ध गलती की है, मसीह के लिए अपनी चाहत और अपनी नई आज्ञाकारिता को, जांचते हुए तैयार करें और गम्भीर मनन और प्रार्थना से, इन अनुग्रहों का नया करते हुए उन पर अमल करें।

प्रश्न 172 : क्या वह, जो स्वयं का, मसीह में होना और अपनी तैयारी के विषय में शक रखता है, प्रभु भोज में शामिल हो सकता है?

उत्तर : वह, जो अपने को मसीह में होने और अपनी तैयारी के विषय में शक (सन्देह) करता है, हो सकता है, मसीह में सच्चा और सच्ची रुचि रखता है। यद्यपि वह अभी इसके प्रति आश्वस्त नहीं है, तो वे परमेश्वर की दृष्टि में, यदि वह उचित रीति से, प्रभु भोज की चाहत से प्रभावित है, और मसीह में होने की सच्ची इच्छा रखता है और अपने पापों से अलग होना चाहता है, तो (क्योंकि वायदा किया गया है और यह संस्कार कमजोर और सन्देह करने वाले विश्वासी को सहारा देता है) उसे अपने अविश्वास के लिए खेद प्रकट करना है, और ऐसा करते हुए वह प्रभु भोज ले सकता है, और उसे लेना चाहिए, ताकि वह और सामर्थ पाकर, विश्वास में दृढ़ हो जाए।

प्रश्न 173 : क्या, कोई भी जो विश्वास का अंगीकार करता है और प्रभु भोज लेना चाहता है, उसे प्रभु भोज से अलग रखा जा सकता है?

उत्तर : ऐसे लोग जो अनजान हैं और धोखा देते हैं अपने विश्वास के अंगीकार से मेल नहीं खाते (अनुसार नहीं चलते) और प्रभु भोज में शामिल होना चाहते हैं, उन्हें उस अधिकार से, जो मसीह ने कलीसिया को दिया है, प्रभु भोज नहीं देना चाहिए, (नहीं दिया जा सकता) जब तक कि वे चेतावनी, सुझाव स्वीकार नहीं करते और अपने नये जीवन को प्रगट नहीं करते।

प्रश्न 174 : वे जो प्रभु भोज के संस्कार के प्रबन्धन के समय इसे प्राप्त करते हैं, उनके लिए क्या बातें आवश्यक हैं?

उत्तर : वे जो प्रभु भोज के समय इसे प्राप्त करते हैं, उनके लिए जरूरी है, कि इसके प्रबंधन के समय, वे पूर्ण पवित्र सम्मान और ध्यान के साथ, परमेश्वर के इस

अनुष्ठान में शांत रहें, सावधानी से संस्कार के तत्व और क्रिया को मान्यता दें, ध्यान रखते हुए प्रभु के शरीर को समझें और उसकी मृत्यु और दु:खों पर मनन करें, और उससे अपने अनुग्रह को, स्वयं में प्रभावी कार्य करने दें, अपने आप को परखें और पाप की क्षमा मांगे, मसीह की सच्ची, भूख और प्यास में विश्वास से, उसमें तृप्त हों, परिपूर्णता प्राप्त करें, उसकी विशेषता में भरोसा रखें, उसके प्रेम में आनन्दित हों, उसके अनुग्रह के लिए धन्यवादी हों, अपनी वाचा को, परमेश्वर के साथ और संतों के प्रति, अपने प्रेम को फिर से नया करें।

प्रश्न 175 : प्रभु भोज के संस्कार को लेने के पश्चात् मसीहियों के क्या कर्तव्य हैं?

उत्तर : प्रभु भोज के संस्कार को लेने के पश्चात् मसीहियों के कर्तव्य हैं, कि वे गम्भीरता से सोचें, कि वहाँ उन्होंने, कैसा और कितनी सफलता से अपने साथ व्यवहार किया, यदि वे अपने आप में उत्साह और तसल्ली पाते हैं, तो इसके लिए परमेश्वर का धन्यवाद दें और इसे निरंतर मांगते रहें, वापस गिरने के प्रति सावधान रहें, अपनी शपथ को पूरी करें और अपने आप को इसमें निरंतर शामिल करने के लिए उत्साहित करें, लेकिन यदि उन्हें कोई फायदा नहीं हुआ है, तो वे अपनी तैयारी और संस्कार में शामिल होने की समीक्षा करें, दोनों बातों में यदि वे अपने आपको, परमेश्वर के और अपने विवेक में सही पाते हैं, तब प्रतिफल की प्रतीक्षा करें, जो समय पर उन्हें प्राप्त होगा, परंतु यदि वे अपने आपको, किसी भी बात में असफल पाते हैं, तो उन्हें अपने आपको दीन करना है और इसमें, बाद में ज्यादा सावधानी और मेहनत करके शामिल होना है।

प्रश्न 176 : किन बातों में बपतिस्मे और प्रभुभोज के संस्कार, एक समान हैं?

उत्तर : बपतिस्मे और प्रभु भोज का संस्कार एक समान है, जिसमें दोनों का सृजनकर्ता परमेश्वर है। दोनों का आत्मिक हिस्सा मसीह और उसके फायदे हैं। दोनों एक ही वाचा के गारन्टी है। दोनों सुसमाचार के सेवकों द्वारा दिये जाते हैं और यीशु के दोबारा आगमन तक कलीसिया में बने रहेंगे।

प्रश्न 177 : किन बातों में बपतिस्मे और प्रभु भोज का संस्कार, एक दूसरे से अलग है?

उत्तर : बपतिस्मे और प्रभु भोज में भिन्नता है, जिसमें बपतिस्मा, एक ही बार हमारे नये जीवन और मसीह में जुड़ने के, चिन्ह और प्रमाण के रूप में जाता है। जबकि, प्रभु भोज के संस्कार को रोटी और दाखरस में, मसीह को, हमारी आत्मा के आत्मिक पोषण और उसमें हमारी निरंतर बढ़ोत्तरी को प्रस्तुत और

प्रगट करने के लिए, सिर्फ उन्हें जो अपने आप को परखने योग्य है, बार-बार लिया/दिया जाता है।

प्रश्न 178 : प्रार्थना क्या है?

उत्तर : प्रार्थना, पवित्र आत्मा की सहायता, से मसीह के नाम में, अपनी इच्छाओं को परमेश्वर के सामने अपने पापों को अंगीकार करते हुए, और उसकी करुणा को मानते हुए धन्यवाद के साथ प्रस्तुत करना है।

प्रश्न 179 : क्या हमें सिर्फ परमेश्वर से प्रार्थना करनी है?

उत्तर : सिर्फ (एकमात्र) परमेश्वर ही हृदय को जानता, विनती को सुनता, पाप क्षमा करता और सभी की इच्छा पूरी करता है, और सिर्फ उस पर ही विश्वास और धार्मिक आराधना में उसकी आराधना करनी है। प्रार्थना, आराधना का महत्वपूर्ण हिस्सा है। इसलिए इसे सभी के द्वारा, परमेश्वर से ही करनी है अन्य से नहीं।

प्रश्न 180 : मसीह के नाम से प्रार्थना करना क्या है?

उत्तर : मसीह के नाम से प्रार्थना करना, उसकी आज्ञा को मानना और उसके वायदे में भरोसा है, कि उसके बदले करुणा मांगे, सिर्फ उसके नाम को लेना ही नहीं, वरन् अपने उत्साह को प्रार्थना के लिए बढ़ाना और अपने साहस, शक्ति और प्रार्थना की स्वीकार्यता की आशा को, मसीह और उसकी मध्यस्थता से, उत्साहित करना है।

प्रश्न 181 : हमें मसीह के नाम से क्यों प्रार्थना करनी है?

उत्तर : पापी मनुष्य, और उसकी परमेश्वर से दूरी बहुत ज्यादा है, कि हम बिना बिचवईए के उसकी उपस्थिति तक नहीं पहुँच सकते और उस महिमा के कार्य के लिए मसीह के अतिरिक्त कोई भी नियुक्त नहीं किया गया, न ही इस योग्य है। इसलिए हमें मसीह के नाम से ही प्रार्थना करनी है, अन्य के नहीं।

प्रश्न 182 : आत्मा किस प्रकार हमारी प्रार्थना करने में मदद करती है?

उत्तर : हमें नहीं मालूम, कि हमें किस प्रकार प्रार्थना करनी चाहिए, हमें किसके लिए, क्या और कैसे प्रार्थना करनी है। आत्मा हमें, इस समझ के योग्य बनाते हुए, हमारी कमजोरी में, हमारी मदद करती है, और हमारे हृदय में कार्य और उत्साह को (यद्यपि सभी में नहीं, न हमेशा, न एक समान) बढ़ाते हुए सही प्रार्थना के लिए जो जरूरी है, उस समझ, चाहत और अनुग्रह को प्रदान करती है।

प्रश्न 183 : हमें किनके लिए प्रार्थना करनी है?

उत्तर : हमें पूरी कलीसिया, जो पृथ्वी पर है, न्यायाधीश, सेवक, अपने लिए, अपने भाइयों के लिए, अपने दुश्मनों और सभी जीवित मनुष्य और जो आने वाले हैं, के लिये प्रार्थना करनी है। परंतु मृतकों के लिए नहीं, न ही उनके लिए जिन्होंने मृत्यु का पाप किया है।

प्रश्न 184 : हमें किन चीजों के लिए प्रार्थना करनी है?

उत्तर : हमें सभी बातों के लिए, जिससे परमेश्वर की महिमा होती है, कलीसिया के कामों, अपने और दूसरों की भलाई के लिए प्रार्थना करनी चाहिए, परंतु जो अनुचित है, उसके लिए नहीं।

प्रश्न 185 : हमें किस प्रकार प्रार्थना करनी चाहिए?

उत्तर : हमें परमेश्वर की महिमा को समझते हुए, और अपनी अयोग्यता, जरूरत और पापों को जानते हुए, पश्चाताप, धन्यवाद और बड़े हृदय से, समझ, विश्वास, सच्चाई, उत्साह, प्रेम और धैर्य से उसकी प्रतीक्षा करते हुए, उसकी इच्छा में दीनता से, समर्पित होकर प्रार्थना करनी चाहिए।

प्रश्न 186 : परमेश्वर ने प्रार्थना के कर्तव्य में बढ़ने के लिए हमें कौन से नियम दिए हैं?

उत्तर : परमेश्वर का पूरा वचन, हमें प्रार्थना के कर्तव्य में अगुआई करता है। परन्तु प्रार्थना के विशेष नियम, हमें अपने उद्धारकर्ता की प्रार्थना, जो उसने अपने शिष्यों को सिखायी में दिये है। जिसे सामान्यतः प्रभु की प्रार्थना कहा जाता है।

प्रश्न 187 : प्रभु की प्रार्थना को कैसे इस्तेमाल करना चाहिए?

उत्तर : प्रभु की प्रार्थना, सिर्फ एक निर्देशित करने वाला नमूना ही नहीं है, जिसके आधार पर हम अन्य प्रार्थना करते है। परन्तु इसे प्रार्थना की तरह इस्तेमाल करना है। इसलिए इसे समझ, विश्वास, सम्मान, और अन्य अनुग्रह, जो प्रार्थना के कर्तव्य को सही प्रकार से पूरा करने के लिए जरूरी है, के साथ करना चाहिए।

प्रश्न 188 : प्रभु की प्रार्थना कितने हिस्सों को लेकर बनती है? अथवा प्रभु की प्रार्थना के कितने भाग है?

उत्तर : प्रभु की प्रार्थना के तीन भाग है। जो प्रस्तावना, विनती और निष्कर्ष है।

प्रश्न 189 : प्रभु की प्रार्थना में, प्रस्तावना हमें क्या सिखाता है?

उत्तर : प्रभु की प्रार्थना में प्रस्तावना (भूमिका) इन शब्दों में व्यक्त है **''हे हमारे पिता तू जो स्वर्ग में है''** हमें सिखाता है, कि जब हम प्रार्थना करें, उसके पिता समान की भलाई के विश्वास की दृढता, और हमारी उनमें रूचि के साथ, आदर और अन्य बच्चे के गुणों, स्वर्गीय लगाव, और उसकी प्रभुत्व की

सामर्थ की समझ, महिमा और अनुग्रहकारी विनीत भाव के साथ परमेश्वर के पास जाए, और दूसरों के लिये भी प्रार्थना करें।

प्रश्न 190 : हम पहली विनती में क्या प्रार्थना करते है?

उत्तर : पहली विनती (जो **''तेरा नाम पवित्र माना जाए''**) में हम अपने और सभी मनुष्य की अयोग्यता, जो हममें हैं, अंगीकार करते हुए प्रार्थना करते हैं, कि परमेश्वर को सच्चा सम्मान दें, कि परमेश्वर अपने अनुग्रह से, हमें और सभी को, इस योग्य बनाएं और समझ दें, कि हम उसके ऊँचे सम्मान महिमा, उसके शीर्षक, गुण, अध्यादेश, वचन, कार्य और अन्य सब कुछ जिससे वह अपने आप को प्रगट करता है। जाने और उसे स्वीकार करें, और उसे विचार, शब्दों, कार्यों से महिमा दे, कि वह नास्तिकता, अज्ञान, मूर्तिपूजा, घृणित बातें और सबकुछ जिससे उसका अनादर होता है, उसे रोकें और अलग करें, और वह उसकी प्रभुता और सुरक्षा से, सभी बातों को अपनी महिमा के लिए निर्देशित और ठीक करें।

प्रश्न 191 : हम दूसरी विनती में क्या प्रार्थना करते है?

उत्तर : दूसरी विनती (जो **''तेरा राज्य आए है''**) में, हम स्वयं और सभी मनुष्य जो स्वभाव से पाप और शैतान के प्रभुत्व के आधीन हैं, इस बात को स्वीकार करते हैं, और हम प्रार्थना करते है, कि पाप और शैतान का राज्य नाश किया जाए, सुसमाचार पूरे संसार में फैल जाए, यहूदी बुलाए जाए और अन्य जाति से लोग आए, कलीसिया सभी सुसमाचार के सेवकों से सुसज्जित हो, भ्रष्टता से पवित्र की जाए, और नागरिक न्यायधीशों का समर्थन और देखरेख प्राप्त हो, मसीह के अध्यादेश, नियम शुद्धता से आगे बढ़ें और जो अभी भी पाप में है उनके बदलने के लिए प्रभावी ठहरे, और जो पहले से मसीह में हैं। उन्हें निश्चयता, तसल्ली और बढ़ोत्तरी प्रदान करें, कि मसीह यहाँ (इस दुनिया) में हमारे हृदय पर राज्य करें, और हम हमेशा उसके साथ राज्य करें, और वह अपने सामर्थ के राज्य को, पूरे संसार में क्रियाविन्तित करने में आनन्दित हो, और इस उद्देश्य के लिए अति सहायक हो।

प्रश्न 192 : हम तीसरी विनती में किस बात के लिए प्रार्थना करते हैं?

उत्तर : तीसरी विनती जो है, **''तेरी इच्छा जैसे स्वर्ग में पूरी होती है पृथ्वी पर भी हो''** में हम स्वीकारते हैं कि स्वभाव से हम और सभी मनुष्य, सिर्फ उसकी इच्छा जानने और करने में अयोग्य और अनिच्छा ही नहीं रखते, वरन् उसके वचन के विरुद्ध विद्रोह करते हैं, और उसकी देखभाल के विरुद्ध कुड़कुड़ाते और असंतुष्ट होते हैं, और शैतान और शरीर की इच्छा करने के लिए तत्पर रहते हैं। इन बातों को मानते हुए हम प्रार्थना करते हैं, कि परमेश्वर हमसे और अन्य सभी से-पूरा अन्धापन, कमजोरी, अयोग्यता, हृदय की भ्रष्टता अपनी

आत्मा द्वारा, हमसे दूर करें, और अपने अनुग्रह से हमें, दीनता, आनन्द, विश्वास, योग्यता, परिश्रमी, उत्साही, सच्चा और निरन्तरता के साथ इस योग्य बनाएं कि हम उसकी इच्छा जानें, पूरा करें और सब बातों में उसकी इच्छा के आधीन हो जाए, जैसा स्वर्ग में स्वर्गदूत करते हैं।

प्रश्न 193 : हम चौथी विनती में क्या प्रार्थना करते हैं?

उत्तर : चौथी विनती में जो **''हमारे दिन भर की रोटी आज हमें दे''** है हम स्वीकार करते हैं, कि आदम में और अपने पापों से हमने इस जीवन में बाहरी आशीषों के अधिकार को समाप्त कर दिया है, और उचित रीति से परमेश्वर ने उन्हें हमसे अलग किया है, और उन्हें हमारे लिए श्रापित किया है, और वे हमें संभालने योग्य नहीं हैं न ही हम उनके हकदार हैं, न ही हम अपने परिश्रम से उन्हें प्राप्त कर सकते हैं। परंतु हम उन्हें उचित रीति से पाने की चाहत और इस्तेमाल के लिए तत्पर रहते हैं, ये मानते हुए हम, अपने और दूसरों के लिए प्रार्थना करते हैं और परमेश्वर की सुरक्षा (कृपादृष्टि) की प्रतीक्षा, दिन प्रतिदिन उचित संसाधन के इस्तेमाल के लिए उस पर आश्रित होते हैं, कि उसके मुफ्त दान और उसके पिता की आत्मा में उनका, पर्याप्त भाग का आनन्द उठाएं। और वह हमें निरन्तर हमारे पवित्र और आराम के, इस्तेमाल के लिए उनको आशीषित करे, और हमें उनमें संतुष्टि हो, और हम उन सभी चीजों से अलग हो जो हमारे अस्थायी मदद और आराम के विरुद्ध है।

प्रश्न 194 : पांचवी विनती में हम किस बात के लिए प्रार्थना करते हैं?

उत्तर : पांचवी विनती में (जो **''हमारे अपराधों को क्षमा कर जैसे हम अपने अपराधियों को क्षमता करते हैं''**) हम स्वीकार करते हैं, कि हम और अन्य सभी मौलिक और वास्तविक पाप, दोनों के लिए दोषी हैं, जिससे हम परमेश्वर के न्याय के दोषी हैं और न हम न अन्य कोई उस दोष के लिए परमेश्वर को थोड़ा भी संतुष्ट कर सकते हैं। इसलिए हम अपने और दूसरों के लिए प्रार्थना करते हैं, कि परमेश्वर अपने मुफ्त अनुग्रह, मसीह की आज्ञाकारिता और संतुष्टि जिसे विश्वास से समझकर अपनाया जाता है, हमें पाप के दण्ड और दोष दोनों से स्वतंत्र करेगा, और हमें अपने प्रेम का पात्र बनाएगा, और निरन्तर हमें अपना अनुग्रह देगा, हमें रोज की नाकामियों से क्षमा करेगा और रोजाना हमारे क्षमा के आश्वासन को बढ़ाते हुए, हमें शांति और आनन्द से भरेगा, हमें ये सब मांगने का साहस, उत्साह और उम्मीद होती है। जब हम स्वयं में यह गवाही देते हैं, कि हमने हृदय से दूसरों को उनके अपराध के लिए क्षमा किया है।

प्रश्न 195 : हम छठी विनती में क्या प्रार्थना करते हैं?

उत्तर : छठी विनती में (**''और हमें परीक्षा में न पड़ने दे, वरन बुराई से बचा''**) हम यह अंगीकार करते हैं, कि अति बुद्धिमानी, धर्मी और अनुग्रहकारी परमेश्वर, पवित्र और धर्मी उद्देश्य के लिए ऐसा होने दें, कि शायद हम परीक्षा में पड़कर, विफल होकर इसमें कुछ समय के लिए बन्दी हो जाए। शैतान, संसार और शरीर, सामर्थ से इस ताक में है कि, हमें अलग कर अपने जाल में फँसा लें और हम अपने पापों की क्षमा पाने के बाद भी, उस भ्रष्टता और कमजोरी के कारण सिर्फ परीक्षा में नहीं फँसते वरन् अपने आपको परीक्षा में पड़ने देते हैं। परंतु हम परीक्षा से संघर्ष नहीं करते न ही ऐसी योग्यता रखते हैं, कि हम उनमें से निकल जाएं, जिससे हम उनके सामर्थ की आधीनता में फँस जाते हैं। इसलिए हम प्रार्थना करते हैं, कि परमेश्वर संसार और जो कुछ इसमें है उन पर शासन (प्रभुता) करे, शरीर (पाप) पर नियंत्रण, शैतान को बाँधे, सब चीजों को व्यवस्थित, अनुग्रह के सब संसाधन को दें और आशीषित करें और उनके इस्तेमाल में जागृत, उत्साहित करें, कि हम और सभी लोग उसकी कृपादृष्टि से पाप की परीक्षा में न पड़ें, और यदि परीक्षा होती है, तो उसकी आत्मा से, हमें सामर्थ मिले और परीक्षा की घड़ी में हम स्थिर रह सकें, और यदि परीक्षा में गिरते हैं तो वापस खड़े हो सकें, इससे मुक्त हो, और पवित्र और बेहतर हो, कि हमारा पवित्रीकरण और उद्धार सिद्ध हो जाए, और शैतान हमारे पैरों तले कुचला जाए, और हम हमेशा के लिए पाप, परीक्षा और सभी बुराई से मुक्त हो जाए।

प्रश्न 196 : प्रभु की प्रार्थना का निष्कर्ष (आखिरी भाग) क्या सिखाता है?

उत्तर : प्रभु की प्रार्थना का निष्कर्ष (आखिरी भाग) है (**''क्योंकि राज्य, सामर्थ और महिमा तेरी ही है-आमीन''**) सिखाता है। हम अपनी विनती इस तर्क के साथ करें, कि हममें अथवा अन्य किसी प्राणी में कोई भी योग्यता नहीं है। परंतु परमेश्वर ही योग्य है, और अपनी प्रार्थना में हम परमेश्वर को अनन्तकालीन प्रभुता का स्वामी, सर्वसामर्थी और महिमा में परिपूर्ण मानते हुए उसकी स्तुति करें, जिसके अनुरूप वह इस योग्य है और हमारी मदद करता है। ताकि हम, विश्वास में वह करेगा, जानकर, साहस से भर कर, उससे मांगे, और उस पर भरोसा करें, कि वह हमारी विनती पूरी करेगा, और अपनी इस इच्छा का प्रमाण और आश्वासन देने के लिए कहते हैं, आमीन।

●

संक्षिप्त प्रश्नावली

The Shorter Catechism

प्रश्न 1 : मनुष्य का मुख्य (प्रमुख) उद्देश्य क्या है?

उत्तर : मनुष्य जीवन का मुख्य उद्देश्य, युगानयुग परमेश्वर की महिमा करना और उसमें आनन्दित रहना है।

प्रश्न 2 : हम उसकी महिमा करे व उसमें आनन्दित कैसे रहें, इसके लिए परमेश्वर ने हमें निर्देशित करने के लिए, कौन सा नियम दिया है?

उत्तर : परमेश्वर का वचन, जो पुराने और नये नियम के पवित्र शास्त्र में निहित है ही एकमात्र नियम है, जो हमें सिखाता (निर्देशित करता) है कि हम कैसे उसकी महिमा करें और उसमें आनन्दित रहें।

प्रश्न 3 : पवित्र शास्त्र हमें मुख्यत: क्या सिखाता है?

उत्तर : पवित्र शास्त्र मुख्यत: सिखाता है, कि मनुष्य, परमेश्वर के बारे में क्या विश्वास करे और परमेश्वर मनुष्य से किन कर्तव्यों की अपेक्षा करता है?

प्रश्न 4 : परमेश्वर क्या है?

उत्तर : परमेश्वर, आत्मा, असीमित, अनन्तकालीन है तथा अपने स्वरूप, बुद्धि, शक्ति, पवित्रता, न्याय, भलाई और सच्चाई में कभी न बदलने वाला, अर्थात अटल है।

प्रश्न 5 : क्या एक से अधिक परमेश्वर हैं?

उत्तर : नहीं! केवल एकमात्र एक ही जीवित और सच्चा परमेश्वर है।

प्रश्न 6 : परमेश्वरत्व में कितने व्यक्ति हैं?

उत्तर : परमेश्वरत्व में तीन व्यक्ति पिता, पुत्र और पवित्र आत्मा है और ये तीनों एक ही परमेश्वर हैं, तत्व में एक और सामर्थ व महिमा में समान है।

प्रश्न 7 : परमेश्वर के क्या संकल्प (निर्णय) हैं?

उत्तर : परेश्वर के संकल्प, उसकी इच्छा की सम्मति के अनुसार उसके अनन्त उद्देश्य हैं, जिनके द्वारा उसने हर एक बात को जो होती है अथवा होनी है, को अपनी महिमा के लिये पहले से ठहराया है।

प्रश्न 8 : परमेश्वर अपने संकल्पों (निर्णयों) को कैसे पूरा करता है?

उत्तर : परमेश्वर अपने संकल्पों को, सृष्टि रचने और उसकी देख-रेख करने के द्वारा पूरा करता है।

प्रश्न 9 : संसार की सृष्टि कैसे हुई ?

उत्तर : संसार की सृष्टि परमेश्वर के सामर्थी वचन के द्वारा, बिना किसी वस्तु के छः दिन में, बनाने के द्वारा हुई और यह अति सुन्दर थी।

प्रश्न 10 : परमेश्वर ने कैसे मनुष्य की सृष्टि की ?

उत्तर : परेश्वर ने मनुष्य को नर और नारी करके ज्ञान, धार्मिकता और पवित्रता में, अपनी समानता में बनाया और उन्हें सारी सृष्टि पर प्रभुता (अधिकार) दिया।

प्रश्न 11 : परमेश्वर के देख-रेख के प्रबन्धन के कार्य क्या हैं?

उत्तर : परमेश्वर के प्रबन्धन के कार्य, उसकी अत्यन्त पवित्रता, बुद्धिमता और सामर्थ से सारी सृष्टि व उसके कार्यों को सम्भालना व उन पर प्रभुता करना है।

प्रश्न 12 : परमेश्वर ने मनुष्य की सृष्टिगत अवस्था में, उसके लिये कौन सी विशेष विधियाँ ठहरायी?

उत्तर : जब परमेश्वर ने मनुष्य की सृष्टि की, तो उसके साथ पूर्ण आज्ञाकारिता की शर्त पर जीवन की वाचा बान्धी, और उसको भले और बुरे के ज्ञान के वृक्ष से खाने को मना किया, जिसको न मानने का दण्ड मृत्यु ठहराया।

प्रश्न 13 : क्या हमारे पहले माता पिता उस अवस्था में बने रहे, जिसमें उनकी सृष्टि हुई थी?

उत्तर : हमारे पहले माता-पिता ने अपनी स्वतंत्र इच्छा (जो उन्हें दी गयी थी) से, परमेश्वर के विरुद्ध पाप करके, उस अवस्था से गिर गये, जिसमें उनकी सृष्टि हुई थी।

प्रश्न 14 : पाप क्या है?

उत्तर : परमेश्वर की व्यवस्था को पूरा न मानना अथवा तोड़ना दोनों बातें पाप हैं।

प्रश्न 15 : वह पाप क्या था, जिसके कारण हमारे पहले माता-पिता उस अवस्था से जिसमें वे बनाये गये थे, गिर गये?

उत्तर : वह पाप जिसके कारण हमारे पहले माता-पिता उस अवस्था से जिसमें वे बनाये गये थे गिर गये, उस फल का खाना था, जो परमेश्वर ने मना किया था।

प्रश्न 16 : क्या आदम के पहले पाप में पूर्ण मानव जाति पतित हो गयी?

उत्तर : हाँ! क्योंकि जो वाचा आदम के साथ बाँधी गयी थी, वह सिर्फ उसके लिये नहीं थी, वरन उसके वंशजों के लिये भी थी और सभी मानव जाति आदम की संतान (वंशज) है, उन्होंने आदम के साथ उसके पहले पाप में पाप किया और उसके साथ पतित हो गये।

प्रश्न 17 : पतन मनुष्य को किस अवस्था में ले आया?

उत्तर : पतन मनुष्य को, पाप और कष्ट की अवस्था में ले आया।

प्रश्न 18 : पाप की जिस अवस्था में मनुष्य पतित हुआ, उसमें उसका पापी होना किन बातों में निहित है?

उत्तर : पाप की वह अवस्था, जिसमे मनुष्य (मानव) पतित हुआ, वह आदम के पहले पाप का दोष, मौलिक धार्मिकता की कमी और उसके सम्पूर्ण स्वभाव का भ्रष्ट होना है, जिसे साधारणतः मौलिक पाप कहा जाता है तथा सभी वास्तविक पाप जो इससे निकलते हैं, में निहित है।

प्रश्न 19 : कष्ट की वह अवस्था जिसमें मनुष्य (मानव) पतित हुआ, क्या है?

उत्तर : समस्त मानव जाति, अपने पतन के कारण परमेश्वर की संगति से दूर तथा उसके क्रोध और श्राप की भागीदार बन गयी और इस कारण इस जीवन के सारे कष्टों, मृत्यु और अनन्तकाल की नरक की यातना के आधीन हो गयी।

प्रश्न 20 : क्या परमेश्वर ने मनुष्य को पाप और दुःख की अवस्था में नाश होने के लिए छोड़ दिया?

उत्तर : परमेश्वर ने अपनी भली इच्छा से, कुछ लोगों को अनन्तकाल से अनन्त जीवन के लिये चुन लिया और उन्हें पाप और दुःख की अवस्था से छुड़ाने तथा एक उद्धारकर्ता द्वारा, उद्धार की अवस्था में लाने के लिये, उनके साथ अनुग्रह की वाचा स्थापित की।

प्रश्न 21 : परमेश्वर के चुने हुओ का उद्धारकर्ता कौन है?

उत्तर : परमेश्वर के चुने हुओ का एकमात्र उद्धारकर्ता प्रभु यीशु मसीह हैं। जो परमेश्वर का अनन्तकालीन पुत्र होते हुए भी, मनुष्य बना और जो परमेश्वर और मनुष्य दो अलग स्वभाव में, एक ही व्यक्ति था, और निरंतर है, और हमेशा रहेगा।

प्रश्न 22 : मसीह परमेश्वर का पुत्र होते हुए कैसे इन्सान (मनुष्य) बना?

उत्तर : मसीह, परमेश्वर के पुत्र ने एक सच्चा शरीर और तार्किक आत्मा को धारण किया, पवित्र आत्मा की सामर्थ से कुंवारी मरियम की कोख में गर्भ धारण और उससे जन्म लेकर मनुष्य (इन्सान) बना, फिर भी पापरहित है।

प्रश्न 23 : हमारा उद्धारकर्ता होकर मसीह कौन से पदों को क्रियान्वित करता है?

उत्तर : मसीह हमारा उद्धारकर्ता, अपनी दीनता और प्रतिष्ठा (गौरव) दोनों ही अवस्थाओं में, एक भविष्यद्वक्ता (नबी), एक याजक और एक राजा के पदों को कार्यान्वित करता है।

प्रश्न 24 : मसीह एक नबी के पद के कार्य को कैसे पूरा करता है?

उत्तर : मसीह अपने वचन और आत्मा के द्वारा, हमारे उद्धार के लिए परमेश्वर की इच्छा हम पर प्रगट करने के द्वारा, एक नबी के पद के कार्य को पूरा करता है।

प्रश्न 25 : मसीह कैसे एक याजक के पद के कार्य को पूरा करता है?

उत्तर : मसीह परमेश्वर के न्याय की संतुष्टि के लिए, अपने आपको बलिदान करके, एक बार प्रस्तुत करने, और हमारा परमेश्वर से मेल मिलाप करने तथा हमारे लिये निरन्तर विनती करने के द्वारा, एक याजक के कार्य को पूरा करता है।

प्रश्न 26 : मसीह, कैसे एक राजा के पद के कार्य को क्रियान्वित करता है ?

उत्तर : मसीह हमें अपने आधीन करके, हम पर प्रभुता और हमारी रक्षा करके, और हमारे और अपने सभी दुश्मनों को नियंत्रण में रख, उन पर विजय प्राप्त करने के द्वारा, एक राजा के पद के कार्य को क्रियान्वित करता है।

प्रश्न 27 : मसीह की दीनता किन बातों (कार्यों) में प्रकट होती है?

उत्तर : मसीह की दीनता, उसके जन्म लेने और व्यवस्था की आधीनता में आने, इस जीवन के कष्टों तथा परमेश्वर के क्रोध को सहने और क्रस की शापित मृत्यु, दफनाए जाने और कुछ समय के लिये मृत्यु की आधीनता में रहने में, प्रकट होती है।

प्रश्न 28 : मसीह की प्रतिष्ठा किन बातों (कार्यों) में प्रकट होती है?

उत्तर : मसीह की प्रतिष्ठा, उसके मृतको में से तीसरे दिन जी उठने, स्वर्ग में ऊपर जाने, पिता परमेश्वर के दाहिने हाथ बैठने और अन्तिम दिन, संसार के न्याय करने के लिये आने में, प्रकट होती है।

प्रश्न 29 : मसीह द्वारा खरीदे गये छुटकारे में हम कैसे शामिल होते हैं?

उत्तर : हम मसीह द्वारा खरीदे गये छुटकारे में, पवित्र आत्मा द्वारा इसको प्रभावशाली ढंग से अपने में, लागू करने से, शामिल होते हैं।

प्रश्न 30 : पवित्र आत्मा मसीह द्वारा खरीदे गये छुटकारे को हम में कैसे लागू करता है?

उत्तर : पवित्र आत्मा हममें विश्वास पैदा करता है, जिससे हमारी प्रभावी बुलाहट में हमें मसीह से जोड़ता है, इस प्रकार वह मसीह द्वारा खरीदे छुटकारे को हम में, लागू करता है।

प्रश्न 31 : सफल (प्रभावी) बुलाहट क्या है?

उत्तर : सफल बुलाहट परमेश्वर की आत्मा का कार्य है, जिससे वह हमें हमारे पाप और दु:खों को एहसास कराता है, हमारे मन को मसीह के ज्ञान में प्रकाशित करता और हमारी इच्छा का नया करता, तथा वह हमें मसीह को जो हमें सुसमाचार में मुफ्त दिया गया है, को अपनाने के लिये प्रोत्साहन व योग्यता

प्रदान करता है।

प्रश्न 32 : वे जो सफलता से बुलाये गये हैं, इस जीवन में वे क्या लाभ प्राप्त करते हैं?

उत्तर : वे जो सफलता से बुलाये गये हैं, इस जीवन में न्यायीकरण अथवा निर्दोषीकरण, लेपालकपन और पवित्रीकरण और अन्य कई लाभ जो इस जीवन में इनके साथ अथवा इनसे निकलते हैं प्राप्त करते हैं।

प्रश्न 33 : न्यायीकरण अथवा निर्दोषीकरण क्या है?

उत्तर : निर्दोषीकरण परमेश्वर के मुफ्त अनुग्रह का एक कार्य है, जिससे वह हमारे सभी पापों को क्षमा करता है, और हमें अपनी दृष्टि में, एकमात्र मसीह की धार्मिकता जो हमें दी गयी है, जिसे हम सिर्फ विश्वास से प्राप्त करते हैं, के कारण धर्मी स्वीकार करता है।

प्रश्न 34 : लेपालकपन क्या है?

उत्तर : लेपालकपन परमेश्वर के मुफ्त अनुग्रह का कार्य है, जिसके द्वारा हम परमेश्वर के पुत्रों की गिनती में स्वीकार किये जाते हैं, और उनके सब अधिकार और सौभाग्य प्राप्त करते हैं।

प्रश्न 35 : पवित्रीकरण क्या है?

उत्तर : पवित्रीकरण परमेश्वर के मुफ्त अनुग्रह का कार्य है, जिसके द्वारा हम अपने पूर्ण मनुष्यत्व में, परमेश्वर के स्वरूप में नये किये जाते हैं, और पाप के लिये अधिक से अधिक मरने और धार्मिकता में जीने के लिये, योग्यता पाते हैं।

प्रश्न 36 : वह कौन से फायदे हैं जो इस जीवन में न्यायीकरण, लेपालकपन और पवित्रीकरण के साथ आते अथवा इनसे निकलते हैं?

उत्तर : वे फायदे जो इस जीवन में न्यायीकरण, लेपालकपन और पवित्रीकरण के साथ आते अथवा इनसे निकलते हैं, वे परमेश्वर के प्रेम का आश्वासन, मन की शान्ति, पवित्र आत्मा में आनन्द, अनुग्रह की बढ़ोत्तरी और उनमें अन्त तक धैर्य से बने रहना है।

प्रश्न 37 : मसीह की मृत्यु से विश्वासियों को क्या फायदे (लाभ) प्राप्त होते हैं?

उत्तर : विश्वासियों की आत्मा, उनकी मृत्यु पर पवित्रता में सिद्ध होती और तुरन्त महिमा में चली जाती है, और उनके शरीर मसीह के साथ संगठित रहकर, पुनरुत्थान के दिन के लिए, उनके कब्र में आराम पाते हैं।

प्रश्न 38 : पुनरुत्थान के समय विश्वासी, मसीह से क्या लाभ प्राप्त करते हैं?

उत्तर : पुनरुत्थान के समय विश्वासी महिमा में जिलाए जाकर, न्याय के दिन खुले आम निर्दोष ठहराकर स्वीकार किये जायेंगे और अनन्तकाल के लिए परमेश्वर के सम्पूर्ण आनन्द में, पूर्णता आशीषित किये जाएंगे।

प्रश्न 39 : वह कौन सा कर्तव्य है जो परमेश्वर मनुष्य से चाहता है?

उत्तर : कर्तव्य जो परमेश्वर मनुष्य से चाहता है, कि वह (मनुष्य) उसकी प्रगट इच्छा के प्रति आज्ञाकारी रहे।

प्रश्न 40 : परमेश्वर ने आज्ञाकारिता के नियम के लिए सबसे पहले क्या प्रगट किया?

उत्तर : परमेश्वर ने मनुष्य की आज्ञाकारिता के लिए, उसको सबसे पहले जो नियम प्रगट किया वह नैतिक व्यवस्था (नियम) था।

प्रश्न 41 : नैतिक व्यवस्था (नियम) संक्षेप में कहाँ समझायी गई है?

उत्तर : नैतिक व्यवस्था (नियम) संक्षेप में दस आज्ञाओं में समझायी गयी है।

प्रश्न 42 : दस आज्ञाओं का सार क्या है?

उत्तर : दस आज्ञा का सार है, कि तू अपने प्रभु परमेश्वर से अपने सम्पूर्ण मन, सम्पूर्ण आत्मा (प्राण), सम्पूर्ण सामर्थ और सम्पूर्ण बुद्धि से प्रेम कर, और अपने पड़ोसी से अपने समान प्रेम कर।

प्रश्न 43 : दस आज्ञाओं की भूमिका (प्रस्तावना) क्या है?

उत्तर : दस आज्ञाओं की भूमिका इन शब्दों में व्यक्त है, ''मैं तेरा परमेश्वर यहोवा हूँ, जो तुझे मिश्र देश अर्थात दासत्व के घर से निकाल लाया हूँ।''

प्रश्न 44 : दस आज्ञाओं की भूमिका हमें क्या सिखाती है?

उत्तर : दस आज्ञाओं की भूमिका हमें सिखाती है, कि यहोवा ही हमारा प्रभु और हमारा परमेश्वर और छुड़ाने वाला है, इसलिए हमें उसकी सारी आज्ञाओं को मानना आवश्यक है।

प्रश्न 45 : पहली आज्ञा कौन सी है?

उत्तर : ''तू मुझे छोड़ दूसरों को ईश्वर करके न मानना'' पहली आज्ञा है।

प्रश्न 46 : पहली आज्ञा में क्या आवश्यक (जरूरी) है?

उत्तर : पहली आज्ञा में आवश्यक है, कि हम परमेश्वर को ही एकमात्र सच्चा परमेश्वर और अपना परमेश्वर मानें और स्वीकार करें और इसके अनुसार ही, उसकी आराधना और महिमा करें।

प्रश्न 47 : पहली आज्ञा में क्या मना किया गया है?

उत्तर : पहली आज्ञा में सच्चे परमेश्वर को अपना परमेश्वर न मानना, न ही उसकी आराधना और महिमा करना, और उसकी आराधना और महिमा किसी अन्य को देना, मना है।

प्रश्न 48 : हमें पहली आज्ञा इन शब्दों अर्थात (मुझे छोड़) में विशेष क्या सिखाया गया है?

उत्तर : ये शब्द ''मुझे छोड़'' पहली आज्ञा में हमें सिखाते हैं, कि परमेश्वर जो सब कुछ देखता है, वह दूसरे ईश्वर को मानने के पाप पर दृष्टि रखता व उससे अप्रसन्न (क्रोधित) होता है।

प्रश्न 49 : दूसरी आज्ञा कौन सी है?

उत्तर : दूसरी आज्ञा यह है कि ''तू अपने लिये कोई मूर्ति गढ़कर न बनाना, अथवा न किसी की प्रतिमा बनाना, जो ऊपर आकाश में या नीचे धरती पर या धरती के नीचे जल में है, न तो तू उनको दण्डवत करना और न ही उनकी उपासना करना, क्योंकि मैं तेरा परमेश्वर यहोवा जलन रखने वाला परमेश्वर हूँ, जो मुझसे बैर करते हैं, उनकी संतान को तीसरी और चौथी पीढ़ी तक बापदाआओं की दुष्टता का दण्ड देता हूँ, जो मुझसे प्रेम रखते हैं और मेरी आज्ञाओं का पालन करते हैं उन हजारों हजार पर करुणा करता हूँ।''

प्रश्न 50 : दूसरी आज्ञा में क्या आवश्यक है?

उत्तर : दूसरी आज्ञा में आवश्यक है, कि सभी धार्मिक आराधना और अधिनियम जैसे परमेश्वर ने अपने वचन में नियुक्त किये हैं, उसी के अनुसार हम उन्हें ग्रहण करें, माने और पवित्र और संपूर्ण रखें।

प्रश्न 51 : दूसरी आज्ञा में क्या मना किया गया है?

उत्तर : दूसरी आज्ञा में मूर्तियों के माध्यम अथवा किसी अन्य प्रकार से, जो उसके वचन के अनुकूल नहीं है, परमेश्वर की आराधना करना मना है।

प्रश्न 52 : दूसरी आज्ञा के साथ कौन से तर्क (उद्देश्य) जुड़े हैं?

उत्तर : दूसरी आज्ञा के साथ जुड़े (उद्देश्य) तर्क है, परमेश्वर की हमारे ऊपर प्रभुता, हममें उसका स्वामित्व और उसकी अपनी आराधना की अभिलाषा है।

प्रश्न 53 : तीसरी आज्ञा कौन सी है?

उत्तर : तीसरी आज्ञा है ''तू अपने परमेश्वर यहोवा का नाम व्यर्थ न लेना क्योंकि जो यहोवा का नाम व्यर्थ लेता है, उसको यहोवा दण्ड दिये बिना नहीं छोड़ेगा।''

प्रश्न 54 : तीसरा आज्ञा में क्या आवश्यक (जरूरी) है?

उत्तर : तीसरी आज्ञा में आवश्यक है, कि परमेश्वर के नाम, शीर्षक, गुण, अनुष्ठान, वचन और कार्यों को पवित्रता और आदर के साथ इस्तेमाल करना चाहिए।

प्रश्न 55 : तीसरी आज्ञा में क्या मना किया गया है?

उत्तर : तीसरी आज्ञा में कुछ भी, जिससे परमेश्वर अपने आप को प्रकट करता है, उसको तुच्छ जानना व उसकी निन्दा करना मना है।

प्रश्न 56 : तीसरी आज्ञा के साथ क्या तर्क (उद्देश्य) जुड़े हैं?

उत्तर : तीसरी आज्ञा के साथ जुड़े तर्क हैं, कि यद्यपि हो सकता है, कि इस आज्ञा को तोड़ने वाले, मनुष्य के दण्ड से बच जाए, परंतु वे प्रभु हमारे परमेश्वर के धर्मी न्याय से कदापि न बच पाएंगे।

प्रश्न 57 : चौथी आज्ञा कौन सी है?

उत्तर : चौथी आज्ञा है ''विश्राम दिन को पवित्र मानने के लिए स्मरण रखना, छः दिन तक तू परिश्रम करके अपना सब काम कर लेना, परंतु सातवा दिन तेरे परमेश्वर यहोवा का विश्राम दिन है, उसमें तू कुछ भी काम न करना, न तो तू, न तेरा पुत्र, न तेरी पुत्री, न तेरा दास, न तेरी दासी, न तेरे पशु, न तेरे साथ ठहरा हुआ कोई परदेशी, क्योंकि यहोवा ने छः दिन में आकाश और पृथ्वी और समुद्र और जो कुछ उनमें हैं, सब को बनाया और सातवे दिन विश्राम किया इसलिये यहोवा ने विश्राम दिन को आशीष दी और उसे पवित्र ठहराया।''

प्रश्न 58 : चौथी आज्ञा में क्या आवश्यक है?

उत्तर : चौथी आज्ञा में परमेश्वर चाहता है, जैसे उसने अपने वचन में नियुक्त किया है, कि निर्धारित समय उसके लिये पवित्र रखें, विशेषकर सप्ताह में एक दिन, जो उसके लिए पवित्र विश्राम दिन ठहरे।

प्रश्न 59 : सात दिनों में से किस दिन को परमेश्वर ने साप्ताहिक विश्राम दिन ठहराया है?

उत्तर : संसार के प्रारंभ से मसीह के पुनरुत्थान तक, परमेश्वर ने सप्ताह के सातवे दिन को साप्ताहिक विश्राम दिन नियुक्त किया था, परंतु मसीह के पुनरुत्थान से निरन्तर संसार के अंत तक, सप्ताह के पहले दिन को मसीही विश्राम दिन नियुक्त किया है।

प्रश्न 60 : विश्राम दिन को कैसे पवित्र रखा जाए?

उत्तर : विश्राम दिन को पूरे दिन पवित्र विश्राम करके, यहाँ तक कि वे सांसारिक और मनोरंजन के कार्य जो अन्य दिनों में उचित है, से विश्राम करते हुए पवित्र रखा जाए, और करुणा और अति आवश्यक कार्यों के समय को छोड़कर, पूर्ण समय सामूहिक और व्यक्तिगत रूप से परमेश्वर की आराधना में लगाते हुए, इसे पवित्र रखा जाए।

प्रश्न 61 : चौथी आज्ञा में क्या मना किया गया है?

उत्तर : चौथी आज्ञा में आवश्यक कर्तव्य को न करना अथवा लापरवाही से करना और आलस्य से, अथवा जो पापमय बातें हैं करके, या हमारे सांसारिक काम और मनोरंजन के विषय में अनावश्यक विचार, शब्द और कामों से उस दिन को अपवित्र करना, मना है।

प्रश्न 62 : चौथी आज्ञा के साथ कौन से तर्क दिये गये हैं?

उत्तर : चौथी आज्ञा के साथ यह तर्क दिये गये हैं, कि परमेश्वर ने सप्ताह के छः दिन हमें हमारे कामों के लिये दिये हैं, परंतु अपने स्वयं के उदाहरण से उसने सातवे दिन विश्राम किया और इसे अपने लिये नियुक्त किया और विश्राम दिन को आशीषित ठहराया।

प्रश्न 63 : पाँचवी आज्ञा कौन सी है?

उत्तर : पाँचवी आज्ञा है ''तू अपने पिता और अपनी माता का आदर करना जिससे जो देश तेरा परमेश्वर यहोवा तूझे देता है, उसमें तू बहुत दिन तक रहने पाए।''

प्रश्न 64 : पाँचवी आज्ञा में क्या आवश्यक है?

उत्तर : पाँचवी आज्ञा में आवश्यक है, कि हम प्रत्येक को उनके पद और सम्बन्ध के अनुसार चाहे वे, हमसे बड़े, छोटे, अथवा हमारे बराबर के हों, हम उनका आदर और उनके प्रति अपने कर्तव्य को पूरा करें।

प्रश्न 65 : पाँचवीं आज्ञा में क्या मना किया गया है?

उत्तर : पाँचवीं आज्ञा में हर एक को, उनके विभिन्न पदों और सम्बन्ध के अनुसार, जो उनके प्रति हमारा आदर और कर्तव्य है, उसे अनदेखा करना अथवा उसके विरुद्ध कुछ करना, मना किया गया है।

प्रश्न 66 : पाँचवीं आज्ञा के साथ जुड़े तर्क (उद्देश्य) क्या है?

उत्तर : पाँचवीं आज्ञा के साथ दिये गये तर्क हैं, कि वे सभी जो इस आज्ञा को (जब तक इससे परमेश्वर की महीमा व उनकी भलाई होती है) पूरा करते हैं, उन्हें लम्बी आयु और सफलता की प्रतीज्ञा की गयी है।

प्रश्न 67 : छठी आज्ञा कौन सी है?

उत्तर : ''तू हत्या न करना'' छठी आज्ञा है।

प्रश्न 68 : छठी आज्ञा में क्या आवश्यक है?

उत्तर : छठी आज्ञा में आवश्यक है, कि हम, अपने जीवन और दूसरों के जीवन की सुरक्षा के लिये, यथासम्भव उचित प्रयास करते रहें।

प्रश्न 69 : छठी आज्ञा में क्या मना किया गया है?

उत्तर : छठी आज्ञा में, अनुचित रीति से अथवा अन्य किसी भी प्रकार से, अपने प्राण देना अथवा अपने पड़ोसी की हत्या करना मना है।

प्रश्न 70 : सातवीं आज्ञा कौन सी है?

उत्तर : ''तू व्यभिचार न करना'' सातवीं आज्ञा है।

प्रश्न 71 : सातवी आज्ञा में क्या आवश्यक है?

उत्तर : सातवी आज्ञा में आवश्यक है, कि हम अपनी स्वयं और अपने पड़ोसी की

पवित्रता हृदय, बातचीत और व्यवहार में सुरक्षित बनाये रखें।

प्रश्न 72 : सातवीं आज्ञा में क्या मना किया गया है?

उत्तर : सातवीं आज्ञा में सभी अशुद्ध (कामुक) विचार, बातें और कार्य करना मना है।

प्रश्न 73 : आठवीं आज्ञा कौन सी है?

उत्तर : ''तू चोरी न करना'' आठवीं आज्ञा है।

प्रश्न 74 : आठवीं आज्ञा में क्या आवश्यक है?

उत्तर : आठवीं आज्ञा में आवश्यक है, कि हम अपने और दूसरों के लिए ,उचित रीति से धन प्राप्त करें और इसे बढ़ाएं।

प्रश्न 75 : आठवीं आज्ञा में क्या मना किया गया है?

उत्तर : आठवीं आज्ञा में ऐसी कोई भी बात, जो हमारी स्वयं की अथवा पड़ोसी के धन व बाहरी स्थिति को अनुचित रीति से बाधित करती अथवा नुकसान पहुँचाती है, करना मना है।

प्रश्न 76 : नौवीं आज्ञा कौन सी है?

उत्तर : नौवीं आज्ञा है ''तू अपने पड़ोसी के विरुद्ध झूठी साक्षी न देना।''

प्रश्न 77 : नौवीं आज्ञा में क्या आवश्यक है?

उत्तर : नौवीं आज्ञा में आवश्यक है, कि मनुष्यों के बीच में, सत्य बना और बढ़ता रहे और हमारा स्वयं का और पड़ोसी का अच्छा नाम बना रहे, विशेषकर साक्षी देने के विषय में।

प्रश्न 78 : नौवीं आज्ञा में क्या मना किया गया है?

उत्तर : नौवी आज्ञा में कुछ भी, जो सत्य के लिए और हमारे स्वयं अथवा हमारे पड़ोसी के अच्छे नाम के लिए, हानिकारक अथवा घातक है, करना मना है।

प्रश्न 79 : दसवीं आज्ञा कौन सी है?

उत्तर : दसवीं आज्ञा है कि ''तू अपने पड़ोसी के घर का लालच न करना, तू न तो अपने पड़ोसी की पत्नी, न उसके दास, न उसकी दासी, न उसके बैल, न उसके गधे, न अपने पड़ोसी की किसी वस्तु का लालच करना।''

प्रश्न 80 : दसवीं आज्ञा में क्या आवश्यक है?

उत्तर : दसवीं आज्ञा में आवश्यक है, कि हम अपनी स्वयं की स्थिति से पूर्ण संतुष्ट हों और अपने पड़ोसी और वह सब जो उसका है, के प्रति सही और उदार व्यवहार रखें।

प्रश्न 81 : दसवीं आज्ञा में क्या मना किया गया है?

उत्तर : दसवीं आज्ञा में अपनी अवस्था से असंतुष्ट होना, अपने पड़ोसी की सम्पत्ति से जलन अथवा घृणा करना और अन्य कुछ भी जो उसका है, उससे अनुचित लगाव व चाहत रखना मना है।

प्रश्न 82 : क्या कोई मनुष्य इस योग्य है, कि वह पूर्णता परमेश्वर की आज्ञाओं को पूरा कर सके?

उत्तर : पतन के बाद कोई भी मनुष्य इस जीवन में इस योग्य नहीं है, कि पूर्णता परमेश्वर की आज्ञाओं को पूरा कर सके, वरन वह प्रतिदिन विचार, बातों और कार्यों में इनका उल्लंघन करता है।

प्रश्न 83 : क्या व्यवस्था के सभी उल्लंघन एक समान घृणित हैं?

उत्तर : कुछ पाप अपने आप में, अनेक उग्रता होने के कारण, अन्य पापों की अपेक्षा परमेश्वर की दृष्टि में अधिक घृणित है।

प्रश्न 84 : प्रत्येक पाप का प्रतिफल क्या है?

उत्तर : प्रत्येक पाप का प्रतिफल, इस जीवन और आने वाले जीवन में, परमेश्वर का क्रोध और श्राप है।

प्रश्न 85 : परमेश्वर हमसे क्या चाहता है कि हम पाप के कारण आयें उसके क्रोध व श्राप से बच सकें?

उत्तर : पाप के कारण आये उसके क्रोध व श्राप से बचने के लिए, परमेश्वर चाहता है कि हम यीशु पर विश्वास, जीवन के लिए पापों से पश्चाताप करें और उन सभी साधनों का जिनसे मसीह हमें उद्धार का लाभ पहुँचाता है, उचित इस्तेमाल करें।

प्रश्न 86 : यीशु मसीह में विश्वास क्या है?

उत्तर : यीशु मसीह में विश्वास, उद्धार का अनुग्रह है, जिसके द्वारा हम उसे स्वीकार और उद्धार के लिए सिर्फ उस पर भरोसा करते हैं, जैसा कि सुसमाचार में वह हमारे लिये दिया गया है।

प्रश्न 87 : जीवन के लिए पश्चाताप क्या है?

उत्तर : जीवन के लिए पश्चाताप उद्धार का अनुग्रह है, जिसके द्वारा एक पापी, अपने पापों की सच्चाई जानकर और मसीह में परमेश्वर की करुणा समझकर, अपने पाप से दु:ख और नफरत करते हुए, इससे परमेश्वर की ओर मुड़ता है, तथा दृढ़ता और पूर्ण उद्देश्य के साथ, नई आज्ञा पालन करने का प्रयास करता है।

प्रश्न 88 : वे बाहरी और साधारण साधन कौन से हैं, जिनके द्वारा मसीह हमें छुटकारे के

लाभ प्रदान करता है?

उत्तर : बाहरी और साधारण साधन, जिनसे मसीह हमें छुटकारे का लाभ प्रदान करता है, वे उसके अधिनियम/अनुष्ठान, वचन, संस्कार और प्रार्थना है। ये सभी उद्धार के लिए चुने हुओं में, प्रभावी किये जाते हैं।

प्रश्न 89 : किस प्रकार वचन उद्धार के लिये प्रभावी होता है?

उत्तर : परमेश्वर का आत्मा वचन पढ़ता है, परंतु विशेषकर वचन का प्रचार, पापी को कायल करने व बदलने में और विश्वास से उद्धार के लिए, उन्हें पवित्रता और तसल्ली में बढ़ाने के लिये, प्रभावी होता है।

प्रश्न 90 : परमेश्वर के वचन को कैसे पढ़ा और सुना जाना चाहिए, कि यह उद्धार के लिए प्रभावी बन जाए?

उत्तर : वचन उद्धार के लिए प्रभावी हो, इसके लिये हमें उसे सावधानी, तैयारी और प्रार्थना के साथ सुनना, पढ़ना चाहिए, विश्वास और प्रेम से, अपने हृदय में ग्रहण और अपने जीवन में इसका इस्तेमाल करना चाहिए।

प्रश्न 91 : किस प्रकार संस्कार उद्धार के लिये प्रभावी माध्यम बनते हैं।

उत्तर : संस्कार उद्धार के लिए प्रभावी साधन बनते हैं, इसलिए नहीं कि उनमें कोई गुण है अथवा उसमें जो इसका प्रबन्धन करता है, परंतु सिर्फ मसीह की आशीष द्वारा और पवित्र आत्मा के उनमें कार्य करने से, जो इसे विश्वास के साथ स्वीकार करते हैं।

प्रश्न 92 : संस्कार क्या है?

उत्तर : संस्कार, मसीह द्वारा नियुक्त किया गया एक पवित्र अनुष्ठान अर्थात रीतियां है, जिसमें परिचित चिन्हों द्वारा, विश्वासियों को मसीह और नयी वाचा के लाभ प्रस्तुत व प्रमाणित होते और विश्वासियों में लागू होते हैं।

प्रश्न 93 : नये नियम के संस्कार कौन से हैं?

उत्तर : नये नियम के संस्कार बपतिस्मा और प्रभु भोज है।

प्रश्न 94 : बपतिस्मा क्या है?

उत्तर : बपतिसमा एक संस्कार है, जिसमें पिता और पुत्र और पवित्र आत्मा के नाम से जल संस्कार दिया/लिया जाता है, जो हमारा मसीह में एक होने, अनुग्रह की वाचा के फायदों में सम्मिलित होने और हम परमेश्वर में बने रहेंगे, इस बात का चिन्ह और प्रमाण है।

प्रश्न 95 : किन लोगों को बपतिस्मा देना उचित है?

उत्तर : जो लोग सदृश्य कलीसिया से बाहर हैं। जब तक वे मसीह में अपना विश्वास और उसकी आज्ञाओं पर चलना स्वीकार नहीं करते, उन्हें बपतिस्मा नहीं देना

चाहिए। लेकिन जो सदृश कलीसिया के सदस्य हैं, उनके बच्चों को बपतिस्मा देना चाहिए।

प्रश्न 96 : प्रभु भोज क्या है?

उत्तर : प्रभु भोज एक संस्कार है, जिसमें मसीह के नियुक्त किये अनुसार, रोटी और दाखरस लेने और देने से, हम उसकी मृत्यु को प्रगट करते हैं। जो लोग इसे उचित रीति से लेते हैं, वे शारीरिक और सांसारिक रीति से नहीं, परंतु विश्वास से मसीह के शरीर और लहू में, उसके सभी फायदों के साथ, अपने आत्मिक पोषण और अनुग्रह में बढ़ोत्तरी के लिए शामिल होते हैं।

प्रश्न 97 : प्रभु भोज को उचित रीति से लने के लिये क्या आवश्यक है?

उत्तर : वे जो प्रभु भोज में उचित रीति से शामिल होना चाहते हैं, उनके लिए आवश्यक है, कि वे प्रभु के शरीर को समझने के लिए, अपने आप अपने ज्ञान, उसमें से खाने के अपने विश्वास, अपने पश्चाताप, प्रेम और अपनी नयी आज्ञाकारिता की जांच करें। कहीं ऐसा न हो कि अनुचित रीति से खाने और पीने से, वे अपने ऊपर दण्ड ले आए।

प्रश्न 98 : प्रार्थना क्या है?

उत्तर : प्रार्थना हमारी इच्छाओं को, जो परमेश्वर की इच्छा के अनुरूप है, उन्हें मसीह के नाम से, अपने पापों को मानते हुए और उसकी करुणा का धन्यवाद करते हुए, परमेश्वर के सम्मुख प्रस्तुत करना है।

प्रश्न 99 : प्रार्थना में हमारी अगुवाई करने के लिए परमेश्वर ने क्या नियम दिया है?

उत्तर : परमेश्वर का पूरा वचन प्रार्थना करने में हमारी मदद करता है। परंतु अगुआई का विशेष नियम, मसीह द्वारा उसके चेलों को सिखाई गई प्रार्थना है, जिसे हम प्रभु की प्रार्थना कहते हैं।

प्रश्न 100 : प्रभु की प्रार्थना की प्रस्तावना हमें क्या सिखाती है?

उत्तर : प्रभु की प्रार्थना की प्रस्तावना जो ''हे हमारें पिता तू जो स्वर्ग में है'' हमें यह सिखाती है, कि हम पूर्ण, पवित्र आदर व विश्वास के साथ परमेश्वर के नजदीक जाएं, जैसे बच्चा पिता के पास जाता है, क्योंकि वह हमारी सहायता के लिये योग्य हैं, और इसके लिए तैयार रहता हैं अतः हमें दूसरों के साथ और दूसरों के लिए प्रार्थना करनी चाहिए।

प्रश्न 101 : हम पहली विनती में क्या प्रार्थना करते हैं?

उत्तर : पहली विनती जो 'तेरा नाम पवित्र माना जाए' है हम प्रार्थना करते हैं, कि परमेश्वर हमें और दूसरों को इस योग्य बनाए, कि सभी बातों में, जिसके द्वारा वह अपने आपको प्रगट करता है, हम उसकी महिमा करें और वह सभी बातों

को अपनी महिमा के लिए इस्तेमाल (व्यवस्थित) करें।

प्रश्न 102 : दूसरी विनती में हम क्या प्रार्थना करते हैं?

उत्तर : दूसरी विनती जो 'तेरा राज्य आए' है हम प्रार्थना करते हैं, कि शैतान का राज्य नाश किया जाए और अनुग्रह का राज्य स्थापित हो, हम और दूसरे लोग इसमें लाए और रखे जाएं और महिमा का राज्य शीघ्र आए।

प्रश्न 103 : तीसरी विनती में हम क्या प्रार्थना करते हैं?

उत्तर : तीसरी विनती जो यह है कि ''तेरी इच्छा जैसे स्वर्ग में पूरी होती है वैसे ही पृथ्वी पर भी पूरी हो'' हम प्रार्थना करते हैं, कि परमेश्वर अपने अनुग्रह से हमें ऐसी योग्यता और इच्छा दें, कि हम उसे जान सकें, उसकी आज्ञा मानें और सभी बातों में उसके आधीन रहें, जैसा कि स्वर्ग में स्वर्गदूत करते हैं।

प्रश्न 104 : हम चौथी विनती में क्या प्रार्थना करते हैं?

उत्तर : चौथी विनती जो इस प्रकार है ''हमारी दिन भर की रोटी आज हमें दे'' हम प्रार्थना करते हैं, कि परमेश्वर के मुफ्त दान से अच्छी वस्तुओं का पर्याप्त हिस्सा इस जीवन में प्राप्त करें, और उनमें उसकीआशीषों का आनन्द मनाएं।

प्रश्न 105 : हम पाँचवीं विनती में क्या प्रार्थना करते हैं?

उत्तर : पाँचवीं विनती जो इस प्रकार है, ''जैसे हमने अपने अपराधियों को क्षमा किया है वैसे ही तू भी हमारे अपराधों को क्षमा कर'', हम प्रार्थना करते हैं, कि परमेश्वर मसीह के लिये हमारे सब पापों को क्षमा कर, हम ऐसा साहस इसलिए करते हैं, क्योंकि उसके अनुग्रह से हम इस योग्य हुए हैं, कि हृदय से हमने दूसरों को क्षमा किया है।

प्रश्न 106 : हम छठी विनती में क्या प्रार्थना करते हैं?

उत्तर : छठी विनती जो यह है कि ''और हमें परीक्षा में न ला परंतु बुराई से बचा'' हम प्रार्थना करते हैं, कि परमेश्वर, तू हमें पाप में पड़ने की परीक्षा से बचा अन्यथा जब हमारी परीक्षा होती है, तो हमारी मदद कर और हमें इससे बचा।

प्रश्न 107 : हम प्रभु की प्रार्थना के निष्कर्ष से क्या सीखते हैं?

उत्तर : प्रभु का प्रार्थना का निष्कर्ष जो यह है कि ''क्योंकि राज्य और पराक्रम और महिमा सदा तेरे ही हैं। आमीन'' हमें सिखाता है, कि हम प्रार्थना में अपना उत्साहन सिर्फ परमेश्वर से लें, और प्रार्थना राज्य, पराक्रम और महिमा उसे देते हुए उसकी स्तुति करें और हमारी इच्छा की साक्षी और प्रार्थना सुनने की निश्चयता में हम यह कहें-आमीन अर्थात ऐसा ही हो।

●